प्रकार वर्णन की है, उसे तुम्हारे समीप विस्तारके सहित कहता हूं, सुनो। कर्म्मेन्द्रियोंकी विद्या बुद्धीन्द्रिय है बुद्धीन्द्रियकी विद्या विशेष अर्थात् विषयादि पञ्चस्थूलभूत विशेषकी विद्या मन, मनकी विद्या पञ्चमहाभूत, पञ्चभूतकी विद्या अहंकार, अहंकारकी विद्या बुद्धि अर्थात् महत्तत्व महदादि सब तत्वोंकी विद्या है, अव्यक्त परमेश्वरी प्रकृति है, ये विद्या सब पुरुषोंकी ज्ञेय है; इसलिये इनमें परम विधि वर्णित हुई है; अव्यक्तकी परम विद्या पचीसवां पुरुष है। हे राजन्! सर्व्व ज्ञानका ज्ञेय सर्व्व अव्यक्त कहा गया है और अव्यक्त ज्ञान, पचीसवां पुरुष ज्ञेय तथा अव्यक्त ज्ञान पञ्चविंशति तम पुरुष ज्ञाता है, यह पहले कहा गया है। हे राजन्! मैंने विद्या और अविद्याकी यथार्थ रीतिसे तुम्हारे समीप वर्णन किया; परन्तु पहले जो क्षर और अक्षर कहके वर्णित हुआ है, उसे विशेष रीतिसे कहता हूं, सुनो। अनादि निबन्धनसे प्रकृति और जीव दोनों ही अक्षर रूपसे कहे गये हैं, और भूतोंके सहित विज्ञानघन आत्माका भी नाश होता है, इस श्रुतिके सबब प्रकृति तथा जीव दोनों ही क्षर रूपसे वर्णित हुए हैं। परन्तु मुझे जैसा ज्ञान है, उसके अनुसार मैं इनका कारण यथार्थ रूपसे कहता हूं। ब्रह्मदर्शी ब्राह्मण लोग इस प्रकृति और जीव दोनोंको ही अनादि निबन्धन ईश्वर और तत्व कहके व्याख्या करते हैं और सर्ग वा प्रलय धर्म्मके कारण महदादि गुणोंकी सृष्टिका निमित्त बार बार विकृत इस अव्यक्तको अक्षर कहा करते हैं। और परस्पर अधिष्ठानके हेतु पचीसवां चिदाभास जीव वा महदादि गुणोंकी उत्पत्ति स्थान कहके इसे क्षेत्र कहा करते हैं, इसलिये जीवको भी अक्षर कहना पड़ेगा। हे तात! जब योगी लोग अव्यक्त आत्मा अर्थात् शुद्ध चैतन्य स्वरूप परब्रह्ममें गुणोंको लीन करते हैं, तब उन गुणोंके सहित पचीसवां पुरुष भी लीन होनेपर उस समय जैसे केवल एकमात्र प्रकृति ही विद्यमान रहती है, वैसे ही पचीसवां क्षेत्रज्ञ पुरुष भी निज उत्पत्ति स्थान छब्बीसवें परब्रह्ममें लीन होनेपर उस समय एकमात्र ब्रह्म ही विद्यमान रहता है। हे विदेहराज! जब पचीसवां क्षेत्रज्ञ पुरुष निर्गुण परब्रह्मको प्राप्त होता है, तब महदादि गुणोंसे युक्त अव्यक्त प्रकृति और देहाश्रित प्रत्येक श्रोत्र आदि गुणोंमें अविद्यमानताके कारण क्षरत्वको प्राप्त हुआ करता है। इस ही भांति क्षेत्रज्ञ भी अक्षरत्वको प्राप्त हुआ करता है। परन्तु मैंने ऐसा सुना है, कि यह क्षेत्रज्ञ पुरुष क्षेत्रज्ञान अर्थात् प्रकृति ज्ञानसे रहित होनेसे ही स्वभाविक निर्गुण होता है। हे राजन्! यह क्षेत्रज्ञ स्वभावसे क्षर होनेपर भी निर्व्विकल्प समाधिके समयमें जब गुणवती प्रकृतिको अपनेसे पृथक् बोध करता है, तब अपना निर्गुणत्व जान सकता है। और जब क्षेत्रज्ञ ज्ञानवान होकर "मैं अन्य हूं, प्रकृति मुझसे भिन्न है" ऐसा समझता है, तब प्रकृति परित्याग करनेसे वह केवल शुद्ध रूपसे स्थिति करता है। हे राजेन्द्र! प्रकृति परित्यक्त होनेसेही यह क्षेत्रज्ञ पञ्चविंशतितम रूप संज्ञा वा मिश्रभाव परित्याग करता है, क्यों कि क्षेत्रज्ञ प्रकृतिके सहित मिश्रित हुआ रहता है। परन्तु जब क्षेत्रज्ञ प्राकृत गुणोंको घृणास्पद बोध करता है, तब वह परब्रह्मका दर्शन करके फिर उसे परित्याग करना नहीं चाहता। बल्कि उस समय उसके अन्तःकरणमें इस प्रकार ज्ञान उदय होता है, कि मैंने क्या किया। जैसे मछली अज्ञानके कारण जालकी अनुवर्त्ती होती है, वैसे ही मैं इस लोकमें इस कालरूप प्राकृत शरीरका अनुवर्त्ती होता हूं। जैसे मछली जलको अपना जीवन समझके एक तालाबसे दूसरे तालाबमें जाती है। वैसे ही मैं भी मोह-

वशसे एक देह छोड़के देहान्तरका अनुवर्त्ती होता हूं, और जैसे मछली मूर्खताके कारण अपनेको जलसे अलग नहीं समझती, वैसे ही मैं भी अज्ञानके वशमें होकर पुत्र आदिकी आत्मासे पृथक् नहीं समझता हूं। इसलिये मैं अज्ञ हूं, मुझे धिक्कार है। क्यों कि मैं मोहके सबब इस विपदग्रस्त शरीरका बार बार अनुवर्त्ती होता हूं। मैं चाहे कोई क्यों न हूं, इस संसारमें यही मेरा सखा है, इसके सङ्ग हमारी योग्यता है, इसके सङ्ग मैंने समता और एकता लाभ की है, और इसके साथ मैं अपनी समानता देखता हूं ये निष्कपट हैं, मैं इस प्रकार हूं ; क्यों कि अज्ञानतासे मैं इस जड़-स्वभाव प्रकृतिके सहित प्रवृत्त हुआ हूं। मैं आसक्ति रहित होके भी ससङ्ग प्रकृतिके सहित इस कालरूप देहमें निवास करता हूं, और इस प्रकृतिके वशमें होके यह जो काल स्वरूप शरीर है, उसे नहीं जान सकता। उत्तम देवता, मध्यम मनुष्य और अधम तिर्य्यग् रूपसे विकृत प्रकृतिमें मैं किस प्रकार निवास करूं, यह इसी प्रकार है, अब इसके सङ्ग मेरा सहवास होनेसे मैं कभी आत्माको न जान सकूंगा। इसलिये वञ्चना पूर्व्वक इस कालरूप प्रकृतिका सहवास त्याग करना ही उचित बोध होता है। मैं जो निर्व्विकार होके भी विकार स्वरूप प्रकृतिसे वञ्चित हुआ हूं, उसमें उसका कुछ अपराध नहीं है, अपना ही सारा अपराध स्वीकार करना होगा। जब मैं मूर्खताके सबब बाह्यविषयोंको भोग करनेकी अभिलाषासे इस प्रकृतिमें आसक्त हुआ हूं, तब अमूर्त्त होनेसे भी उस ही योनिमें वर्त्तमान रहनेसे मेरा चित्त ममतासे आकृष्ट होनेपर हमारा कितना अनिष्ट हुआ है, वह अवक्तव्य है। जो हो, अब इस प्रकृतिसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है ; क्यों कि यह प्रकृति अहंकारके जरिये आत्माके सर्व्वज्ञत्व आदि सब गुणोंको आवरण करती हुई अनेक शरीरमें विभक्त करके बार बार मुझे संसारमें नियुक्त करती है। जो ममता सदा अहंकारके जरिये हमारे बुद्ध्यादि धर्म्मोंका आवरण करती है, वह इसी प्रकृतिमें ही विद्यमान रहे, मैं जो ममतारहित और अहंकारशून्य हूं, उसे इस समय जान लिया है। इसलिये मैं प्रकृतिको परित्याग करके निरामय निर्द्वन्द्व परमात्माका आश्रय करूंगा। इस परमात्माका आसरा करनेसे अवश्य ही मेरा मङ्गल होगा ; इसलिये इसके सङ्ग समता लाभ करूंगा। कदापि जड़-स्वभाववाली प्रकृतिके सङ्ग संसर्ग न करूंगा। जब पचीसवां पुरुष इस ही प्रकार अनामय परमात्माको समझ सकेगा ; तब परमात्म बोधके सबब क्षरको परित्याग करके अक्षरत्व लाभ करेगा। हे मैथिल ! अव्यक्त और व्यक्त धर्म्मयुक्त सगुण तथा निर्गुण है, उसमेंसे जो लोग अव्यक्तका भी आदि भूत निर्गुण परब्रह्ममें दर्शन कर सकते हैं, वेही ब्रह्मत्व लाभ करते हैं। हे राजन् ! क्षर और अक्षरके वेदविहित अनुभवयुक्त ज्ञानसे पूरित सूक्ष्म सन्देहरहित निर्दोष, इस निदर्शनको मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया ; फिर यथाश्रुत वही विषय तुमसे फिर कहता हूं, सुनो। दोनों शास्त्रोंके अनुभवके अनुसार सांख्य और योग दोनों ही मेरे जरिये कहे गये हैं ; परन्तु जो शास्त्र सांख्योक्त है, उसे ही निश्चय योगदर्शन जानो। हे पृथ्वीपाल ! मैंने शिष्योंके हितकामनासे उनके समीप इस प्रबोधक सांख्यज्ञानको विशिष्ट रूपसे प्रकाशित किया है। बुद्धिमान पण्डित लोग इस शास्त्रको बृहत् और शीघ्र फल देनेवाला कहते हैं ; इसलिये योगी लोग वेद और शास्त्रका अत्यन्त ही समादर करते हैं। हे नरनाथ ! सांख्य लोगोंने सांख्य शास्त्रमें पञ्चविंशति तत्वके अतिरिक्त तत्व स्वीकार नहीं किया है ; उन लोगोंका जो परम तत्व है, उसे ही यथावत् वर्णन किया है। सांख्य लोग

कहते हैं, कि लोग मूर्खतासे नित्य प्रबुद्ध परमात्मा और जीवके एकत्व स्वरूपको न जानकर दोनोंमें भेद कल्पना किया करते हैं; परन्तु यथार्थमें योगसे जीव ब्रह्मकी एकता मालूम हुआ करती है।

३०७ अध्याय समाप्त।

बसिष्ठ बोले, हे राजन्! अनन्तर बुद्ध परमात्मा वा सत्व आदि गुणोंकी विधिकर्त्ता अबुद्ध जीवका विषय कहता हूं, सुनो। परमात्मा मायाके सहारे अपनेको विश्व, तैजस, प्राज्ञ, बिराट्, सूत्रात्मा और अन्तर्यामी रूपसे अनेक भागमें बिभक्त करके उन सब रूपोंको यथार्थ कहके बोध करता है। उस समय बुध्यमान जीव "मैं कर्त्ता, मैं भोक्ता हूं" इस ही प्रकार अभिमानके अनुसार सत्वादि गुणोंकी धारणा करते हुए स्रष्टादिके कर्त्तृत्वरूपसे बिकृत होकर बुद्ध परब्रह्मको यथार्थरूपसे नहीं जान सकता।

हे प्रजानाथ! इस लोकमें क्रीड़ाके निमित्त जीव बारम्बार बिकृत हुआ करता है और कार्य्यके सहित अज्ञान अर्थात् यह घट है, मैं आपको नहीं जानता, "इस ही भांति अबिद्या कार्य्य घट आदि और आत्माश्रित अज्ञानका अनुभव करता है, इसहीसे लोग उसे बुध्यमान कहके निर्द्देश करते हैं। हे तात! अव्यक्त अचेतन होनेसे कौन बस्तु सगुण है, कौन निर्गुण है, उसे किसी प्रकार भी जाननेमें समर्थ नहीं होता, इस ही लिये लोग उसे अप्रतिबुद्ध कहा करते हैं। वेदमें ऐसा प्रसिद्ध है, कि अव्यक्त प्रकृति, यद्यपि पञ्चबिंश बुद्धमान जीव ससङ्ग होनेसे उसे जान सकता है। तथापि असङ्ग परमात्माको नहीं जान सकता। पुरुषके अस्फुट अधिकारी होनेपर भी ससङ्गत्व निबन्धनसे लोग उसे मूढ़ कहा करते हैं; और महात्मा पचीसवां पुरुष कार्य्यके सहित अज्ञान अर्थात् यह घट है, मैं आपको नहीं जानता" इस ही प्रकार अबिद्याकार्य्य घट आदि और आत्माश्रित अज्ञानका अनुभव करता है, इसहीसे लोग उसे बुध्यमान कहा करते हैं। उस ही निमित्त परमात्माको नहीं जान सकता, परन्तु केवल चैतन्यस्वरूप निर्म्मल बुद्ध अप्रमेय सनातन छब्बीसवां परमात्मा सदा चतुर्बिंश अव्यक्त और पचीसवें पुरुषको जाननेमें समर्थ है। हे तात! जो लोग दृश्य और अदृश्य अर्थात् कार्य्य तथा कारण रूप स्थूल सूक्ष्म समस्त पदार्थोंमें सदा स्वरूपसे अनुगत रहते हैं, वे केवल सत्भावसे ही षड़बिंश शब्दसे कहे गये हैं; इस ही लिये मनीषी लोग इस सजीव शरीरस्थ उस षड़बिंशको अव्यक्त ब्रह्म कहके बोध करते हैं। जब बुध्यमान जीव अपनेको "मैं अन्य हूं" ऐसा जानता है, तब केवल सत्स्वरूप षड़बिंश, पचीसवां पुरुष और चतुर्बिंश अव्यक्त प्रकृतिको प्रत्यक्ष करके उसे पराजय करनेमें समर्थ होता है, तब उसकी सर्व्वश्रेष्ठ विशुद्ध ब्रह्मविषयिणी बुद्धि उदय हुआ करती है।

हे राजशार्दूल! उस ब्रह्मविषयक विद्याका उदय होने पर षड़बिंश धर्म्मबुद्धत्व लाभ करके सर्ग और प्रलयधर्म्मवाली प्रकृतिको परित्याग किया करता है। जो निर्गुण होके सगुण अचेतन प्रकृतिको जान सकते हैं, वे षड़बिंश होते हैं; इसलिये अव्यक्त प्रकृतिका साक्षात्कार होनेसे ही जीव षड़बिंश हुआ करता है। पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जीव तीनों उपाधिसे मुक्त होकर षड़बिंशके सहित मिलित होनेपर अजर, अमर, अनारोपित, नित्य अपरोक्ष परमात्माको पाता है। हे मानद! षड़बिंश परमात्मा प्रत्यक्ष परि दृश्यमान शरीर आदि तत्वोंका आश्रय होनेपर भी तत्वरूपसे न माना जायगा; क्यों कि मनीषी लोग पञ्चबिंश पर्य्यन्त ही तत्व कहा करते हैं। हे तात!

कार्य्य और कारण रूप उपाधि रहित ज्ञान-स्वरूप परब्रह्म कार्य्यभूत महदादि तत्वोंमें कदापि विद्यमान नहीं रह सकता; क्यों कि यह निज तत्व बुध्यत्व लक्षण "मैं ब्रह्म हूं" ऐसी वृत्ति भी परित्याग किया करता है। जीवकी अन्तःकरणकी वृत्ति सदा षड्विंश आकारमें परिणत होने पर वह अजर और अमर होकर बलपूर्व्वक निश्चयही षड्विंशके सङ्ग समता लाभ करता है। जीव प्रबोध स्वरूप षड्विंश परब्रह्मके जरिये प्रबोधित होके भी अज्ञान वशसे उस परब्रह्मको न जान सकनेसे उस ही अज्ञानके अनुसार अनेकत्व अर्थात् प्रपञ्चकी उत्पत्ति होती है यह सांख्य और वेदमें वर्णित हुआ है। और जब ज्वरात्मक जीव चैतन्यतायुक्त होकर अपनेको "अहं" इस रूपसे नहीं बोध करता, उस ही समय उसका एकत्व हुआ करता है। हे मिथिलाधिपति नरेन्द्र! सुखादि संसर्ग अहंकाराभिमानी जीव जब ज्ञानके अगोचर उस षड्विंशके सहित समता लाभ करता है, तभी वह निःसङ्ग होता है। परन्तु जब जीव अज निःसङ्ग सर्व्वव्यापी षड्विंशको प्राप्त होकर विशेष रूपसे उसे जान सकता है, तभी वह अव्यक्त प्रकृतिको परित्याग किया करता है। इस ही प्रकार जब षड्विंशका बोध होता है, तब उसे चौबीस तत्व असार मालूम होते हैं। हे पाप रहित! वेदविहित अनुभवके अनुसार मैंने तुम्हारे समीप अप्रतिबुद्ध, चर बध्यमान और अचर बुद्ध ईश्वर विषयका यथावत वर्णन किया; परन्तु इस ही भांति शास्त्रके अनुसार अनेकत्व और एकत्वका विवरण अनुभव करो। जैसे उदुम्बरके सहित मशक और जलके संग मछलीकी परस्पर विभिन्नता मालूम होती है, वैसेही प्रकृतिके संग पुरुषका पार्थक्य, अनेकत्व और एकत्व मालूम करो। परन्तु सांख्य शास्त्रमें ऐसा कहा है, कि प्रकृतिको अपनेसे पृथक् जाननेसे ही उसकी मुक्ति और उसही समयमें एकत्व व्यवहृत होती है नहीं तो उसकी सदा नानात्व व्यवहृत हुआ करती है। कवि लोग कहते हैं, कि इस पञ्चविंश पुरुषके शरीरमें जो षड्विंश परब्रह्म विद्यमान है, अव्यक्त ज्ञान और अज्ञानके विषय महदादिकोंसे उसे विमुक्त करना होगा, और ऐसा निश्चय है, कि अज्ञान नष्ट होनेसे ही षड्विंश परमात्मा मुक्त होता है, नहीं तो उसके मुक्ति लाभकी सम्भावना नहीं है। हे पुरुष श्रेष्ठ! यह चिदात्मा जीव इस लोकमें क्षेत्रके सहित एकीभूत होकर क्षेत्र-धर्म्मा होता है, और शुद्ध बुद्ध परमात्माके सहित मिलित होनेसे विशुद्ध धर्म्मा, मुक्तके संग संयुक्त होनेसे विमुक्त धर्म्मा वियोग धर्म्माके सहित मिलनेसे विमुक्तात्मा विमोक्षि संसर्गसे विमोक्ष शुचिकर्म्मा सहवाससे शुचि, विमलात्मके सहित एकत्रित होनेसे विमल आत्मा केवल सम्मिलित होकर केवलात्मा स्वतन्त्र संयोगसे स्वतन्त्र होके स्वतन्त्रता लाभ किया करता है।

हे महाराज! मैंने तुम्हारे समीप इस यथार्थ तत्वको यथावत वर्णन किया है, आप मत्सरता रहित होके विशुद्ध आद्य सनातन परब्रह्म स्वरूप यह अर्थ परिग्रह करिये। हे राजन्! इस वेदमार्गमें श्रद्धाहीन प्राणियोंके प्रणत होनेसे उन्हें प्रबोधित करने और तत्वरत प्यासे लोगोंको आप ज्ञानका कारण परम तत्व प्रदान करिये, परन्तु अनृतात्मा, शठ, कायर, कुटिलबुद्धि, पाण्डित्याभिमानी और दूसरेको पीड़ित करनेवाले पुरुषोंको यह कदापि प्रदान न करिये। परन्तु जैसे पुरुषोंको इसका उपदेश देना चाहिये, उसे विशेष करके कहता हूं, सुनो। हे नरेन्द्र! जो लोग श्रद्धावान्, गुणवान्, सदा परापवादसे विरत, विशुद्ध, योगरत, पण्डित, क्रियावान्, क्षमाशाली, लोक हितैषी, पुण्यशील, विधिप्रिय, विवाद रहित, विज्ञ, हितकारी पुरुषोंके विषयमें क्षमावान्,

शम और दम गुणमें आसक्त हैं ; उन्हें ही यह शुद्ध परम तत्व प्रदान करो। जो लोग ऐसे गुणोंसे हीन हों, उन्हें यह तत्व दान न करे। क्योंकि पण्डित लोग कहा करते हैं, कि जो लोग निर्गुण अपात्रको यह परम तत्त्व दान करते हैं, वे कभी भी कल्याण लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। हे राजेन्द्र! इसलिये यदि कोई व्रतहीन मनुष्य आपको यह रत्नपूरित पृथ्वी प्रदान करे, तोभी उसे यह दान न करना, जितेन्द्रिय पुरुषोंको ही दान करना। हे महाराज कराल! आज जो तुमने मेरे समीप इस उत्पत्ति स्थितिरहित शोकशून्य परम पवित्र अक्षर परब्रह्मका विषय सुना है, उसमें तुम्हें और कुछ भी भय नहीं है। आप तत्त्वज्ञानको विशेष रूपसे जानके जन्म-मरणसे रहित, निरामय, भयहीन, कल्याणकर, अपरिलोप उस परब्रह्मका दर्शन करके मोह और विषयको परित्याग करिये। हे नराधिप! जैसे आज तुमने मुझे परितुष्ट करके मेरे निकट यह सनातन ब्रह्मज्ञान लाभ किया है, वैसे ही मैंने अत्यन्त यत्नके सहित उस उग्रर्चिता हिरण्यगर्भ सनातन ब्रह्माको प्रसन्न करके उनके समीप यह ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। हे राजेन्द्र! जैसे आज आपने मोक्षवित् पुरुषोंके परमपद इस महत् ज्ञानके विषयमें प्रश्न करके मुझसे जाना है, उस ही भांति मैंने उस हिरण्यगर्भ ब्रह्मसे इसे पूछके उनके समीप इसे पाया है।

भीष्म बोले, हे पाण्डुपुत्र महाराज! पञ्चविंश जीवको जिससे पुनरावृत्ति निवारित होती है, ऋषिश्रेष्ठ वशिष्ठ मुनिके वचन अनुसार मैंने तुम्हारे समीप उस विषयको वर्णन किया। हे राजन्! बुध्यमान जीव अजर अमर अक्षर परब्रह्मके तत्त्वको यथावत् जानकर परमज्ञान प्राप्त कर सकनेसे फिर जन्म ग्रहण नहीं करता। हे तात! देवऋषि नारदके समीप मैंने इस निःश्रेयस परम ज्ञानको जिस प्रकार सुना था, उसे ज्योंका त्यों तुम्हारे निकट कहा। महात्मा वसिष्ठने पहले यह सनातन ब्रह्मज्ञान हिरण्यगर्भ ब्रह्मासे पाया, उसके अनन्तर ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठसे देवर्षि नारद और नारदसे मैंने पाके तुमसे कहा। हे कौरवेन्द्र! तुम इसे सुनकर अब शोक मत करो। हे राजन्! जो लोग क्षर और अक्षरको यथार्थ रूपसे जान सकते हैं, उन्हें कहीं भी भय नहीं रहता और जो लोग इसे प्रकृत रूपसे नहीं जान सकते, उन्हें सर्व्वत्र ही भय उपस्थित हुआ करता है। हे भारत! जीव अज्ञाननिबन्धनसे मूढ़ वा बारम्बार दुःखी होकर जीवन नष्ट होनेपर मरणशील सहस्रों जन्म भोग किया करता है। यद्यपि कालक्रमसे शुद्ध होकर उस अज्ञानसागरसे पार होसके, तो धीरे धीरे तिर्य्यग्से मनुष्य और मनुष्यसे सुरलोकमें सुख भोग करनेमें समर्थ होवे। हे राजन्! भयङ्कर अज्ञानसागरकी अगाधता अर्थात् गहराई अव्यक्त प्रकृति है, प्राणि लोग प्रतिदिन उस अव्यक्त रूप अगाध अज्ञानसागरमें डूबते रहते हैं, तुम अव्यक्तरूपी उस अगाध समुद्रसे पार होनेके लिये रज और तमोगुणसे विरत होगे।

३०८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, वसुमान नाम किसी एक जनक पुत्रने मृगयाके निमित्त निर्ज्जन वनमें घूमते घूमते ब्राह्मणोंमें मुख्य भृगुपुत्र ऋषिको देखा, अनन्तर वसुमानने उस बैठे हुए मुनिको सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे वहां बैठके उनसे यह प्रश्न किया। हे भगवन्! अनित्य देहमें वासनाविशिष्ट पुरुषको इस लोक वा परलोकमें कौन कार्य्य कल्याणकारी है, वह मुझसे विस्तारपूर्व्वक कहिये। वह महात्मा महातपस्वी भृगुनन्दन जनकपुत्र वसुमानसे इस प्रकार सत्कृत और जिज्ञासित होकर उससे कल्याणदायक यह वचन कहने लगे।

ऋषिने कहा, हे जनकपुत्र! तुम जितेन्द्रिय होके इस लोक वा परलोकमें मनके अनुकूल कार्य्योंको करो और प्राणियोंके विरोधी कार्य्योंसे निवृत्त रहो। हे तात! साधु पुरुषोंका धर्म्म हितकारी है, धर्म्म ही उनका अवलम्ब है, और धर्म्मसे ही चराचर तीनों लोक उत्पन्न हुए हैं। हे मधुर रसके अभिलाषी! तुम्हें किस कामनामें तृष्णा नहीं होती। हे दुष्ट-बुद्धि! तू केवल मधु देखता है, मधुके पतनका पीछा करके नहीं देखता है। ज्ञान फलार्थी मनुष्य जैसे ज्ञानका परिचय करते हैं, धर्म्मफलकी इच्छा करनेवाले पुरुष भी उसी भांति धर्म्मकी जांच करें। धर्म्मकाम दुष्ट लोगोंसे पवित्र कर्म्मका होना अत्यन्त कठिन है; परन्तु कर्म्मकाम साधु पुरुषोंके लिये दुष्कर कर्म्म भी सरल हुआ करता है। साधु लोग बनमें रहके भी ग्रामीण लोगोंकी भांति ग्राम सुख भोगकर सकते हैं और गांवमें भी रहके बनवासियोंकी भांति बनसुख भोगनेमें समर्थ होते हैं। हे जनकपुत्र! तुम प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्गके दोष और गुणको विचारके स्थिर होकर शारीरिक, वाचनिक तथा मानसिक धर्म्ममें श्रद्धा करो। हे राजन्! तुम नित्य बहुतसा दान करना, साधुओंकी निन्दा न करना और देश कालके अनुसार व्रत तथा पवित्रताके सहारे सत्कृत प्रार्थना करना। शुभ विधिसे जो कुछ प्राप्त होता है, वही प्रकृत फल सिद्ध किया करता है। तुम क्रोधरहित होके पात्र विशेषको दान करना, दान करके कदापि पछतावा अथवा उसकी प्रशंसा न करना, जो ब्राह्मण वेदज्ञ, अनृशंस, पवित्र, दान्त, सत्यवादी, सरलता, युक्त शुद्धयोनिमें उत्पन्न हुए और पवित्र कर्म्म करनेवाले हैं, वेही पात्र हैं; सत्कृत अनन्यपूर्व्वा पत्नी ही पुत्रोत्पत्तिकी स्थान है, इसलिये वही इस स्थलमें योनि कहके अभिहित हुई है और ऋक्, यजु तथा साम, इन तीनों वेदोंके जाननेवाले षटकर्म्म शाली ब्राह्मण ही पात्ररूपसे वर्णित हुए हैं। देशकालके अनुसार पात्र और कर्म्मविशेषमें उन्हीं लोगोंके विषयमें धर्म्म तथा अधर्म्म हुआ करता है। जैसे पुरुष थिल समाप्त होने पर धीरे धीरे शरीरसे सब धूलि धोता है, वैसे ही शरीरसे सब पापोंको बहुत यत्नके सहित दूर करे। जैसे पुरुषके विचारके अनुसार घृतका पीना औषधकी तरह हितकारी होता है, वैसे ही दान आदिके जरिये निष्पाप पुरुषका धर्म्म परलोकमें सुखकर हुआ करता है। चित्त शुभ और अशुभरूपसे सब प्राणियोंमें ही विद्यमान रहता है, पुरुष सदा पापसे चित्तको आकर्षित करके शुभकार्य्यमें संयोजित करे। सब कोई सर्व्वदा अपने अपने कार्य्योंकी ही प्रशंसा किया करते हैं; इसलिये जिस प्रकार तुम्हारा धर्म्ममें अनुराग रहे, सदा प्राणपणसे उसकी ही चेष्टा करना। हे दुष्टात्मन्! तुम धीरज धारण करो। हे दुर्बुद्धे! तुम बुद्धिमान् बनो, तुम बहुत ही अपशान्त और अज्ञ हो; इसलिये प्रशान्त होकर ज्ञानीकी भांति आचरण करो। ऐश्वर्यशाली पुरुष निज तेजबलसे जिस ऐहिक और पारलौकिक मङ्गलका उपाय प्राप्त करते हैं, उस मङ्गलका मूल ही परम धैर्य्य है। राजर्षि महाभिष उस धैर्य्यसे रहित होनेसे स्वर्गसे पतित हुए थे और ययातिने पुण्यक्षीण होके भी धैर्य्यबलसे स्वर्गलोक पाया। हे राजन्! इसलिये तुम धीरज अवलम्बन करके तपस्वी धर्म्मशील पण्डितोंकी सेवा करनेसे अवश्य ही विपुल बुद्धि और अभिलषित कल्याण लाभ करोगे।

भीष्म बोले, हे राजन्! नत स्वभावयुक्त जनकपुत्र वसुमानने उस भृगुपुत्र मुनिका ऐसा वचन सुनके अन्तःकरणकी वृत्तियोंको काम आदिसे निवृत्त करते हुए धर्म्ममार्गमें बुद्धि प्रवर्त्तित की थी।

३०८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, जो धर्म्माधर्म्म सब तरहके संशय, जन्म, मृत्यु, पुण्य, पापसे बिमुक्त और मङ्गल स्वरूप सर्व्वदा भय-रहित अविनाशी, अक्षर, अव्यय, स्वभावसे ही निर्दोष तथा सदा आयासरहित है, उसे ही आपको वर्णन करना उचित है।

भीष्म बोले, हे भारत! देवराजके पुत्र प्रश्नबित्प्रवर महायशस्वी महाराज जनकने ऋषिश्रेष्ठ याज्ञवल्क्यसे जो बिषय पूछा था, उस जनकके सम्वादयुक्त याज्ञवल्क्यके प्राचीन इतिहासको तुम्हारे समीप कहता हूं।

जनक बोले, हे बिप्रर्षि! मैं आपके अनुग्रहका अत्यन्त अभिलाषी हूं, इसलिये इन्द्रिय संख्या, प्रकृतिका परिमाण और अव्यक्त क्या है; अव्यक्तसे पृथक् निर्गुण परब्रह्म क्या हैं? इन सबकी उत्पत्ति, नाश और कालकी संख्या कहिये। हे बिप्रेन्द्र! मैं अज्ञ हूं, आप ज्ञानमय रत्नस्वरूप हैं, इसलिये मैं आपके निकट इन सब बिषयोंको निःसंशय रूपसे सुननेके निमित्त प्रश्न करता हूं।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे पृथ्वीपाल! सांख्य और योगमें जो सब ज्ञान बिहित हैं, उनमेंसे कुछ भी आपको अबिदित नहीं है, तौभी जब आप मुझसे पूछते हैं, तब इस बिषयकी तुमसे मैं अवश्य कहूंगा, क्यों कि जब कोई किसीसे कुछ पूछे, तब उससे वह बिषय यथार्थ रीतिसे कहना चाहिये, यह ऋषियोंका सनातन धर्म्म है; इसलिये आपने जो पूछा है, उसे बिशेष करके कहता हूं सुनो। अध्यात्मबिचारवाले सांख्य लोग अव्यक्त, महान्, अहङ्कार, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि, इन आठोंको प्रकृति तथा कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वाक्, हाथ, पांव, गुदा और मेढ़ इन सबको बिकार कहते हैं और महत् आदि सात पदार्थको व्यक्त कहा करते हैं। हे राजेन्द्र! पञ्च महाभूतोंके बीच शब्द आदि दश पदार्थ बिशेष नामसे बिख्यात हैं। कान आदि पांचो बुद्धीन्द्रिय सबिशेष कहके वर्णित हुई है। हे मैथिल! तुम और अध्यात्म गतिके बिचारनेवाले दूसरे पण्डित लोग मनको षोड़श बिकार कहा करते हैं। हे राजन्! भूतचिन्तक सांख्य लोग अव्यक्तसे उत्पन्न हुए महान् आत्माको प्रथम सर्ग और प्रधान कहते हैं, तथा महत्से उत्पन्न हुए अहङ्कारको बुध्यात्मक द्वितीयसर्ग अहङ्कारसे उत्पन्न भूत गुणात्मक मनको अहङ्कारिक तृतीय सर्ग, मनसे उत्पन्न पञ्च महाभूतोंको मानसिक चतुर्थ सर्ग, शब्दादि पञ्चकको भौतिक पञ्चमसर्ग कान आदि पांच इन्द्रियोंको बहुचिन्तात्मक मानसिक षष्ठ सर्ग, श्रोत्र आदिसे उत्पन्न वाक् आदि इन्द्रियोंको सप्तम सर्ग, सरल वृत्ति ऊर्द्ध प्रवाहयुक्त प्राण और तिर्य्यग् प्रवाह सम्पन्न समान, उदान, व्यान ये कई एक अष्टम सर्ग और ऋजुवृत्ति अधोप्रवाहयुक्त अपान तथा तिर्य्यग् प्रवाह सम्पन्न समान उदान, व्यान इन्हें नवम सर्ग कहा करते हैं। हे महाराज! वेदबिहित प्रमाणके अनुसार मैंने आपके समीप इन नव प्रकारके सर्गों और चौबीस तत्वोंका यथावत् वर्णन किया; इसके अनन्तर महात्माओंने इन गुण सर्गोंकी जिस प्रकार कालसंख्या निरूपण की है, वह मेरे समीप सुनो।

३१० अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य बोले, हे नरश्रेष्ठ! मैं अव्यक्त प्रकृतिका कालसंख्या कहता हूं, उसे आप मेरे समीप सुनिये। हे नरनाथ! अव्यक्त प्रकृतिके दश हजार कल्पमें दिन और इसही परिमाणसे उसको रात्रि होती है, यह शास्त्रमें वर्णित है। प्रतिबुद्ध परमात्मा सबसे पहले प्राणियोंके जीवन स्वरूप अन्न अर्थात् अन्नमय सूक्ष्म मन उत्पन्न

करता है। फिर हिरण्य अण्डसे समुद्भूत ब्रह्माको उत्पन्न किया करता है। हे राजन्! वह ब्रह्मा ही सब भूतोंकी मूर्त्ति है, मैंने ऐसा ही सुना है। अनन्तर वह महामुनि प्रजापति ब्रह्मा सम्वत्सर पर्य्यन्त अण्डके बीच बास करके फिर वर्षके अनन्तर उस अण्डेसे बाहर होकर पृथ्वी, स्वर्ग और ऊर्द्ध इन सबकी सृष्टि विषयक चिन्ता करने लगे। फिर उस ब्रह्माने पृथ्वी और स्वर्गके बीचमें आकाशकी सृष्टि की। हे राजन्! वेदमें पृथ्वी और स्वर्गका विषय इस ही प्रकार कहा गया है। अध्यात्म चिन्तक वेद वेदाङ्ग जाननेवाले ब्राह्मण लोगोंने साढ़े सात हजार कल्पतक ब्रह्माका दिन और इस ही परिमाणसे रात्रि संख्या निरूपण की हैं। हे राजसत्तम! महान् ऋषि ब्रह्माने महद्भूतोंके उपादान कारण देवतात्मक अहंकारकी सृष्टि करके, भौतिक देहके सहित उत्पत्ति समयमें बुद्धि, चित्त, मन और अहंकार नाम, इन चार पुत्रोंको उत्पन्न किया; ये पितृ लोग महाभूतोंके पिता हैं, ऐसा ही मैंने सुना है। इसके अतिरिक्त हमने इस भांति सुना है, कि अन्तः-करण चतुष्टयके सहित इन्द्रियां पितृलोक महाभूतोंके पुत्र रूपसे कल्पित हुए और चराचर सब लोक उन्हीं महाभूतोंके सहारे परिपूरित होरहे हैं। हे राजन्! परमेष्ठी ब्रह्माने अहंकार पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि और मन आदि सब इन्द्रियोंको उत्पन्न किया है। अहंकार करनेवाले तृतीय स्वर्गकारी इस अहंकारकी भी पांच हजार कल्प पर्य्यन्त दिनकी संख्या है और इस ही परिमाणसे रात्रिकी संख्या वर्णित हुई है। हे राजेन्द्र! पञ्च महाभूतोंके बीच शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन पांचोंके नाम विशेष करके वर्णित हुए हैं। ये शब्द आदि सब विषय सदा प्राणियोंको आविष्ट करते हैं। परस्पर आपसमें हितैषी होकर परस्परकी स्पृहा करते हैं, आपसमें स्पर्द्धावान होकर एक दूसरेको अतिक्रम करते हैं और रूप आदि गुणोंसे परस्पर बध्यमान होकर तिर्य्यग् योनिमें प्रवेश करके इस लोकमें ही घूमा करते हैं। शास्त्रमें इनकी तीन हजार कल्पतक दिनकी संख्या है और इस ही परिमाणसे रात्रिकी संख्या निरूपित हुई है। हे नरनाथ! मनका भी तीन हजार कल्प तक दिनका परिमाण है और तीन हजार कल्पतक रात्रिका परिमाण कहा गया है। हे राजन्! मन ही इन्द्रियोंके जरिये प्रेरित होकर विषयोंको प्रत्यक्ष करता है, मनके बिना इन्द्रियोंको विषयोंके प्रत्यक्ष करनेकी सामर्थ नहीं है। देखो नेत्र मनके सहयोगसे ही रूपको देखता है, मनका सहयोग न रहनेसे कदापि नहीं देखता; क्योंकि मन व्याकुल होनेसे रूप आदि विषय नेत्रके सम्मुख होनेपर भी वह उसे ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होता; जो लोग ऐसा कहा करते हैं, कि इन्द्रियें ही निज निज विषयोंका दर्शन करती हैं, वह वचन अमूलक है; क्योंकि इन्द्रियां कभी भी निज निज विषयोंको दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होतीं, केवल मन ही दर्शन किया करता है। हे राजन्! मनके विरत होनेसे इन्द्रियां उपरत होती हैं और मन ही इन्द्रियोंकी प्रधानता वा प्रभावको वर्द्धित किया करता है, इसहीसे ऐसा कहा गया है, कि मन ही इन्द्रियोंका ईश्वर है। हे महायशस्वी! इस लोकमें सब प्राणी बीस प्रकार कहे गये हैं।

३११ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे राजन्! मैंने आपसे इन तत्त्वोंकी सर्ग संख्या और कालसंख्या बिस्तारपूर्व्वक कही है, अनन्तर अनादि निधन अक्षर नित्य ब्रह्मा जिस प्रकार सब जीवोंको बार बार उत्पन्न करके संहार करता

है, उसे विस्तारके सहित कहता हूं। हे महीपाल! भगवान् अव्यक्त ब्रह्मा रात्रि समयमें स्वप्न देखके प्राणियोंके दिनका क्षय काल उपस्थित जानके उनके संहारके लिये अहंकाराभिमानी महारुद्रको प्रेरणा करते हैं। तिसके अनन्तर वह महारुद्र अव्यक्त ब्रह्माके जरिये प्रेरित होकर प्रज्वलित अग्निके समान द्युतिशाली सौहजार किरणवाले सूर्य्यकी मूर्त्ति धारण कर निज शरीरको बारह हिस्सेमें विभक्त करके अपने तेजसे उसही समय जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज, इन चार प्रकारके प्राणियोंको जलाया करते हैं। हे राजन्! जिस सूर्य्यके प्रकाशप्रभावसे ही कछुवेकी पीठ समान भूमि और स्थाणु जङ्गम आदि सब वस्तु विनष्ट हो जाती है, वह अमितबलशाली सूर्य्य सारे जगत्‌को जलाकर बलवत्तर अधिक जलसे उस भस्मीभूत सारी पृथ्वीको परिपूरित करता है। हे राजेन्द्र! फिर कालाग्नि उस समस्त जलको सुखाकर स्वयं प्रज्वलित होती रहती है। उसके अनन्तर अत्यन्त बलशाली वायु निज शरीरको आठ भागोंमें विभक्त करके तिर्य्यग्, ऊर्द्ध और अधःप्रदेशमें विचरते हुए प्राणियोंको उत्तापित करनेवाली जलती हुई सातशिख अग्निको भक्षण करता है। फिर क्रमसे वायुको आकाश, आकाशको मन, मनको भूतात्मा प्रजापति अहङ्कार, वर्त्तमान, भूत तथा भविष्यत् महान् अहङ्कारको और अणिमा आदि शक्तियुक्त ज्योतिर्म्मय अव्यय सर्व्वग्राही सर्व्वग, सर्व्वदर्शी सर्व्वशिरा सर्व्वानन सर्व्वश्रोता सर्व्वव्यापक सब भूतोंकी बुद्धिके प्रवर्त्तक अंगुष्ठ परिमित अनन्त महात्मा ईश्वर उस अनुपम महात्मा महान् और संसारको ग्रास किया करता है। अनन्तर इस ही प्रकार सब वस्तु नष्ट होकर अक्षय, अव्यय, अव्रण अनघ, वर्त्तमान, भूत वा भविष्य कालके सृष्टिकर्त्ता उस ब्रह्मरूपमें विद्यमान रहती हैं। हे राजन! मैंने तुम्हारे समीप यह संहारका विषय यथावत वर्णन किया अब अध्यात्म अधिभूत और अधिदैवका विषय कहता हूं सुनो।

३१२ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे राजन्! तत्वदर्शी ब्राह्मण लोग दो पादको अध्यात्म, गन्तव्यको अभिभूत और उसमें विष्णुको अधिदैव कहा करते हैं। तत्वार्थदर्शी पुरुष गुदाको अध्यात्म, विसर्गको अधिभूत और मित्रको अधिदैव कहते हैं। योगदर्शी लोग उपस्थको अध्यात्म, आनन्दको अधिभूत और प्रजापतिको अधिदैव कहते हैं। सांख्यदर्शी लोग दोनों हाथोंको अध्यात्म, कर्त्तव्यको अधिभूत और उस विषयमें इन्द्रको अधिदैव कहते हैं। योग निदर्शी मनुष्य वाक्यको अध्यात्म, वक्तव्यको अधिभूत और उस विषयमें अग्निको अधिदैव कहते हैं। यथाश्रुति निदर्शी पण्डित लोग नेत्रको अध्यात्म, रूपको अधिभूत और सूर्य्यको अधिदैव कहा करते हैं। वेदविहित अनुभवशाली मनुष्य कानको अध्यात्म, शब्दको अधिभूत और दिशाओंको अधिदैव कहा करते हैं। श्रुतिविहित निदर्शनशाली मनीषि लोग जीभको अध्यात्म, रसको अधिभूत और उसमें जलको अधिदैव कहा करते हैं, श्रुतिविहित निदर्शनशाली पण्डित लोग नासिकाको अध्यात्म गन्धको अधिभूत और पृथ्वीको अधिदैव कहते हैं। तत्त्वबुद्धिवाले ब्राह्मण लोग त्वचाको अध्यात्म स्पर्शको अधिभूत और पवनको अधिदैव कहते हैं। शास्त्र जाननेवाले ब्राह्मण मनको अध्यात्म, मन्तव्यको अधिभूत और चन्द्रमाको अधिदैव कहते हैं। तत्त्व निदर्शनशाली विद्वान् लोग अहङ्कारको अध्यात्म, अभिमानको अधिभूत और इसमें बुद्धिको अधिदैव कहते हैं। यथार्थदर्शी पण्डित लोग बुद्धिको अध्यात्म, बोधव्यको अधिभूत और क्षेत्रज्ञ जीवको अधिदैव कहा करते हैं। हे तत्त्ववित्

महाराज! सृष्टि, स्थिति और प्रलय, इन तीनों कालमें ही भूत प्रपञ्चके अनुसार उस एकमात्र अद्वितीय ईश्वरकी विभूतिको मैंने तुम्हारे निकट यथार्थ रीतिसे कहा। हे राजन्! प्रकृति इच्छानुसार क्रीड़ाके अनुसार निमित्त आत्म-कामनाके सैकड़ों तथा हजारों तरहसे सबको विकृत कर रखती है। जैसे मर्त्य लोकवासी मनुष्य एक दीपकसे सहस्रों दीपक जलाते हैं, वैसे ही प्रकृति पुरुषके सत, रज और तम, इन तीनों गुणोंको अनेक हिस्सोंमें विकृत किया करती है। सत्त्व, धैर्य्य, आनन्द, ऐश्वर्य्य, प्रीति, प्रकाश, सुख, शुद्धता, आरोग्यता, सन्तोष, श्रद्धानता, कृपणता हीनता, असत्य, क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, आनृण्य, मार्द्दव, लज्जा, चपलता हीनता, पवित्रता, विनीतता, आचार, अचञ्चलता, असम्भ्रचित्तता दूसरेकी की हुई भलाई, बुराई और वियोगको अविकल्पना, दानके सहारे आत्म ग्रहण, अस्पृहता, परोप-कारिता और सब प्राणियोंमें दया, ये सत्त्वके गुण कहके वर्णित हुए हैं। सङ्घात, रूप, सुन्द-रताई, विग्रह, अत्याग, करुणाहीनता, सुखदुः-खका सेवन; परापवादमें रति, विवाद सेवन, अहंकार, असत्कारकी चिन्ता, वैरोपसेवा, परि-ताप, पराया धन हरना, लज्जानाश, अनार्ज्जव, भेद, परुषता, काम, क्रोध, मद, दर्प, द्वेष और अतिवाद, ये सब रजोगुण कहके वर्णित हुए हैं और मोह अप्रकाश, तामिस्र, अन्धता-मिस्र, मरण, क्रोध भक्षण आदिमें अभिरुचि, भोजनमें अपर्य्याप्ति, पीनेमें अतृप्ति, विहार शयन और आसनमें गन्धवास आदिका रूप अतिवाद तथा प्रमोदमें रति अज्ञान नृत्यगीत और बाजोंमें श्रद्धानता अथवा धर्म्मविशेषमें द्वेष प्रकाश, ये सब तामसगुण कहके निर्द्दिष्ट हुए हैं।

३१३ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे पुरुषोत्तम! सत, रज और तम ये तीनों प्रधान गुण हैं; ये गुण सदा समस्त जगत्के निमित्त कारण रूपसे निवास करते हैं। षड़ैश्वर्य्य शक्ति युक्त अव्यक्त रूप प्रधान, इन तीन प्रकारके गुणोंसे प्रत्यगात्म परमात्माको सैकड़ों, लाखों और करोड़ों प्रकारसे विभक्त कर रखता है। अध्यात्म विचार करनेवाले पण्डित लोग कहते हैं, कि इस लोकमें सतोगुण अवलम्बन करनेवाले मनुष्य लोग ही उत्तम स्थान, रजोगुणावलम्बी मनुष्य मध्यम स्थान और तमोगुणावलम्बी पुरुष अधम स्थान प्राप्त करते हैं। इस लोकमें जो लोग केवल अधर्म्म रूप पापकार्य्य करते हैं वे लोग अधोगति लाभ किया करते हैं। हे नराधिप! सत्त्व रज और तम, इन तीनों गुणोंके परस्पर मिलन तथा द्वन्द्वको मेरे समीप सुनिये सतोगुणमें रज, रजोगुणमें तम, तमोगुणमें सत और सतोगुणमें समता दीख पड़ती है। अव्यक्त ब्रह्म सत्त्वसे संयुक्त होकर देवलोक, रज और तमसे संयुक्त होकर मनुष्य लोक, रज और तमसे युक्त होके तिर्य्यग्योनि तथा सत्त्व, रज, तम गुण युक्त होके मनुष्यलोक लाभ करता है, और तत्त्वज्ञ पुण्य तथा पापरहित महात्मा लोग शाश्वत अव्यय अक्षय अमृत परमधाम पाते हैं। ज्ञानियोंका जन्म श्रेष्ठ और उनका स्थान अक्षय है, अच्युत, अतिन्द्रिय, निरवयव और जन्म मृत्यु, तथा अन्धकारसे रहित है। हे नरनाथ! आपने मुझसे जो परम धामका विषय पूछा था, वह स्थान अव्यक्त ब्रह्ममें विद्यमान रहता है, मनुष्य लोग उस अव्यक्त ब्रह्मको जान-नेसे ही उस स्थानको सहजमें प्राप्त कर सकते हैं; परन्तु उस ब्रह्मका प्रकृति संसर्ग होनेसे ही लोग उसे प्रकृतिस्थ पुरुष कहा करते हैं। हे राजन्! प्रकृति अचेतन है, परन्तु उस ब्रह्मके अधिष्ठानसे ही वह सृष्टि और संहार किया करती है।

जनक बोले, हे महाबुद्धिमान ऋषिवर! प्रकृति और पुरुष दोनोंही अनादि निधन हैं, अमूर्त्त, अचल, अविचलित दोष-गुणसे युक्त और अप्रत्यक्ष हैं, परन्तु इनमेंसे किस लिये प्रकृति अचेतन और पुरुष सचेतन क्षेत्रज्ञ कहके वर्णित हुआ। हे विप्रेन्द्र आपने समस्त मोक्षधर्म्मकी उपासना की है; इसलिये आपके समीप सम्पूर्ण मोक्षधर्म्म यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। हे ऋषिसत्तम! हाथमें स्थित आमलककी भांति आपको सब विषय विदित है। इसलिये आप पुरुषके अखिल कैवल्य, भावरहित, देहाश्रित देवता यह सब और व्यग्र विपदग्रस्त जीवोंके स्थान तथा काल क्रमसे वे जिन स्थानोंको लाभ करते हैं, वह स्थान, सांख्य ज्ञान, पृथक् योग और मृत्युसूचक तत्त्व यह सब विस्तारपूर्व्वक मुझसे कहिये।

३१४ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे तात! निर्गुणको सगुण और सगुणको निर्गुण करना जो महाकठिन दुःसाध्य है, उसे तुम यथार्थ रूपसे मेरे समीप सुनो। तत्वदर्शी महात्मा मुनि लोग ऐसा कहते हैं, कि जिसमें गुणका संसर्ग है वह वस्तु ही गुणवान है; जिसमें गुणका संसर्ग नहीं वह वस्तु गुणवान नहीं है। अव्यक्त प्रधान गुणवान होनेसे सब गुणोंको त्यागनेमें असमर्थ होता है, और स्वभाविक अज्ञ होनेसे सदा वही उन गुणोंको भोग किया करता है। अव्यक्तमें वस्तु ज्ञान न होनेसे वह अज्ञ रूपसे गिना जाता है, परन्तु पुरुष स्वभाविक ही ज्ञानवान है; क्यों कि "मुझसे और कोई भी श्रेष्ठ नहीं है" वह सदा ऐसा ही ज्ञान किया करता है। हे राजन्! इसही कारणसे अव्यक्त अचेतन है, परन्तु क्षरत्व निबन्धनसे उसमें भोक्तृत्व हुआ करता है। वह अज्ञानसे बार बार आत्माको गुणयुक्त किया करता है, इसलिये जबतक उसे आत्मज्ञान नहीं होता तबतक आत्मा मुक्तिलाभ करनेमें समर्थ नहीं होता, और आत्मा प्रकृत महदादि तत्वोंके कर्त्तृत्व निबन्धनसे मुक्त न हो सकनेसे तत्त्वधर्म्मा कहा जाता है। इस ही प्रकार वह सब स्वर्गोंके कर्त्तृत्व हेतुसे स्वर्ग धर्म्मा, योग कर्त्तृत्व हेतुसे योगधर्म्मा प्रकृति अर्थात् प्रजापुञ्जके कर्त्तृत्व निबन्धनसे प्रकृतिधर्म्मा, बीजके कर्त्तृत्व हेतुसे बीजधर्म्मा और शम दम आदि गुणोंकी सृष्टि तथा प्रलय कर्त्तृत्व हेतुसे गुणधर्म्मा कहके वर्णित होता है, आत्मा मिथ्या अभिमान वशसे सुख दुःख भोग किया करता है परन्तु मैंने ऐसा सुना है, कि अध्यात्मज्ञ अजर सिद्ध यति लोग साक्षित्व, अनन्यत्व वा अभिमानितासे आत्माको केवल अनित्य नित्य अव्यक्त तथा व्यक्त जानते हैं। परन्तु सब प्राणियोंपर दया करनेवाले केवल ज्ञानमें रत निरीश्वरवादी सांख्य लोग अव्यक्तको एकत्व और पुरुषको नानात्व कहा करते हैं और वे लोग बहुतसे दृष्टान्त दिखाके पुरुष तथा प्रकृतिमें इस प्रकार भेद कहते हैं; कि जैसे मूंजके भीतरकी सींक मूंजसे पृथक् है, गूलर फलके भीतर रहनेवाले मशक गूलरसे अलग है, जलमें रहनेवाली मछलियें जलसे स्वतन्त्र हैं, पत्थरमें रहनेवाली अग्नि पत्थरसे पृथक् है, और जैसे जलमें रहनेवाले कमल जलसे अलग हैं; वैसेही प्रकृतिमें निवास करनेवालेही पुरुषको भी प्रकृतिसे पृथक् जानो। हे राजन्! साधारण पुरुष इस सहवास और नित्य निवासको यथार्थ रीतिसे नहीं जान सकते। जो इसे उलटा समझते हैं, वे सम्यकदर्शी होनेमें समर्थ नहीं होते वरन वे लोग स्पष्ट ही बार बार घोर नरकमें डूबा करते हैं।

हे राजन्! मैंने जो यह परिसंख्या करके अनुत्तम सांख्य दर्शन तुमसे कहा है, सांख्य लोग इस ही प्रकार परिसंख्या करके कैवल्यता

लाभ किया करते हैं। परन्तु जो लोग सांख्यके अतिरिक्त अन्य तत्त्वकी आलोचना करते हैं, उनके लिये यह निदर्शन कहा है, इसके अनन्तर योगानुदर्शन ज्योंका त्यों कहता हूं।

२१५ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे नृपसत्तम! मैंने आपसे यथाश्रुत और यथादृष्ट सांख्यज्ञानको ज्योंका त्यों कहा, अनन्तर योगज्ञानको यथार्थ रूपसे कहता हूं, सुनो। सांख्य ज्ञानके समान ज्ञान और योगबलके समान दूसरा बल नहीं है, तथा सांख्य वा योग दोनोंका ही अनुष्ठान एक वा दोनों ही अविनाशी कहके वर्णित हुए हैं। हे राजन्! जो मनुष्य मूढ़ हैं, वेही सांख्य और योगको पृथक् पृथक् समझते हैं, परन्तु निश्चय-हेतुसे मैं दोनोंको एक जानता हूं। योगी लोग योगके सहारे जिसका दर्शन करते हैं, सांख्य लोग भी ज्ञानके जरिये उसका दर्शन किया करते हैं; इसलिये जो लोग सांख्य और योग दोनोंको ही एक रूप जानते हैं, वेही तत्त्ववित् हैं। हे अरिदमन! तुम निश्चय जानो, कि जितने प्रकारके योग हैं, उन सबमें ही प्राण और इन्द्रियोंको अवलम्बन करना पड़ता है, योगी लोग इस ही प्रकार योगका अनुष्ठान करके, उसी योगयुक्त देहसे सर्वत्र विचरण किया करते हैं। हे तात! योगियोंका स्थूल शरीर नष्ट होनेपर भी वे शारीरिक सुखको पृथक् सूक्ष्म शरीरमें स्थापित करके योगबलसे सब लोकोंमें विचरते रहते हैं। हे नृपसत्तम! मनीषी लोगोंने वेदमें अष्टांग योग ही कहे हैं, इसके अतिरिक्त इतर योगके विषय नहीं कहे हैं। परन्तु योगियों सब प्रकारसे योगके बीच शास्त्र सम्मत सगुण और निर्गुण, इन दोनों प्रकारके योगोंको ही उत्तम कहके वर्णन किया है। हे राजन्! प्राण वायुको निग्रह, मनको धारण और चित्तको एकाग्र करनेसे जो प्राणायामरूप दो योग वर्णित हुए हैं, उसमेंसे प्राणायामको सगुण और धारणाको निर्गुण जानो। हे मैथिल! वायुके मोचनस्थान अदृश्य होने पर यदि उस समय प्राणवायु मुक्त हो, तो वायुको प्रबलता होजाती है; इसलिये उस समय वायु रेचन न करे। रातके प्रथम, मध्य वा शेष भागमें बारह प्रकारसे आत्माका प्रेरण करना होता है; इसलिये जो लोग शान्त, दान्त, सन्न्यासी, आत्माराम और शास्त्रज्ञ हैं, वे अवश्य इसही भांति आत्माको बारह प्रकारसे नियोग करेंगे, और पांचो ज्ञानेन्द्रियोंके शब्दादि दोषोंको निरास करते हुए विक्षेप तथा लयको संहार कर इन्द्रियोंको मनमें निवेश करें। अनन्तर मनको अहंकारमें अहंकारको महतत्त्वमें और महतत्त्वको प्रकृतिमें स्थापित करें। हे राजन्! योगी लोग इस ही प्रकार क्रमसे अन्तःकरण आदिको परस्परमें लीन करके अन्तमें केवल शुद्ध चैतन्य स्वरूप, नित्य, अनन्त, कूटस्थ, अभेद्य, अजर, अमर, शाश्वत, अव्यय और ईशान ब्रह्मका सदा ध्यान किया करते हैं। हे महाराज! जैसे मन्दिरके चिन्हसे प्रसन्न पुरुष तृप्त होकर सुखसे शयन किया करते हैं, वैसे ही समाधिस्थ पुरुषका लक्षण कहता हूं, सुनो। मनीषियोंने समाधिस्थ पुरुषोंका इस प्रकार लक्षण वर्णन किया है, कि जैसे निर्व्वातस्थलमें तेलसे भरा हुआ दीपक निश्चल और ऊर्द्ध्वशिख होकर जलता रहता है, वैसे ही समाधिस्थ पुरुष समाधि समयमें निश्चल भावसे निवास करते हैं। जैसे बक समूह जलकी बूंदसे पत्थरको आहत करके तनिक भी उसे विचलित नहीं कर सकते, वैसे ही समाधियुक्त पुरुषको भी वृष्टि आदिके जरिये कोई समाधिसे अणुमात्र भी सञ्चालित करनेमें समर्थ नहीं होता। ऐसा ही क्यों, पुरुषके समाधि युक्त होने पर शंख,

नगाड़े आदि विविध बाजे और संगीत शब्दसे भी उसकी समाधि भंग नहीं होती ; समाधियुक्त पुरुषका ऐसा ही निदर्शन निर्द्दिष्ट है। और जैसे कोई पुरुष तेलसे भरे पात्रको दोनों हाथसे ग्रहण करके सोपान पर चढ़ते हुए तलवार धारण करनेवाले पुरुषके जरिये तर्ज्जित तथा उसके भयसे भीत होने पर भी संयतचित्त होकर पात्रसे बूंदभर भी नहीं त्यागता, वैसे ही समाधिस्थ पुरुष भी उत्तम मार्गमें गमन करते हुए किसीके जरिये तर्ज्जित वा भय प्रदर्शित होनेपर भी एकाग्र चित्त होकर समाधि परित्याग नहीं करते। जो मुनि इन्द्रियोंके वहिर्मुखाकार वृत्तिको रोकके अन्तःकरणको अचल करके समाधि अवलम्बन करता है, उसहीमें इस प्रकार सब योग लक्षण दीखते हैं। हे राजन्! और ऐसी नित्य श्रुति निरूपित है, कि ऐसे लक्षणोंसे युक्त मनुष्य जो समाधियुक्त होके महतत्त्व और उसमें स्थित अग्नि सदृश अव्यय परब्रह्मका दर्शन करके, उस दर्शनबलसे अचेतन देहको त्याग कर बहुत समयके लिये कैवल्य लाभ किया करता है। हे राजन्! और दूसरा योगका क्या लक्षण कहूंगा, मैंने जो कहा सब प्रकार योगके बीच यह अत्यन्त उत्तम योग है, मनीषिलोग इस योगको विशेषरूपसे जानकर अपनेको कृतकृत्य विवेचना किया करते हैं।

३१६ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे राजन्! हठयोगचारी योगी लोग अन्तकालमें जिन जिन स्थानोंसे प्राणवायु बाहर करके जैसा फल पाते हैं, वह सब आपके समीप वर्णन करता हूं, आप सावधान होकर सुनिये। मैंने ऐसा सुना है, कि योगी लोग पांवके जरिये प्राणवायु परित्याग करनेसे वसुलोक, जानुके जरिये प्राणत्याग करनेसे साध्य लोक, गुदाके जरिये त्यागनेसे मैत्रलोक, जघनके सहारे प्राण छोड़नेसे पृथ्वी लोक, ऊरुके जरिये त्याग करनेसे ब्रह्मलोक, पार्श्वसे छोड़नेपर वायुलोक, नासिकासे त्याग करनेसे चन्द्रलोक, बाहुसे त्यागनेपर इन्द्रलोक, वक्षस्थलसे त्यागनेपर रुद्रलोक, ग्रीवाके जरिये परित्याग करनेसे उत्कृष्ट मनुष्य लोक, मुखसे त्यागने पर विश्वदेव लोक, कानसे त्यागनेपर दशदिक् लोक, घ्राणके सहारे त्यागनेसे गन्धवह वायु लोक नेत्रसे त्यागनेपर अग्नि लोक, भौंसे त्यागनेपर अश्विदेवलोक, ललाटसे त्यागने पर पितृलोक और सिरके सहारे त्यागनेसे ब्रह्मलोक पाते हैं।

हे मिथिलेश्वर! मैंने क्रमसे इन सब उत्क्रमण स्थानोंको तुम्हारे समीप वर्णन किया अनन्तर सम्वत्सरके बीच मरण शील देहधारियोंके जो मनीषियोंके जरिये विहित अरिष्ट हैं, उसे कहता हूं सुनो। हे पार्थिव! जो पुरुष दृष्टपूर्व्वा अरुन्धती और ध्रुवनक्षत्रको न देखे तथा पूर्णचन्द्र और दीपकको दहिने भागमें खण्डाभासरूपसे दर्शन करे, वह सम्वत्सर भर जीवित रहता है। हे राजन्! जो पुरुष दूसरेके नेत्र पुतरीके बीच अपना प्रतिबिम्ब नहीं देखता वह भी सम्वत्सरभर जीवन धारण करता है। अत्यन्त तेजस्वी पुरुषोंकी निस्तेजस्कता, बुद्धिमानोंकी बुद्धिहीनता और स्वभावका उलटफेर अर्थात् कृपण पुरुषमें दातृत्व-शक्ति, ये सब छः महीनेके भीतर मृत्युके लक्षण हैं। जो लोग देवताओंकी अवज्ञा करें, ब्राह्मणोंसे विरोध करते रहें, जिनकी कान्ति काली तथा कपिश वर्णकी होजाती है, छःमहीनेभरमें उनकी मृत्यु हुआ करती है। जो लोग सूर्य्य और चन्द्रमण्डलको उर्णनाभ-चक्रकी भांति छिद्रयुक्त अवलोकन करें, सात रात्रिके बीच उनकी मृत्यु होती है। जो मनुष्य देवमन्दिरमें रहके गऊकी गन्धको मुर्देकी गन्धकी भांति आघ्राण करे,

सात रात्रिके बीच वह मृत्युभागी होता है। कान और नासिकाकी नम्रता, दांत और दृष्टिकी विरागिता, संज्ञा लोप और विरूपत्व ये सदा मृत्युके निदर्शन हैं। हे नरनाथ! जिसके बायें नेत्रसे अकस्मात् आंसू बहे अथवा सिरसे धूआं बाहर हो, उसकी सद्य मृत्यु हुआ करती है। बुद्धिमान मनुष्य इन अरिष्टोंको मालूम करके दिन रात आत्माको परमात्मामें संयुक्त करें। जिस समयमें प्रेतत्व होगा, उस समयकी परीक्षा करते हुए यदि योगियोंका मरना इष्ट न हो, तो इस ही क्रियाके अनुष्ठान करनेकी इच्छा करनी उचित है। हे नरनाथ! मनुष्य समस्त गन्ध और सब रसोंको धारण करे, अन्तरात्माके आत्मानिष्ठ होनेपर मनुष्य मृत्युको जय करनेमें समर्थ होता है। हे नरवर! अन्तःकरण आत्मनिष्ठ होनेपर योगी लोग उसहीके जरिये योगसे मृत्युको जय करनेमें समर्थ हुआ करते हैं। जो लोग इस ही प्रकार अनुष्ठान करते हैं, वे अकृतबुद्धि पुरुषोंसे दुष्प्राप्य, अक्षय, पुनरावृत्तिसे रहित, कल्याणकर नित्य अचल लोक पाके वहां ही जाते हैं।

३१७ अध्याय समाप्त।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे नरनाथ! तुमने जो अव्यक्त घटित परम पदार्थका विषय मुझसे पूछा है, अब उस परम गुह्य प्रश्नका उत्तर कहता हूं, सावधान होकर सुनो। हे मिथिलापति! मैंने आर्य्यविधिके अनुसार अवनत होकर विचरते हुए जिस प्रकार आदित्यसे समस्त शुक्ल यजुर्वेद पाया है उसे सुनो। हे अनघ! मैंने उत्तम महत् तपस्याके जरिये सूर्य्यदेवकी सेवा की, अनन्तर वह मेरी तपस्यासे प्रसन्न होकर बोले, हे विप्रर्षि! तुम्हें जिस अभिलषित दुर्लभ वरकी इच्छा हो, वह मांगो, मैं प्रसन्नचित्त होकर तुम्हें वही दान करूंगा, मेरी प्रसन्नता दूसरेके पक्षमें अत्यन्त दुर्लभ है। अनन्तर मैंने सिर नीचाकर प्रणाम करके सूर्य्यदेवसे कहा। हे भगवन्! मैं अस्मदादिके उपयुक्त समस्त यजुर्वेद जाननेकी इच्छा करता हूं। अनन्तर भगवान् भास्कर मुझसे बोले, हे द्विज! मैं तुम्हें अभिलषित वर प्रदान करूंगा, तब वाग्देवी सरस्वती तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करेंगी। अनन्तर भगवान् सूर्य्यदेव मुझसे बोले, तुम अपना मुंह पसारो, मैंने जब उनकी आज्ञानुसार मुंह फैलाया, तब सरस्वती उसमें प्रविष्ट हुई। अनन्तर मैं विशेष रूपसे दह्यमान होकर महात्मा भास्करके अज्ञातसारमें अमर्षवशसे जलके बीच प्रविष्ट हुआ। भगवान् सूर्य्य मुझे दह्यमान देखके बोले, "तुम मुहूर्त्तभर दाह सहो, फिर शीतल होगे।" अनन्तर भगवान सूर्य्य मुझे शीतल होते देखके बोले, हे द्विज! अखिल आद्यन्त वेद तुममें प्रतिष्ठित होगा। हे द्विजवर! तुम समस्त शतपथ ब्राह्मण प्रणयन करोगे, उनके प्रणयनकी समाप्ति होनेपर तुम्हारी बुद्धिशक्ति मोक्षपथकी अनुवर्त्तिनी होगी। सांख्य योगमें तुम्हारा जो अभीष्ट पद प्रार्थनीय है, उसे पाओगे। भगवान् इतना मन्त्र कहके अस्त हुए। सूर्य्यदेवका वचन सुन उनके अस्त होनेपर मैंने घर आके हर्षपूर्व्वक सरस्वती देवीका ध्यान किया। अनन्तर स्वर व्यञ्जनसे भूषित अत्यन्त शुभङ्करी सरस्वती देवी ओंकारको आगे करके मेरे सम्मुख प्रकट हुई।

अनन्तर मैंने बैठके सूर्य्यनिष्ठ होकर सरस्वतीदेवी तथा तपनदेवको विधिपूर्व्वक अर्घ प्रदान किया। अनन्तर परमहर्षसे रहस्य-संग्रह और परिशिष्टके सहित समस्त शतपथ ब्राह्मण स्वयं प्रकट हुआ। हे महाराज! महानुभाव मातुल सशिष्य वैशम्पायनके प्रियकार्य्य साधनके लिये एक सौ शिष्योंको उक्त शतपथ पढ़ाके गभस्तिगणके सहित सूर्य्यकी भांति सब शिष्योंके

सहित तुम्हारे महानुभाव पिताके यज्ञ कार्य्यको निर्व्वाह करनेमें प्रवृत्त हुआ। अनन्तर देवलके सम्मुखमें मेरे मातुलके वेद दक्षिणाके लिये महान् विमर्द्द उपस्थित हुआ। मैंने दोनोंको सम्मत करके दक्षिणाका आधा हिस्सा लेना अङ्गीकार किया। अनन्तर सुमन्त, पैल, जैमिनी, तुम्हारे पिता और अन्यान्य मुनियोंने मेरा सम्मान किया। हे अनघ! मैंने आदित्यसे पन्द्रह यजुर्मन्त्र पाये थे और रोमहर्षणके जरिये सारे पुराणका निश्चय किया था। हे नरनाथ! उस ही बीज और सरस्वती देवीको पुरस्कृत करके सूर्य्यदेवके प्रभावसे इस अपूर्व्व शतपथके प्रणयन करनेमें प्रवृत्त हुआ, और उनके प्रभावसे इसे सम्पन्न किया है। जो पथ मुझे अभिलषित था, वह पूर्णरूपसे तय्यार हुआ है, शिष्योंको संग्रहके सहित समस्त शतपथ अध्ययन कराया है, सब शिष्य पवित्र और परम हर्षित हुए हैं। इस पन्द्रह शाखाओंसे युक्त सूर्य्यको उपदिष्ट विद्याकी प्रतिष्ठा करके मैं स्वेच्छापूर्व्वक उस वेद्य पुरुषका ध्यान किया करता हूं। हे राजन्! वेदान्त ज्ञानकोविद विश्वावसु नाम गन्धर्व्वने उस शास्त्रमें ब्राह्मण जातिका हितकर सत्य क्या है, और इसमें अनुत्तम वेद्यवस्तु ही कौनसी है। ऐसी चिन्ता करके मेरे समीप आकर उस विषयमें प्रश्न किया। हे राजन्! अनन्तर उन्होंने मेरे निकट वेदके चौबीस प्रश्न किये और शेषमें निम्नलिखित आन्विक्षिकी विद्या अर्थात् युक्तिके जरिये आलोचना शास्त्र सम्बन्धीय पचीस प्रश्न किये। हे राजन्! वे प्रश्न ये हैं,—विश्व, अविश्व, अश्व, अश्वमित्र, वरुण, ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञ, अज्ञ, क, तपा, अतपा, सूर्य्यादि, सूर्य्य, विद्या, अविद्या, वेद्य, अवेद्य, अव्यक्त, चल, अचल और अक्षय तथा क्षयशील वस्तु कौनसी है? यही सर्व्वोत्तम प्रश्न है। हे महाराज! अनन्तर मैंने गन्धर्व्व सत्तम राजा विश्वावसुसे कहा, हे गन्धर्व्वराज! तुमने यथाक्रमसे अत्यन्त उत्तम अर्थयुक्त प्रश्न किया है। अब मुहूर्त्त भर निवास करो, मैं इसका अर्थ विचारता हूं। गन्धर्व्व मेरा वचन सुन मौनावलम्बन करके स्थित हुआ। अनन्तर मैंने फिर मन ही मन सरस्वती देवीका ध्यान किया। हे महाराज! ध्यान करतेही दहीसे घृत निकलनेकी भांति उस प्रश्नका उत्तर मेरे अन्तःकरणमें उत्पन्न हुआ। मैंने परमश्रेष्ठ आन्विक्षिकी शास्त्र निरीक्षण करके उपनिषत् और परिशिष्ठ शास्त्रोंको मन ही मन मथा। हे राज शार्द्दूल! वार्त्ता, शास्त्र, दण्डनीति और आन्विक्षिकी इन तीनोंके अतिरिक्त चौथी मोक्षकी निमित्त हितकरी साम्परायकी विद्या जो कि पञ्चविंश अर्थात् शरीरको आत्माको अधिकार करके निवास करती है, जिसे तुम्हारे समीप इसके पहले वर्णन किया है, उसे भी विश्वावसुके समीप कहा था। हे राजन्! उस समय मैंने गन्धर्व्वराज विश्वावसुसे कहा तुमने मेरे समीप जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर कहता हूं, सुनो। हे गन्धर्व्वेन्द्र! तुमने जो विश्वाविश्व कहके प्रश्न किया है, उसके बीच भूत भविष्य कालक परा विद्या अव्यक्तको विश्व कहके जानो। और गुण कर्त्तृत्व निबन्धन त्रिगुणात्मक निष्कल पुरुषको अविश्व समझो अर्थात् जो पुत्र और वित्तसे भी प्रिय है, दूसरे सब वस्तुओंसे अन्तरतर है और जो आत्मरूपसे सबके भी है, वही अविश्व शब्द प्रतिपाद्य है और उसके अतिरिक्त वस्तुमात्रको ही विश्व कहा जाता है। अश्वाश्व पदके वाच्य मिथुन अर्थात् प्रकृति पुरुष ही विदित हुआ करते हैं। स्त्रीरूपी प्रकृतिको अव्यक्त और जिसके प्रतिविम्बसे प्रकृति सब कार्य्योंका निर्व्वाह करती है, उस निर्गुणको पुरुष कहते हैं। इस ही प्रकार प्राचीन विपश्चितगण प्रकाशात्मक पुरुषको मित्र, जलको इस समस्त जगत्के उत्पन्न करनेका कारणहेतु प्रकृतिको वरुण

अर्थात् वरुण देवतारूपी निर्देश किया है। और प्रकाशमात्रसे ही जगज्जन्म आदिका कारण होना सम्भव नहीं होता, इससे जगज्जन्म आदिके उपयोगी जो ज्ञान है, वह मायावृत्ति है, इसलिये पण्डित लोग प्रकृतिको ही ज्ञान रूपसे वर्णन किया करते हैं, और ज्ञेय स्वरूप जो ज्ञान है, वही निष्कल अर्थात् सत्य ज्ञान है, वही ब्रह्म कहके विहित हैं। ज्ञ और अज्ञ शब्दके प्रतिपाद्य ईश्वर तथा जीव है, क्यों कि कार्य्य उपाधिको जीव और कारण उपाधिको ईश्वर कहा जाता है। कार्य्य कारण उपाधि योगसे ब्रह्मको जीव तथा ईश्वर कहा जाता है, उस उपाधिसे रहित होनेसे ही वह निष्कल शब्दसे पुकारा जाता है। क, तपा और अतपा कौन पुरुष है। यह जो तुमने पूछा है, वह विषय कहता हूं सुनो। क शब्दसे आनन्द, तपासे प्रकृति और अतपासे निष्कल ब्रह्म स्मृत होता है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं। अज्ञान पुरुषार्थको प्रतिबन्ध करता है, वही अवेद्य है और आत्माही वेद्यरूपसे वर्णित हुआ है। तुमने जो चलाचलका उल्लेख करके प्रश्न किया है, वह भी मेरे समीप सुनो। लय और सृष्टिके कारण प्रकृतिको पण्डित लोग चला करते हैं, क्यों कि प्रकृति व क्रियमाण होकर जगत्‌को लय और उदय किया करती है, इस ही लिये निश्चल शब्दसे स्मृत होती है, यद्यपि शास्त्रके अनुसार इसके पहले प्रकृतिको अवेद्य और पुरुषको वेद्यरूप कहा गया है, तथापि वस्तु स्वभावकी पर्य्यालोचना करके देखा जाता है, कि प्रकृतिका दृश्यत्व निबन्धन ही वेद्य और अदृश्यत्व निबन्धनसे पुरुष अवेद्य है। प्रकृति जड़ है, इसलिये जैसे वह अपनेको नहीं जान सकती वैसे ही निष्कल आत्मा भी स्वप्रकाशसे वृत्ति विरोधके हेतु निज आत्माको नहीं जान सकता इस ही निमित्त प्रकृति तथा आत्मा दोनों ही अज्ञ हैं। अनादि और अक्षम परिणामी नित्य-ताके व्यवहारके कारण प्रकृति नित्य तथा पुरुष स्वतःसिद्ध नित्य पदार्थ है, पण्डित लोग अध्यात्म शास्त्रके निश्चय निबन्धनसे प्रकृति और पुरुष दोनोंको ही अज और नित्य कहा करते हैं। नित्य सृष्टि विषयमें अक्षत्वके कारण पण्डित लोग जन्म रहित पुरुषको अव्यय कहते हैं और इस अव्यय पुरुषको वे लोग अक्षय भी कहा करते हैं, क्यों कि उत्पन्न हुए घट पट आदि पदार्थोंकी भांति यह नष्ट नहीं होता। सत्त्व, रज और तमोगुणके क्षयवत्ता हेतु अर्थात् अप्राकृत लोगोंमें सत्त्वादि गुणोंकी सत्त्वासन्दिग्धता निबन्धन और आद्य प्रलयकालमें तीनों गुणोंकी साम्यावस्थामें गुण कार्य्योंका अवश्य नाश होता है, इसलिये पण्डित लोग प्रकृतिको अक्षय कहके पुरुषको भी अक्षय कहा करते हैं। मैंने तुम्हारे समीप यह मोक्षसाधनके उपायभूत आन्वि-क्षिकी विद्याका वर्णन किया; हे विश्वावसु! ऋक्, यजु, सामरूप तीनों वेदोंका युक्तिके सहित संयुक्त करके गुरुके समीप जाकर यत्नपूर्व्वक समस्त वेद तथा नित्यकर्म्म विषयको विशेषरूपसे जानना चाहिये। हे गन्धर्व्व सत्तम! ये आकाश आदि भूत जिस अधिष्ठानसे उत्पन्न होकर जिसमें लीन होते हैं, उस वेदार्थ प्रतिपाद्य वेद्य आत्माको जो लोग न जानें और यदि कोई साङ्गोपाङ्ग सब वेदोंको पढ़के वेदसे जानने योग्य उस आत्माको न जान सके, तो वे वेदके बोझ मात्रको ढोनेवाले हैं। हे गन्धर्व्वसत्तम! जो पुरुष घृतकी इच्छा करके खराचोर मंथता है, वह उस चोरमें में केवल विष्टा देखा करता है, शुद्ध घृत वा पवित्र मक्खन नहीं देखता। वैसे ही जो वेद जाननेवाला पुरुष अवेद प्रकृति और वेद्य पुरुषका दर्शन नहीं करता, वह मूढ़बुद्धि मनुष्य केवल ज्ञानका भार ढोनेवाला कहा जाता है। जिस दर्शनके जरिये जीवका बार बार जन्म और मृत्यु न होसके, प्रकृति और परमात्माको अन्तरात्माके सहारे

उस ही भावसे सदा दर्शन करना उचित है। इस लोकमें अजस्र जन्म मृत्युके विषयकी चिन्ता करके चयशील कर्म्मकाण्डमें कहे हुए धर्म्मोंको परित्याग करके अच्चय योगधर्म्मको अवलम्बन करना उचित है। हे काश्यप! त्वं पदार्थके प्रतिपाद्य पुरुष प्रतिदिन यदि आत्माको अवलो कन करे, तब वह वाक्य नित्य ज्ञानके जरिये केवलीभूत और अविद्या विमुक्त होकर उस पदार्थके प्रतिपाद्य परमात्माका वश करनेमें समर्थ होगा। शाश्वत ईश्वर स्वतन्त्र है और पचीसवां जीव स्वतन्त्र है, मूढ़ लोग ऐसी सम्भावना किया करते हैं, परन्तु वेदान्तनिष्ठ साधु लोग उन दोनोंको अभिन्न रूपसे देखते हैं। यह मत समझो कि सांख्य और पातञ्जल मतावलम्बी मनुष्य जीव और ईश्वरके अभेद दर्शनको अभिनन्दन नहीं करते, जन्म मृत्यु भयके उद्वेगसे युक्त परम तत्वको खोजनेवाले सांख्य मतावलम्बी पुरुष स्पष्टरूपसे जीव और ईश्वरका अभेद कहते हैं और योगाचारी पण्डित लोग मोच्च समयमें जब जीव सब क्लेशोंसे रहित होता है, उस समय निर्व्विशेष चिन्मात्रमें लीन हुआ करता है, इस ही भांति दोनोंका अभेद स्वीकार किया करते हैं।

विश्वावसु बोले, हे ब्राह्मणसत्तम! आपने जो जीव तत्त्वके विषय कहे अर्थात् जीव अच्युत और परमात्मासे अभिन्न है, यह सत्य है, परन्तु जीवका ईश्वरत्व अत्यन्त दुर्ब्बच है। यद्यपि इस विषयको मैंने बहुतोंके सुखसे सुना है, तौभी मुझे आपपर अधिक विश्वास रहनेसे आपको विस्तारके सहित इस विषयको वर्णन करनेका अनुरोध करता हूं। आप ही इस विषयको वर्णन करनेके उपयुक्त पात्र हैं। जैगीषव्य, असित, देवल, विप्रर्षि पराशर, बुद्धिमान वार्षगण्य भृगु, पञ्चशिख कपिल, शुकदेव, गौतम, अष्टिसेन, महात्मा गर्ग, नारद, आसुरि धीमान् पुलस्त्य, सनत्कुमार, महानुभाव शुक्र, काश्यप और अपने पिताके सुखसे पहले मैंने इस विषयको सुना था। तिसके अनन्तर रुद्र, धीमान् विश्वदेव देवताओं, पितरों और दैत्योंके समीप मैंने इस नित्य वेद्य विषयको जाना है, इसे ही सब कोई नित्य वस्तु कहा करते हैं। हे ब्रह्मन्! इसलिये मैं आपकी बुद्धिके जरिये स्थिरीकृत इस तत्व विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं, आप शास्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, प्रगल्भ और अत्यन्त बुद्धिमान हैं, आपसे कुछ भी अविदित नहीं है, आप सब वेदोंके अवलम्ब रूपसे स्मृत हुए हैं। हे ब्राह्मण! देव लोक और पितर लोकमें यही कहा जाता है, कि ब्रह्म लोकमें गये हुए महर्षि लोग ही तत्व विषय कहा करते हैं। तापदाता आदित्य सदा आपके उपदेष्टा हैं। हे याज्ञवल्क्य! आपने समस्त सांख्य ज्ञान लाभ किया है, विशेष करके योग शास्त्र भी जाना है, और चराचर ज्ञान गोचर करके निःसन्दिग्ध रूपसे प्रवृत्त हुए हैं। इसलिये मैं आपके निकट मक्खनमय घृतकी भांति अत्यन्त स्वादमय तत्व ज्ञानका विषय सुननेकी इच्छा करता हूं।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले, हे गन्धर्व्व सत्तम! मैं विवेचना करता हूं, तुमने सब शास्त्रोंको जाना है, इस समय मुझसे जो कुछ पूछते हो, उस विषयको मैंने जिस प्रकार सुना है, वैसे ही कहता हूं सुनो। हे गन्धर्व्वराज! पुरुष बुध्यमान अर्थात् जड़ प्रकृतिको प्रकाश करता है, परन्तु प्रकृति पुरुषको प्रकाश नहीं कर सकती। सांख्य और योगमतावलम्बी तत्वज्ञ लोग श्रुति दर्शनके अनुसार इस पुरुषके प्रतिरोध निबन्धन अर्थात् प्रकृतिमें चित्प्रतिबिम्बके कारण उस प्रकृतिको प्रधान कहा करते हैं। भूतात्मा एक होके भी सब भूतोंमें निवास कर रहा है, वह एक होके भी जलमें चन्द्रमण्डलके प्रतिबिम्बकी भांति अनेक दीखता है, चित्प्रतिबिम्बता बुद्धि ही 'मैं'—इस प्रत्ययका विषय है।

हे अनघ! चिदाभाससे स्वतन्त्र साक्षी जाग्रत आदि अवस्थान अर्थात् प्रकृति पुरुषके विवेकके समयमें विकारयुक्त अव्यक्त और आत्माको अवलोकन करती है, और सुषुप्ति अवस्थान अथवा निर्व्विकल्प समाधि समयमें परमात्म दर्शन लाभ किया करती है, इसलिये जबतक साक्षी साक्ष्यके सहित सम्बन्ध विशिष्ट रहता है, उस समय जीव और साक्ष्य वियुक्त होनेसे ही आत्म स्वरूपसे प्रकाशित होता है। जो पुरुष आत्माको अवलोकन करते हुए इसके सहित परमात्माका दर्शन करते हैं, वे कुछ भी दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हैं। आत्मा यह अभिमान करता है, कि मुझसे श्रेष्ठ और दूसरा कोई भी नहीं है। ज्ञानदर्शी मनुष्य प्रकृतिको आत्म-भावसे ग्रहण नहीं करते। मछली जलकी ही अनुगत हुआ करती है, वह जैसी प्रवृत्तिके कारण उसहीमें प्रवृत्त होती है; जैसे मछली जलमें रहके प्रकाशित होती है, आत्मा भी अव्यक्तसे आवृत रहके, उस ही भांति प्रकाशित हुआ करता है। सदा सहवास और साभिमा-नसे जीव स्नेहयुक्त होता है, जबतक जीवका परमात्माके सङ्ग अभेद नहीं होता, तबतक वह संसारमें निमग्न और उन्मग्न हुआ करता है। हे द्विज! मैं चिदात्मा अन्य हूं और ये विष-यादि आत्मासे पृथक् पदार्थ अन्य हैं,—जब जीव ऐसा समझता है, तब वह केवलीभूत होकर परमात्माका दर्शन करता है। हे राजन्! जीव पृथक् है और परमात्मा स्वतन्त्र है। परन्तु परमात्माका जीवमें अधिष्ठान रहनेके कारण साधु लोग दोनोंको एक भावसे अनुभव किया करते हैं।

हे महामुनि काश्यप! जन्म मृत्युके भयसे भीत योग और सांख्य मतावलम्बी मनीषी पुरुष जीवको अविनाशी कहके अभिनन्दन नहीं करते, वे लोग पवित्र तथा आत्मपरायण होके परमात्माका दर्शन करते हैं। आत्मा विशुद्ध होनेसे परमात्माका दर्शन करनेमें समर्थ होता है, उस समय वह सर्व्ववित् और ज्ञानस-म्पन्न होकर फिर जन्म नहीं लेती। हे अनघ! यह मैंने वेद प्रमाणके अनुसार अप्रतिबुद्ध प्रकृति बुध्यमान जीव और बुद्ध ब्रह्मतत्वका यथावत् वर्णन किया। हे काश्यप! जो पुरुष द्रष्टा और उससे इतर पदार्थोंको नहीं देखता, मोक्षवि-षयमें स्थितकर तथा दृक् दृश्यके अन्यत्व निर्व्विक-ल्पभावको नहीं देखता, वह मोक्षनिर्म्मुक्त और साक्षीरूप चिदाभास जगत् कारण तथा मह-दादि कार्य्योंको देखनेमें समर्थ होता है।

विश्वावसु बोले, हे विभु! आपने सत्य, शुभ-कर और मोक्षसाधनके उपायभूत पूर्ण ब्रह्मत-त्वको यथावत् वर्णन किया है, इसलिये आपका सदा अक्षय मङ्गल होवे तथा आपका मन सदा बुद्धियुक्त रहे।

याज्ञवल्क्य बोले, उस महात्माके ऐसा कह-नेपर मैंने उसे परम परितोषके सहित देखा, तब वह मेरी प्रदक्षिणा करके सौन्दर्य्ययुक्त शरीर धारण करके स्वर्गलोकमें गये। हे नरेन्द्र! ब्रह्मलोकमें खेचरोंके निकट भूमण्डल और रसातलमें जो लोग मोक्षपथको अवलम्बन करके वास करते हैं, उन्होंने उन लोगोंके निकट इस मोक्ष साधन शास्त्रको प्रदर्शित किया। जैसे सांख्य मतावलम्बी मनुष्य सांख्यधर्म्ममें रत हैं, वैसे ही पातञ्जल मतवाले मनुष्य योगधर्म्ममें अनुरक्त हैं, इनके अतिरिक्त जो सब मनुष्य मोक्षकी कामना किया करते हैं, उनके सम्बन्धमें इस शास्त्रके फल प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। हे राजश्रेष्ठ नरेन्द्र! ज्ञान हेतुसे मोक्ष हुआ करती है, अज्ञानसे मोक्ष नहीं होती, पण्डित लोग ऐसा ही कहा करते हैं; इसलिये जिस ज्ञानके सहारे आत्माको जन्म मृत्युसे मुक्त किया जासकता है, यथार्थ रीतिसे उस ज्ञानकी खोज करनी उचित है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा नीच जाति शूद्रसे भी ज्ञान लाभ करके श्रद्धावान पुरुषको

उस विषयमें सदा श्रद्धा करनी योग्य है, क्यों कि श्रद्धावान पुरुषके निकट जन्म-मृत्यु प्रवेश नहीं कर सकती। सब वर्ण ही ब्राह्मण हैं, क्यों कि ब्रह्मासे उत्पन्न हुए हैं, सभी सदा "ब्रह्म" ऐसा ही वचन कहा करते हैं; इसलिये मैंने ब्रह्म-बुद्धिसे तत्वशास्त्रकी व्याख्या की है, सब संसार ही ब्रह्ममय है, इससे यह दृश्यमान विश्व ही ब्रह्म है। ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण, भुजासे क्षत्रिय, नाभिसे वैश्य और दोनों चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई है; इसलिये सब वर्णोंको ही दूसरी भांति समझना उचित नहीं है। हे राजन्! इन सब वर्णोंका अज्ञानवशसे जिस प्रकार नाश होता है, उसहीके अनुसार कर्म-योनिकी भजना करते हैं और ये लोग ज्ञान हीन होकर घोर अज्ञानसे प्राकृत योनिजालमें पतित होते हैं। इसलिये सब वर्णोंके ज्ञानकी सब भांतिसे खोज करनी योग्य है, यही मैंने तुमसे कहा है। हे नरेन्द्र! जो ज्ञाननिष्ठ हैं, वेही ब्राह्मण हैं; इसलिये जिस ब्राह्मण वा क्षत्रियने ज्ञान अवलम्बन किया है, उसहीके लिये यह मोक्षशास्त्र नित्य सिद्ध है,—ऐसा ही प्राचीन पण्डित लोग कहा करते हैं। हे राजन्! तुमने जो पूछा था, मैंने यथार्थ रूपसे उस ही विषयका उपदेश दिया; इसलिये अब शोकरहित होकर ज्ञान आलोचनाके पारदर्शी बनो, तुमने उत्तम प्रश्न किया था, इससे तुम्हारी सदा स्वस्ति होवे।

भीष्म बोले, राजा मिथिलेश उस धीमान् याज्ञवल्क्यका ऐसा उपदेश सुनके प्रसन्न हुए। प्रदक्षिणाके अनन्तर जब मुनिवर चले गये, तब देवरात पुत्र मोक्षवित् राजा जनकने उस समय ब्राह्मणोंको एक करोड़ गऊ, सुवर्ण और अञ्जलिपूर्ण रत्न दान किया। मिथिलाधिपति उस समय पुत्रको राज्य देकर यति धर्म्म अवलम्बन करके निवास करने लगे। हे राजेन्द्र! वह प्राकृत धर्म्माधर्म्मकी सब प्रकारसे निन्दा करके सांख्य ज्ञान और समस्त योग शास्त्रकी अध्ययन करनेमें प्रवृत्त हुए। मैं अनन्त अर्थात् तीनों परिच्छेदोंसे रहित हूं, ऐसा मनमें निश्चय करके सदा एकमात्र परमात्म तत्त्वका विचार करने लगे। और ऐसा निश्चय किया, कि धर्म्माधर्म्म, पुण्य पाप, सत्यासत्य जन्म मृत्यु, ये सभी मिथ्या हैं। हे नरनाथ! सांख्य और योग मतावलम्बी मनुष्य निज निज शास्त्रके कहे हुए लक्षणके अनुसार इन धर्म्मादिको व्यक्त और बुद्धि आदिको अव्यक्त भावसे सदा अवलोकन करते हैं। पण्डित लोग कहते हैं इष्टानिष्टसे विमुक्त परात्पर ब्रह्म जो स्थाणुकी भांति सदा अचल भावसे निवास करता है, वही शुद्ध है, इसलिये तुम भी उसे जानके पवित्र होजाओ। हे महाराज! जो दान किया जाता है, जो प्राप्त किया जाता है, जो दान करनेमें अनुमित होता है, जो दान करता और जो परिग्रह करता है, वह दीयमान गऊ आदि सब वस्तु ही आत्मा है; उस एकमात्र आत्मासे भिन्न और कौन होसकता है, तुम सदा ऐसा ही जानो, विपरीत चिन्ता मत करो। जो पुरुष सगुण वा निर्गुण प्रकृतिको जाननेमें समर्थ नहीं है, उस विपश्चित मनुष्यको तीर्थसेवा और यज्ञानुष्ठान करना उचित है। हे कुरुनन्दन! स्व-शाखोक्त वेदाध्ययन तपस्या वा यज्ञ आदिके जरिये ब्रह्मपद नहीं मिलता, मनुष्य परब्रह्मको जाननेसे ही सब लोगोंमें पूजनीय होता है, और क्रमसे महत्तत्त्वके स्थान अहंकार और अहंकारके भी परतर स्थानोंको प्राप्त किया करता है। जो सब शास्त्र परायण मनुष्य अव्यक्तसे परम श्रेष्ठ, जन्म मृत्युसे रहित कार्य्यकारण भावसे सदसत् नित्य शुद्ध परमात्माको जान सकते हैं, वे परम पद पानेमें समर्थ होते हैं। हे राजन्! पहले मैंने राजर्षि जनकके समीप यह ज्ञान लाभ किया था, ज्ञान ही सबसे श्रेष्ठ है, यज्ञ श्रेष्ठ नहीं है। ज्ञानसे

सहारे जीव जन्म मरण स्वरूप दुर्गसे पार होता है, यज्ञके जरिये उससे कदापि पार नहीं हो सकता।

हे राजन! ज्ञानवित् मनुष्य भौतिक जन्म मरणको ही दुर्ग कहते हैं, उसके अतिरिक्त दूसरा और कुछ भी दुर्ग नहीं है। मनुष्य यज्ञ तपस्या, नियम और व्रतके जरिये स्वर्ग लाभ करके फिर पृथ्वीपर पतित होता है, इसलिये पवित्र होके परात्पर विमोक्ष विमल पवित्र परब्रह्मकी उपासना करो। हे पार्थिव! क्षेत्र ज्ञानपूर्व्वक यथार्थ ज्ञान यज्ञकी उपासना करनेसे ज्ञानी होगे। उपनिषत् पाठ करनेसे जो उपकार होता है, पहले समयमें याज्ञवल्क्य मुनिने राजा जनकका वही उपकार किया था। उन्होंने जो शाश्वत अव्यय पुरुषका उपदेश दिया, उसहीसे जनक शुभ, अमृत और शोक रहित परमात्माकी प्राप्त हुए।

३१८ अध्याय समाप्त।

———

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! मनुष्य महत् ऐश्वर्य्य, विपुलवित्त अथवा दीर्घ परमायु पाके किस प्रकार मृत्युको अतिक्रम करता है। महत् तपस्या, कर्म्म अथवा शास्त्र ज्ञान वा रसायन प्रयोग, इनके बीच क्या करनेसे मनुष्य जरा मृत्युको प्राप्त नहीं होता।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें पञ्चशिख नाम किसी सन्न्यासीके सहित जनककी जो बार्त्ता हुई थी, उस ही प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। विदेहवंशीय राजा जनकने धर्म्मार्थ संशय छेदन करनेवाले वेदवित्तम महर्षि पञ्चशिखसे पूछा,—हे भगवन्! तपस्या, बुद्धि, कर्म्म वा शास्त्रज्ञान, इन सबके बीच किसके जरिये मनुष्य जन्म और मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ होता है। अपरोक्षवित् महर्षिने विदेहराजके ऐसा पूछनेपर यह उत्तर दिया,—जन्म मरणकी निवृत्ति नहीं है और किसी प्रकार उसकी निवृत्ति हो, वह भी नहीं है। दिन रात और महीनोंकी निवृत्ति नहीं होती, जो अनित्य होके भी सदाके लिये नित्यपथ अवलम्बन करते हैं, अर्थात् स्वधर्म्माचरण पूर्व्वक निवृत्ति मार्गमें निष्ठावान होते हैं, वेही जरा मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ हैं। सर्व्वभूतोंका समुच्छेद मानो सदा ही स्रोतमें भासमान होरहा है, नौकारहित काल सागरमें जिसे भासमान देखा जाता है, वही डूबता है, जरा मृत्युरूपी महाग्राहसे पकड़े जानेपर कोई फिर नहीं लौटता। कालसागरमें बहते हुए मनुष्यका कोई भी आत्मीय नहीं है और वह भी किसीका आत्मीय नहीं है, पत्नी और दूसरे बान्धवोंके साथ मिलना पथिकोंके मिलनेकी भांति अचिर कालतक स्थायी मात्र है। जीवने पहले किसीके सङ्ग अत्यन्त सहवास लाभ नहीं किया है, जब जिसके साथ मिलन होता है, तभी उसके निमित्त रोदनके सहित वियोग हुआ करता है। जैसे वायुके वेगसे बादल छितरा जाते हैं, वैसे ही कालवशसे जो लोग गमन करते हैं, वे फिर लौटके नहीं आते। जरा मृत्यु भेड़ियेकी भांति प्राणियोंको भक्षण करती है। क्या बलवान, क्या निर्ब्बल, क्या छोटे वा बड़े किसीको भी जरा मृत्युके समीपसे छुटकारा नहीं है। ऐसे अनित्य प्राणियोंके बीच नित्यभूत भूतात्मा स्थित है, इसलिये प्राणियोंके जन्मनेसे लोग किसलिये हर्षित होते और मरनेपर क्यों दुःख किया करते हैं। मैं कहांसे आया हूं, मैं कौन हूं, कहां जाऊंगा, मैं किसका हूं, कहा हूं, किस लिये किस स्थानमें जन्म ग्रहण करूंगा; क्या लोग इसकी आलोचना किया करते हैं; स्वर्ग वा नरकका द्रष्टा दूसरा कौन है? इसलिये सब शास्त्रोंकी अतिक्रम न करके दान और यजन करना उचित है।

३१९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुराजर्षिसत्तम! किस पुरुषने गार्हस्थ्यधर्म्म परित्याग न करके बुद्धिके विलयास्पद मोक्षतत्वको पाया है, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये। हे पितामह! यह स्थूल शरीर तथा लिङ्ग शरीर कैसे परित्यक्त होता है और मोक्षका परम तत्व क्या है, आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, हे भारत! इस विषयमें सुलभा और जनककी सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका पुराने लोगोंने इस विषयमें यह दृष्टान्त दिया करते हैं। पहिले समयमें मिथिला-देशमें संन्यास फलदर्शी जनक नाम कोई राजा थे, वह श्रेष्ठ धर्म्मध्वजा कहके विख्यात हैं। उन्होंने मोक्ष शास्त्र वेद और निज दण्डनीति शास्त्रमें विशेष श्रम किया था तथा इन्द्रियोंको समाधान करके इस पृथ्वीको शासन किया। हे नरनाथ! बुद्धिमान पुरुषोंने उस वेदविद् भूपतिकी उत्तम वक्तृता सुनके सब कोई उसके चरित्रके अनुरक्त हुए थे। उस सत्ययुगमें योग-धर्म्मका अनुष्ठान करनेवाली सुलभा नामी भिक्षुकी अकेली ही इस पृथ्वीमण्डलपर विचरती थी। वह इस सारे जगत्‌में घूमती हुई जिस जिस स्थानमें उपस्थित होती थी, उस ही उस स्थानमें सन्न्यासियोंके मुखसे सुनती, कि पृथ्वीमण्डलके बीच मिथिलेश्वर ही मोक्ष धर्म्ममें अत्यन्त निष्ठावान हैं। उसने अत्यन्त सूक्ष्म वचन सुनके यह सत्य है वा नहीं, ऐसा सन्देह करके राजा जनकका दर्शन करनेके लिये सङ्कल्प किया। उस समय उस अनिन्दिताङ्गीने योगबलसे पूर्व्वरूपको परित्याग कर एक दूसरा उत्तम रूप धारण किया। वह कमलनैनी शुभ्र शीघ्रगामी अस्त्रकी भांति गति अवलम्बन करके पलभरमें विदेहकी राजधानीमें गई। अनेक लोगोंसे परिपूरित मिथिलानगरमें पहुंचके भैक्ष्यचर्य्याके छलसे मिथिलेश्वरको देखा। राजा उसकी अत्यन्त सुकुमारतायुक्त शरीर देखकर मनही मन "यह कौन है, किसकी कन्या है, कहांसे आई है?" ऐसा सोचते हुए विस्मित हुए। अनन्तर राजाने उसके स्वागत प्रश्नकर बैठनेकी आज्ञा दी, फिर उसका चरण धोके पूजा और उत्तम अन्न दानकर उसे तृप्त किया। भिक्षुकी सुलभा भोजन करके प्रसन्न हुई और मिथिलापति मुक्त है, वा नहीं; इस विषयमें सन्देह कर समस्त भाष्यवित् अर्थात् सूत्रार्थ जाननेवाले ऋषियोंके बीच मन्त्रिमण्डलीमें घिरे हुए राजासे मोक्षधर्म्मका विषय पूछनेमें प्रवृत्त हुई। योग जाननेवाली सुलभाने मोक्षधर्म्मके विषयको पूछनेकी इच्छा करके पहले निज नेत्ररश्मिको संयत करती हुई निज बुद्धिसे राजाकी बुद्धिमें प्रवेश करके योगबलसे उन्हें वशीभूत किया। हे नृपवर! राजा जनकने भी अपने अजेयत्व अभिमानसे गर्व्व करके सुलभाके आशयको अभिभव करनेकी इच्छासे उसका अभिप्राय निज अभिप्रायके जरिये ग्रहण किया, अर्थात् उसके सहित समभावसे एक ही शरीरमें वास करने लगे। राजा राजचिन्ह छत्र आदि और सुलभा भी यति-चिन्ह त्रिदण्ड प्रभृति परित्याग करने अर्थात् दोनोंके स्थूल देहके सब चिन्ह परित्याग करनेपर उस एक मात्र अधिष्ठानमें जो वार्त्ता हुई थी उसे सुनो।

जनक बोले, हे भगवति! तुम्हारा यह आचरण कहांसे हुआ, तुम किसकी कन्या हो, किस स्थानसे आई हो, इस समय कहां जाओगी? पृथ्वीपति जनकने सुलभासे यही प्रश्न किया और कहने लगे, अवस्थाके अनुसार शास्त्रका ज्ञान अथवा जातिसे सद्भाव नहीं होता, इसलिये जब मेरे निकट समागम हुआ है, तब इन विषयोंका यथार्थ उत्तर जानना उचित है। मैंने राजा होके भी छत्रादि राज-चिन्होंको परित्याग किया है, इसे यथार्थ रूपसे मालूम करो। मैं तुम्हें विशेष रूपसे जाननेकी

इच्छा करता हूं, तुम मेरे निकट मान्य के योग्य हुई हो। पहले मैंने जिससे यह वैशेषिक ज्ञान लाभ किया है और मुझे छोड़के दूसरा कोई भी जिसका वक्ता नहीं है, वह मोक्षका हेतु मुझसे सुनो। पराशरके सगोत्र महात्मा वृद्ध भिक्षु पञ्चशिखका मैं प्रिय शिष्य हूं; सांख्य ज्ञान, योग और राजविधि, यह तीन प्रकारके मोक्षधर्मके पथमें विचरते हुए मैंने संशयको नष्ट किया है। वह पञ्चशिख शास्त्रदृष्ट मार्गसे विचरते हुए प्रतिवर्ष चार महीनेतक परम सुखसे मेरे निकट वास करते थे। उस सांख्यज्ञानी सुदृष्टार्थ गुरुके मुखसे मैंने त्रिविध मोक्षका हेतु सुना है, किन्तु राज्यसे विचलित नहीं हुआ। मैं उस ही गुरुके उपदेशको ग्रहणकर रागरहित होके अकेला ही परम पदमें निवास करते हुए निखिल वृत्तिसे युक्त तीनों प्रकारकी मोक्ष संहिता आचरण किया करता हूं। वैराग्य ही इस मोक्ष साधनका उपाय है, ज्ञान हेतुसे वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्यसे पुरुष मुक्त होता है। ज्ञानके जरिये मनोनाशके कारण योगाभ्यास हुआ करता है; योगाभ्यासके जरिये आत्मज्ञान प्राप्त होता है, आत्मज्ञान ही जीवके सुखदुःख आदि मोक्षका हेतु है और जिसके जरिये मृत्युको जय किया जा सकता है, उसे ही सिद्धि करते हैं, मैंने आसक्तिहीन तथा मोह रहित होकर इस लोकमें विचरते हुए सुखदुःखसे वर्ज्जित यह परम बुद्धि पायी है। जैसे जल भरनेसे नरम मिट्टी युक्त खेतमें अङ्कुरे जमते हैं, वैसे ही मनुष्योंके कर्म्म भी बीज स्थानीय होकर पुनर्ज्जन्मके कारण हुआ करते हैं। जैसे पलमें भुने हुए बीज अङ्कुर उत्पत्तिके हेतु होनेपर भी अङ्कुर उत्पत्तिके असामर्थ निबन्धनसे उत्पन्न नहीं होते, वैसे ही भगवन् भिक्षु पञ्चशिख आचार्यने मेरी बुद्धिकी वासना बीजसे रहित किया है, इसीसे वह विषयमें प्रवृत्त नहीं होती। मेरी बुद्धि शत्रु, वध आदि अनर्थमें वा वनिताशक्ति विषयमें अनुराग प्रकाश नहीं करती, क्यों कि मैं रोष और रागको व्यर्थताके कारण किसी विषयमें भी अनुरक्त नहीं हूं। यदि कोई पुरुष मेरी दहिनी भुजाको चन्दनसे तर करे और कोई पुरुष वसुलेसे मेरी भुजाको काटे, तो वे दोनों पुरुष ही मेरे निकट समान हैं। उस ही समयसे मैं सुखी, सिद्धार्थ लोष्ट्र पत्थर सुवर्णमें समदर्शी, आसक्ति रहित और दूसरे त्रिदण्डियोंके सहित निर्व्विशेष होके भी राजकार्य्य करता हूं। किन्हीं किन्हीं मोक्षवित मनीषियोंने मोक्ष विषयमें त्रिविध निष्ठा देखी है, कोई कोई लोकोत्तर ज्ञान और कर्म्मोंके एकही समयमें परित्यागको मोक्षका उपाय कहा करते हैं, कोई कोई मोक्ष शास्त्रके जाननेवाले पण्डित ज्ञाननिष्ठाको ही मोक्षका साधन कहते हैं, और कोई कोई सूक्ष्मदर्शी यति लोग कर्म्मनिष्ठाकोही मोक्षको उपाय कहके विश्वास करते हैं, परन्तु महानुभाव पञ्चशिखने ज्ञान और कर्म्म दोनोंको ही परित्याग करके कर्म्मकृत उपकारके निरपेक्ष केवल ज्ञानको ही मोक्षका कारण कहा है, इसलिये यह तीसरी निष्ठा कहके विख्यात् हुई है। यम, नियम, काम, द्वेष, परिग्रह, मान, दम्भ और स्नेह, इन सबके बीच यदि गृहस्थ पुरुषोंमें यम नियम आदि रहे तो वह सन्न्यासियोंके समान है और यदि सन्न्यासी काम द्वेषसे दम्भी हो, तो वह गृहस्थके सदृश है। यदि ज्ञानसे ही मोक्ष हो, तो त्रिदण्ड आदि धारण करनेको क्या आवश्यकता है। परिग्रहको यदि तुल्य कारणता हो, तो छत्र आदि धारण मोक्षके प्रतिबन्धक नहीं हैं, अर्थात् ज्ञानसे ही मोक्ष होती है,—जब ऐसा सिद्ध हुआ तो त्रिदण्ड धारण और छत्र धारण दोनों ही समान हैं। इस जगत्में जिस जिस कारणसे प्रयोजन सिद्ध होते हैं, स्वार्थ परिग्रह विषयमें सब कोई उस

ही कारणको अवलम्बन किया करते हैं, प्रयोजनकी अल्पता वा अधिकता बन्ध मोक्षका कारण नहीं होती, परन्तु उसमें आसक्ति और अनासक्ति ही बन्ध मोक्षकी कारण हुआ करती है। जो पुरुष गृहस्थाश्रममें दोष देखकर दूसरे आश्रममें गमन करता है, वह एक आश्रमको त्यागके दूसरे आश्रममें जानेसे आसक्तिसे नहीं छूटता। जब कि निग्रह और अनुग्रह स्वरूप आधिपत्य समान होरहा है, तब राजाओंके सहित भिक्षुककी समान जानना होगा, इसलिये भिक्षुक जब राजाओंके तुल्य ही हुए, तब किस कारणसे मुक्त होंगे। और ज्ञानके जरिये यदि सत्यमें ही आधिपत्य हो, तब इस देहमें रहके दोनों ही सब पापोंसे छूट सकते हैं। गेरुआवस्त्र पहरना, सिर मुंड़ाना, त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण आदि आश्रमके परिचय देनेवाले जो सब चिन्ह हैं, मेरे विचारमें वे सब उत्पथ स्वरूपमात्र हैं, मोक्षके कारण नहीं हैं। आश्रम परिचायक चिन्होंके रहनेपर भी यदि ज्ञान ही दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिमें कारण होता है, तब दण्डकमण्डलको धारण करना निरर्थक है। अथवा दुःखकी शिथिलता देखके यदि आश्रम-परिचायक चिन्ह धारण करनेमें प्रवृत्त हो, तो समान प्रयोजन-निबन्धनसे छत्र आदि धारण करनेमें प्रवृत्ति क्यों न होगी। अकिञ्चनता रहनेसे ही मोक्ष नहीं होती, और किञ्चनता हेतुसे बन्ध नहीं होता ; चाहे जीव अकिञ्चन हो, चाहे किंचन हो होवे, ज्ञानके सहारे ही मुक्त हुआ करता है। इसलिये बन्धनके स्थान धर्म्म, अर्थ काम और राज्यपरिग्रहमें लगे रहनेपरभी मुझे मोक्ष पदमेंस्थित जानो, मैं इस जगत्‌में मोक्षरूपी पत्थरसे शोधित त्यागरूपी तलवारके जरिये स्नेहायतन बन्धनस्वरूप राज ऐश्वर्य्य मय पाशको काटा है, इसलिये आसक्तियुक्त पुरुष बद्ध होता है, और त्यागशील मनुष्य ही मुक्त हुआ करता है।

हे भिक्षुकी मैं पूर्वोक्त प्रकारसे मुक्त हुआ हूं। इस समय तुम्हारे ऊपर दया हुई है, तुम्हारा रूप योगानुष्ठानके योग्य नहीं है, उसे कहता हूं, मेरे समीप सुनो। तुम्हारी सुकुमारता, सुन्दरताई उत्तम श्री, शरीर और यौवनका समय, यह सभी है, और योग प्रभाव भी है। सुकुमारता आदि और योगानुष्ठान, ये परस्पर विरुद्ध हैं ; परन्तु इन विरुद्ध धर्म्मोंने तुम्हें अवलम्बन किया है ; इस ही लिये मुझे संशय होता है, कि तुम योगसिद्धा ब्राह्मणी अथवा यक्ष वा राक्षस योनिमें जन्मी हो। तुम्हारी दण्ड ग्रहणकी चेष्टा अत्यन्त ही असदृश है ; क्यों कि उसमें शरीर सुखाना प्रभृति आवश्यकता है, परन्तु तुममें वह नहीं है। "यह पुरुष मुक्त है, वा नहीं" ऐसा संशय करके तुम रूप आदिसे मुझे मोहित करनेका उद्योग कर रही हो, परन्तु कामयुक्त योगियोंको त्रिदण्ड धारण करना विहित नहीं है ; तुम भी इस आश्रम परिचायक चिन्हकी रक्षा नहीं करती हो और मुक्त पुरुषको कोई विषय गोपन करना भी उचित नहीं है। मेरे शरीरमें प्रवेश करने अर्थात् स्वभावसे मेरे पूर्व्व शरीरको अवलम्बन करनेके तुममें जो व्यतिक्रम अर्थात् व्यभिचार हुआ है, उसे सुनो। मेरे राज्य वा राजधानीके बीच तुमने किसकी सहायतासे प्रवेश किया और किसके निकटसे आके मेरे हृदयमें प्रविष्ट हुई। तुम वर्णश्रेष्ठा ब्राह्मणी हो, मैं क्षत्रिय हूं ; हम लोगोंका एकत्र योग नहीं होसकता, इसलिये वर्णसङ्कर मत करो। दूसरे तुम मोक्ष धर्म्ममें निवास करती हो, मैं गृहस्थाश्रममें बसता हूं। इसलिये आश्रमको सङ्कर करना भी तुम्हारे पक्षमें अत्यन्त कष्टकर होता है। तीसरे तुम मेरी सगोत्रा हो, वा असमान गोत्रा हो, उसे मैं नहीं जानता, परन्तु यदि तुमने सगोत्रके शरीरमें प्रवेश किया है, तो तुममें गोत्रसङ्कर दोष हुआ है। चौथे यदि

तुम्हारा पति जीवित हो, वा जीवित रहके किसी स्थानमें वास करता हो, तो परायी स्त्री अगम्या है, इससे तुममें धर्म्मसङ्कर दोष उपस्थित होता है; इसलिये यदि तुम सन्न्यासिनीके वेषसे गृहस्थ आश्रममें प्रवेश करनेके लिये आई हो, जो पहले बिना गोत्र, आदिके जाने मेरे शरीरमें प्रवेश करना तुम्हें उचित नहीं था। और यदि तुम कार्य्यापेक्षिणी होकर अविज्ञान अथवा मिथ्या ज्ञानसे पहले ही इन सब अकार्य्योंको करती हो, तो यह अत्यन्त अविहित है। यदि तुम निज दोषसे किसी दूसरे पुरुष पर स्वाधीनता प्रकाशित करो, तो स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता शास्त्रमें निषिद्ध है, इसलिये तुम्हें जो कुछ शास्त्रज्ञान है, वह भी निरर्थक होरहा है। तीसरे यदि तुम प्रकाशमें बाहर हुई हो, तो इससे भी तुम्हारा महान् प्रीति-विघातक दुष्ट लक्षण बोध होता है। तुमने जयकी अभिलाषिणी होकर केवल मुझे ही जीतनेकी इच्छा नहीं की है, मेरे इस सभा सम्बन्धीय सब पण्डितोंको भी जीतनेकी तुम्हारी अभिलाषा है। मेरे पक्षके प्रतिघात और निज पक्षको सिद्ध करनेके लिये तुम इन पूज्य पुरुषोंकी ओर देखरही हो। तुम दूसरेके उत्कर्षकी असहिष्णुता रूपी आमर्ष जनित योगसमृद्धि मोहसे मोहित होकर विष और अमृतकी एकताकी भांति फिर योग अर्थात् परम बुद्धिके सहित निज बुद्धिका सम्बन्ध-विधान करती हो। यदि स्त्री पुरुष परस्पर अनुरक्त होके दोनों मिलित हों, तब उनका मिलना अमृत समान हुआ करता है और अनुरक्त दम्पतिका जो अमिलन है, वह विषके समान दोषरूपसे परिणत होता है, इसलिये तुम मुझे स्पर्श मतकरो साधु ज्ञानसे संन्यासि शास्त्रको पालन करो। मैं मुक्त हूं, वा नहीं, इसे जाननेके लिये तुमने इच्छा की है, परन्तु गुप्तभावसे मेरे समीप यह सब अभिप्राय छिपाना तुम्हें उचित नहीं है। यदि तुमने निज कार्य्य अथवा दूसरे किसी महापतिके कार्य्यके लिये ऐसा किया हो, तो दूसरा वेष धरके मेरे निकट सत्यको छिपाना तुम्हें अत्यन्त अनुचित है। राजाके समीप मिथ्यावेषसे न जावे, ब्राह्मणके निकट कपट वेषसे उपस्थित न होवे और पतिव्रता स्त्रीके समीप कपटाचारसे न जाना चाहिये; जो लोग इनके निकट मिथ्या व्यवहार करते हैं, उनका नाश होता है। राजाओंका ऐश्वर्य्य बल है, ब्राह्मणोंका वेदबल है और स्त्रियोंको रूप योवन सौभाग्य ही उत्तम बल स्वरूप है; इससे ये लोग इन्हीं बलोंके सहारे बलवान हैं; तब जो पुरुष स्वार्थकी इच्छा करे, उसे सरलभावसे इनके निकट जाना उचित है, इनके समीप कपटता करनेसे कपटोंका विनाश हुआ करता है। जब तुम कपट आचारवाली हुई हो, तब तुम्हें जाति, शास्त्रज्ञान, चरित्र, अभिप्राय, अपना स्वभाव और आनेका प्रयोजन यथार्थ रूपसे कहना उचित है।

भीष्म बोले, सुलभा नरेन्द्रके जरिये यह सब रूखे, अयुक्त और असमञ्जस वचनसे पूछी जानेपर तनिक भी विचलित न हुई और राजाका वचन समाप्त होनेपर वह सुन्दरी उत्तम वचन कहने लगी।

सुलभा बोली, हे राजन्! गुरुतर अक्षर संयुक्तत्व आदि वक्ष्यमाण नव प्रकारके वाक्य दोष और वक्ष्यमाण काम आदि नव प्रकारके बुद्धिदोषसे रहित तथा अठारह गुणोंसे युक्त सङ्गतार्थ सूक्ष्म वाक्य, पूर्व्वपक्ष तथा सिद्धान्त पक्षके गुण दोषोंकी संख्या तथा गुणदोषोंके बलाबलका विचार, विनिर्णय अर्थात् सिद्धान्त और अनुष्ठान, इन पांचो विषयोंसे संयुक्त होनेसे वाक्य अर्थात् शब्दाख्यप्रमाण रूपसे अभिहित होता है। पद, वाक्य, पदार्थ और वाक्यार्थ इस चार प्रकारके भेदके अनुसार पहले कहे हुए सूक्ष्मादिके पृथक् पृथक् लक्षण सुनो। जब ज्ञेय पदार्थोंके भिन्न भिन्न होनेसे ज्ञान विभिन्न होता है,

और जिसमें बुद्धि अनेक तरहसे संशय करती है उसीको सूक्ष्म अर्थात् दुर्ज्ञेय बाक्य कहते हैं। किसी विषयका अभिप्राय करके दोष और गुणोंकी विचारके अनुसार बलाबल बिचार करनेको संख्या कहके निश्चय करो और संख्यात गुण दोषोंके बीच यह प्रथम बक्तव्य है, उसे पश्चात् कहना चाहिये। ऐसे बलाबल बिचारको बाक्य-विद पुरुष क्रमयोग कहा करते हैं। धर्म्म, काम, अर्थ, मोक्षविषयमें विशेष रूपसे प्रतिज्ञा करके बाक्यार्थ बिचारकी समाप्ति होनेपर "यही वह सत्य बाक्य है" इस प्रकारके निश्चयको निर्णय करते हैं। हे राजन्! इच्छा द्वेष उत्पन्न हुए दुःखके जरिये जो उद्वेग उत्पन्न होता है अर्थात् इसे अवश्य करना चाहिये और यह अवश्य त्याज्य है, इस कर्त्तव्यता और अकर्त्तव्यता विषयमें जो प्रवृत्ति वा निवृत्ति होती है, उसका ही नाम प्रयोजन है। हे प्रजानाथ! यथाक्रमसे कहे हुए ये सूक्ष्मादि एक अर्थसे पर्य्यवसित होकर पञ्च अङ्गयुक्त बाक्य होता है, इसलिये मेरे बचनके अनुसार उसका निश्चय करो। मैं प्राञ्जल और प्रसिद्ध अर्थसम्पन्न श्लाघ्यविशेषण-युक्त तथा संक्षिप्त श्लेष आदि आठ गुणोंसे पूरित असन्दिग्ध परम उत्तम बचन कहूंगी, जो सब बाक्य कहूंगी, उसमें बहुत अक्षर नहीं हैं, अश्लील अमङ्गल और घृणाकर शब्द नहीं है, वह अनृत, असंस्कृत अथवा धर्म्मकाम और अर्थ, इन त्रिवर्गोंसे विरुद्ध नहीं है। उसमें अमङ्गल पद नहीं हैं, छन्द वा व्याकरण दोष युक्त शब्द नहीं हैं, क्लिष्ट शब्द अर्थात् बहुत कष्टसे जिसका अर्थ-बोध होता है, वैसा पद नहीं है, और वह निष्प्रयोजन वा युक्तिहीन भी नहीं है। मैं काम, क्रोध, भय, लोभ, दीनता, दर्प, दया, लज्जा और अभिमानके वशमें होकर कुछ बचन न कहूंगी। हे राजन्! वक्ता, श्रोता और बाक्य जब बिवक्षा समयमें अव्यग्रभावसे समान होते हैं, तब बिवक्षित अर्थ प्रकाशित हुआ करता है, कहनेके समय यदि बक्ता श्रोताको अवज्ञा करे और निज प्रयोजनीय विषयको पराये प्रयोजन रूपसे प्रकाश करे तो वह बचन अंकुरित नहीं होता; जो मनुष्य स्वार्थ त्यागके दूसरेके निमित्त प्रकट करता है, उसमें शङ्का उत्पन्न होती है, तथा वैसा बचन भी दोषयुक्त होता है। हे राजन्! जो बक्ता अपने और श्रोताके अविरुद्ध वचन प्रकाश करता है, वह साधारण नहीं है; इसलिये अवि-क्षिप्त चित्त वा एकाग्र होकर वाक्य सम्पत्तिसे युक्त अर्थ सम्पन्न यह बचन तुम्हें सुनना उचित है। हे महाराज! तुमने जो मुझसे "तुम किसकी कन्या हो, कहांसे आई हो" ऐसा पूछा है उसका उत्तर एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे राजन्! जैसे जतु और काष्ठ पांशु तथा जलको बूंद परस्पर संश्लिष्ट होती हैं, इस लोकमें प्राणियोंका सम्भव भी वैसा ही है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पञ्चेन्द्रिय अनेक रूप होकर जतुकाष्ठकी भांति आत्मामें संश्लिष्ट होती हैं। शब्द आदि विषय और ज्ञान आदि इन्द्रियां चाहे भिन्न हों, वा संहत हो होवें, उन्हें "तुम कौन हो?" ऐसी बात नहीं पूछी जाती, यह निश्चय है और वे परस्पर अपने तथा परायेको नहीं जानतीं। नेत्र निज रूपको देखनेमें समर्थ नहीं है, कान आप ही अपनेको नहीं जान सकता, ये परस्पर व्यभिचारके जरिये वर्त्तमान नहीं रहते और परस्पर संश्लिष्ट होके भी जल-मिश्रित धूलिकी भांति एक दूसरेको नहीं जान सकते, अर्थात् जैसे सूर्य्य घट पट आदि बाह्यव-स्तुओंको प्रकाश करता है, वैसे ही आंख, कान आदि इन्द्रियां देहाश्रित होके भी अपने वा दूसरेको प्रकाश नहीं कर सकतीं। ये दूसरे बाह्य गुण अर्थात् प्रकाश आदिको अपेक्षा किया करती हैं, यह भी मुझसे सुनो।

रूप नेत्र और प्रकाश, ये तीनों दर्शन ज्ञानके सहकारी कारण हुआ करते हैं; जैसा दर्शन ज्ञानका कारण है, श्रवण आदि ज्ञान

और ज्ञेय विषयमें वैसी सहकारिताके बिना ज्ञान नहीं होता। ज्ञान और ज्ञेय पदार्थके बीच मन एक विशेष गुण है, जिसके सहारे जीव सदसत्का विचार करता हैं, उसे ही मन कहते हैं। पञ्चभूत, पञ्चइन्द्रिय और मन, इन ग्यारहोंके अतिरिक्त बुद्धिकी बारहवां गुण कहा जाता है, संशयात्मक बोधव्य विषयमें जीव जिसके सहारे निश्चय करता है, उसे ही बुद्धि कहते हैं। उस बुद्धिके बीच सत्त्वनाम और एक गुण हैं, उसे बुद्धिका उपादान कहा जाता है। रज और तमोगुणके अत्यन्त अभिभव होनेपर सतो गुणकी मध्य वा और किञ्चित अभिभव होनेसे सहत्त्व होता है। जन्तु महासत्त्व अथवा अल्प सत्त्व हैं,—जिसके जरिये यह अनुमान किया जाता है, उसे ही सत्त्व कहते हैं। "यह पुरुष मेरा है और यह मेरा नहीं है" जिस सत्त्वके जरिये जीव ऐसा ज्ञान करता है, वह अहङ्कार नाम चौदहवां गुण कहा जाता है। हे राजन्! अहङ्कारका और एक पन्द्रहवां गुण स्मृत हुआ करता है, अर्थात् पञ्चप्राण, आकाश आदि पञ्चभूत, पञ्चेन्द्रिय और मन, इन सोलहों कलाओंकी समग्रता जोकि वासनात्मक जगत् रूप अहङ्कारमें निवास करती है, उसे ही पञ्चदश गुण कहा जाता है। उस वासनामें उसके उपादान स्वरूप त्रिगुणात्मक संघातकी भांति जगत्की अंकुर बीजभूत अविद्या संज्ञक सोलह गुण वर्त्तमान हैं, माया और उसका प्रकाश, ये दोनों गुण उसके आश्रित होरहे हैं, इसलिये माया सत्तरहवीं और उसके प्रकाशको अट्ठारहवें गुण रूपसे गिनना होगा। और सुख, दुःख, जरा, मृत्यु, लाभ, हानि यथाप्रिय, अप्रिय, ये द्वन्द्व योग इक्कीस गुण रूपसे कहे गये हैं, ये सब सुख दुःख आदि प्रकृतिके कार्य्य हैं और इक्कीसके ऊपर दूसरा एक कालनामक गुण है, इसहीमें सब भूतोंको उत्पत्ति और लय हुआ करती है, इसे बीसवें गुणके जरिये संख्यात जानो। इस बीसवें संघात और देहारम्भक अंशके अतिरिक्त पञ्चमहाभूत उसके अतिरिक्त सत् और असत् भावके सम्बन्धयुक्त प्रकाश दोनों गुणोंमें सप्रविंश गुण और विधि अर्थात् वासना बीजभूत धर्म्माधर्म्म, शुक्र अर्थात् वासनाका उद्बोधक संस्कारबल अर्थात् वासना विषय प्राप्तिका यत्न इन तीनोंके सङ्ग मिलके और ऊपर कहे हुए सत्ताइसों गुण गिनतीमें तीस होते हैं। ये सब गुण जिसमें वर्त्तमान रहते हैं, उसे शरीर कहा जाता है। निरीश्वरवादी सांख्य मतवाले पण्डित लोग अव्यक्त अर्थात् प्रकृतिको इन तीसों गुणोंके उपादान रूपसे देखते हैं और स्थूलदर्शी कणाद आदि व्यक्त अर्थात परमाणु आदिको उक्त गुणोंमें उपादान रूपसे देखते हैं। अव्यक्त ही हो, अथवा व्यक्त परमाणु प्रभृति ही होवे, किम्वा चार्व्वाक मतके अनुसार चार प्रकारके परमाणु ही हों, अध्यात्मवित् पुरुषोंके वे सभी अविरुद्ध हैं, क्योंकि मेरे समान अध्यात्मचिन्तक पुरुष प्रकृतिको ही सब भूतोंके उपादान रूपसे देखते हैं; इस अपरिस्फुटा प्रकृतिने प्रागुक्त तीसों कला रूपसे इश्वत्व लाभ किया है। हे राजेन्द्र! मैं तुम और दूसरे जो सब जीव हैं, सभी उस ही तीस कलात्मिका प्रकृतिसे पृथक् स्वयं ज्योतिःस्वरूप अर्थात् प्रतिस्वरूपमें निवास करनेवाली आत्मा है, इसलिये हम लोगोंका तन्मात्रत्व सिद्ध है। बिन्दुन्यास आदि अवस्था अर्थात् रेतःशेक आदि शुक्रशोणितके संयोगसे हुआ करती है; जिसके मिलनेसे कलन अर्थात् शुक्रशोणितका परस्पर संघटन उत्पन्न होता है। उस कलनसे बुद्बुदकी उत्पत्ति होती है, बुद्बुदसे गुठली उत्पन्न होती है, गुठलीसे अङ्ग उत्पन्न होते हैं और अङ्गसे नख तथा रोम निकला करते हैं।

हे मिथिलाराज! नवम महीना पूरा होनेपर जठरस्थ जीवका स्त्री वा पुरुषके चिन्ह अनुसार नामरूप होता है। उत्पन्न होतेही बाल-

वर्ण नख और अङ्गलोयुक्त जो कौमार रूप दीखता है, रूपान्तर होनेपर उसकी प्राप्ति नहीं होती। कौमार रूपसे जवानी और जवानीके अनन्तर बुढ़ापा प्रकाशित हुआ करता है; इत्यादि क्रमसे जो सब रूप उत्पन्न होते हैं, उसके जरिये पहलेके रूपकी प्राप्ति नहीं होती, सब भूतोंके बीच रूप आदिकी प्रकाश करनेवाली परिणामवती कलासे प्रतिक्षणमें ही रूपका विपर्य्यय होरहा है, परन्तु सूक्ष्मताके सबबसे वह मालूम नहीं होता। हे राजन्! दीपशिखाकी गतिके अनुसार प्रत्येक अवस्थामें रूपका उदय और लय होरहा है; परन्तु वह मालूम नहीं होता। जैसे उत्तम घोड़े सदा दौड़ते हैं, उस ही भांति जब कि ऐसे प्रभावयुक्त सब लोक धावित होरहे हैं, तब कौन कहांसे आया है, वा आता नहीं है, यह किसका है वा किसका नहीं है, कहांसे उत्पन्न होता है अथवा जन्म नहीं लेता,—इसका क्या निश्चय है; इस लोकमें जीवका निज अवयवोंके सङ्ग क्या सम्बन्ध है? जब कि अपने अवयवोंके सङ्ग ही अपना सम्बन्ध नहीं है, तब तुमने जो मुझसे "तुम कौन हो, कहांसे आई हो?" इत्यादि प्रश्न किये हैं, वह अत्यन्त ही अयुक्त है। लोहेके सम्बन्धसे सूर्य्यकान्तमणि और घिसनेसे काठसे अग्नि उत्पन्न होती है, वैसे ही कलाओंसे जीव जन्म लिया करते हैं, जैसे तुम अपने शरीरमें आप ही निष्कल आत्माको देखते हो, वैसे ही क्या दूसरे शरीरमें उस ही आत्माको नहीं देखते। यदि अपने और भूखोंके अतिरिक्त समता निश्चय करते हो, तो मुझसे "तुम कौन और किसकी हो" इत्यादि प्रश्न किस लिये किया?

हे मिथिलानाथ! "यह हमारा और यह मेरा नहीं है" जो पुरुष इन द्वन्द्वोंसे मुक्त है, वैसे पुरुषको 'तुम कौन, किसकी हो' इत्यादि पूछनेका क्या प्रयोजन है? जो राजा शत्रु, मित्र उदासीन विजय और सन्धिविग्रहमें विहित कार्य्योंकी क्रिया करता है, उसमें मुक्त लक्षण कौनसा है। धर्म्म, काम तथा अर्थ, ये त्रिवर्ग असंकीर्ण भावसे तीन और धर्म्मार्थ धर्म्म,काम वा कामार्थ धर्म्म, काम संकीर्णभावसे दोनों परस्पर मिलित होके तीन धर्म्मार्थ काम ये तीनों परस्पर संकीर्णभावसे एक; इस ही भांति सब कर्म्मोंमें सात प्रकारसे व्यक्त त्रिवर्गको नहीं जानता और जो त्रिवर्गोंमें आसक्त हो रहा है, उसमें मुक्त लक्षण क्या है? प्रिय, अप्रिय, निर्ब्बल और बलवान पुरुषमें जिसकी समदृष्टि नहीं है, उसमें कौनसा मुक्तलक्षण है? हे राजन्! अपथ्यसेवी रोगीके औषध सेवनकी भांति तुम योगयुक्त न होके भी जो मोक्ष विषयका अभिमान करते हो, तुम्हारे मित्रोंको उचित है कि उस अभिमानको छुड़ावें।

हे अरिन्दम! सङ्ग स्थान पत्नी आदिका विचार करके आप ही अपनेमें देखे, इससे भिन्न दूसरा मुक्तका लक्षण और क्या होसक्ता है; मोक्षकी अवलम्बन करके जो मनुष्य निवास करता है, उसके विषयमें ये सब तथा दूसरे जो सूक्ष्म सङ्ग स्थान हैं, तथा शयन, उपभोग, भोजन और वस्त्र, इन चारों अङ्गोंसे युक्त जो सब सङ्ग स्थान विद्यमान हैं, वह मुझसे सुनो। जो इस अखण्ड पृथ्वीमण्डलको एक छत्र करके शासन करता है, वही एकमात्र राजा है और एकमात्र वही पुरके बीच वास किया करता है। उस नगर जिसमें कि वह निवास करता है, वैसा उसमें उसका एक गृह रहता है, रात्रिके समय राजा जिसमें शयन करता है, गृहमें वैसी एक शय्या रहती है। उस शय्याका आधा हिस्सा उसके पत्नीके अधिकारमें रहता है, इस ही प्रकार प्रसङ्गके कर्म्मसे राजा फलभागी होता है। ऐसे ही वह भोज्यविषयोंको भोजन आच्छादन परिमेय गुणों और निग्रह विषयोंमें सदा परतन्त्र है, उसे स्वल्पविषयमें भी पूर्ण रीतिसे आसक्त होना पड़ता है, सन्धिवि-

गृहके सम्बन्धमें राजाकी स्वतन्त्रता कहां है? स्त्रियोंके निकट क्रीडा और विहारकालमें राजाकी सदा ही अधीनता है, विचारकार्य्य और मन्त्रि समाजमें उसकी स्वतन्त्रता कहां है। जिस समय वह सबके ऊपर आज्ञा प्रचार करता है, तब उसकी स्वाधीनता होती है, परन्तु उस समयमें भी सब कोई उसे अवश कर देते हैं। राजाके शयन करनेकी इच्छा करनेपर कार्य्यार्थी लोग उसे सोने नहीं देते, सोनेमें अनुज्ञात अथवा सोते हुए भी कार्य्यवश उसे उठना पड़ता है, इसलिये वह उस विषयमें भी स्वाधीन नहीं है। स्नान करिये, लीजिये, पीजिये, खाइये, अग्निमें होम करिये, पूजा करिये, आज्ञा दीजिये, सुनिये, इत्यादि वचनसे दूसरे लोग राजाको विवश करते हैं। याचक मनुष्य सदा राजाके निकट जाके धन मांगते हैं, राजा वित्तरक्षक होके महाजनोंको दान करनेमें उत्साहवान नहीं होता, दान करनेसे उसका खजाना खाली होता है, न करनेसे लोग उसके शत्रु होजाते हैं। क्षण भरमें उसके निकट वैराग्यकारक दोष उपस्थित होते हैं, बुद्धिमान शूर और वित्तसम्पन्न लोगोंको एक स्थानमें रहनेसे राजा लोगोंकी शङ्का करता है। जो लोग सदा राजाको उपासना किया करते हैं, उनसे भयकी सम्भावना न रहने पर भी राजाको भीत होना पड़ता है। हे राजन्! मैंने जिनका विषय कहा है, वे लोग राजाको दोष दिया करते हैं, इसलिये आश्रित लोगोंसे जैसा भय उपस्थित होता है, उसे देखो।

हे जनकराज! अपने अपने घरोंमें सभी राजा हैं, सभी अपने घरके मालिक हैं, सभी अपने घरोंमें निग्रहानिग्रह करतेहुए राजाओंके समान हुआ करते हैं। राजाकी स्त्री, पुत्र, शरीर, खजाना, मित्र और धन सञ्चय, आदिमें दूसरोंको स्त्री पुत्र आदिमें जैसी ममता है, उसे भी उनके सम्बन्धमें वैसी ही प्रीतिहुआ करती है। देश नष्ट होने, नगरके जलने, प्रधान हाथियोंके मरने, इत्यादि लोकके साधारण विषयोंमें राजा मिथ्या ज्ञानसे तापित होता है। इच्छा, द्वेष और भयसे उत्पन्न हुए मानसिक दुःख तथा सिरके रोग आदि पीड़ाओंसे साधारण पुरुषोंकी भांति राजा भी कदाचित मुक्त नहीं होता। सुख दुःख आदिसे उपहत और सब तरहसे शङ्कित होकर रात्रि बिताते हुए अनेक विघ्नोंसे युक्त राज्यभोग किया करता है, इसलिये कौन पुरुष अल्प सुखकर अत्यन्त दुःख जनक, सारहीन, फूसकी अग्निकी ज्वालाके समान तथा फेनके बुदबुदेके तुल्य राज्य पाके शान्ति लाभ करनेमें समर्थ होता है। हे राजन्! "यह मेरा नगर है, मेरा राज्य है, मेरी सेना है, मेरा खजाना है, और हमारा ही सब है" तुम ऐसा ही ज्ञान किया करते हो, परन्तु ये सब विषय किसीके भी नहीं हैं। मित्र, सेवक, पुर, राज्य, कोष, दण्ड और राजा यह सप्ताङ्गयुक्त राज्य मेरे हाथमें स्थित त्रिदण्डसे समान है। अन्यान्य गुणोंसे युक्त पुरुषोंके बीच कौन किससे अधिक गुणवान हो सकता है। उसके उस समय उस ही उस अङ्गको उत्कृष्ट होते देखा जाता है, जिसके सहारे जो कार्य्य सिद्ध होते हैं, उसहीमें उसकी प्रधानता हुआ करती है। हे नृपोत्तम! सप्ताङ्गयुक्त राज्य स्वतन्त्र है और वृद्धि-क्षय स्थानाख्य नीति शास्त्रोक्त तीनों उदय स्वतन्त्र हैं, ये दसवर्ग मिलके राजाकी भांति राज्य भोग करते हैं। जो राजा महाउत्साह युक्त है, और क्षात्रधर्म्ममें अनुरक्त रहता है, वह दशभाग लाभ होनेसे प्रसन्न होता है, दूसरे राजा दसवें भागकी न्यूनतासे सन्तुष्ट हुआ करते हैं। असाधारण राजा कोई भी नहीं है, और अराजक राजा भी नहीं है, राज्य न रहनेसे धर्म्म नहीं होता, और बिना धर्म्मके मोक्षसुख नहीं मिलता, जो

कुछ पवित्र और परम धर्म्म है। वह राजा तथा राज्यका ही धर्म्म है, जो दक्षिणामें पृथ्वी दान करते हैं, वे राजा अश्वमेध यज्ञके फल-भागी होते हैं।

हे मिथिलाराज! मैं राजाओंके इन सब दुःखकर कर्म्मोंको सौ-हजार बार कह सकती हूं। जबकि मेरी निज देहमें आसक्ति नहीं है, तब पराया परिग्रह किस प्रकारसे सम्भव होगा। जबकि मैं इस प्रकार योगिनी हुई हूं, तब मुझे तुम्हारे शरीर सङ्गके कारण ऐसा वचन कहना उचित नहीं हुआ है। हे राजन्! तुमने पञ्चशिखके मुखसे समस्त मोक्षधर्म्म सुना है—श्रवण, मनन, निदिध्यासन, यम, नियम और परब्रह्ममें एकाग्र भावको जाना है, इससे जब तुम काम क्रोध आदिको पराजय करके मुक्तसङ्ग होरहे हो, तब तुम्हें, छत्र चंवर आदि राजचिन्ह धारण करनेका क्या प्रयोजन है। मुझे बोध होता है, तुमने जो शास्त्र सुना है, उससे तुम्हें ज्ञान नहीं हुआ अथवा दम्भ-वशसे शास्त्रज्ञान किया है, किम्वा शास्त्र सदृश शास्त्राभास सुना होगा। यदि तुम नाममात्र इस लौकिक सम्पत्ति लाभसे प्रतिष्ठित हुआ करते हो, तो प्राकृत पुरुषोंकी भांति तुम भी सर्व्वसङ्ग अवरोधके जरिये बद्ध हुए हो। मैंने जो बुद्धिबलके जरिये तुममें प्रवेश किया, यदि तुम सब भांतिसे मुक्त हुए हो, तो मैंने उस प्रकारसे प्रवेश करके तुम्हारी क्या बुराई की है। यतियोंको सूने स्थानमें ही निवास करनेका नियम है। इसलिये मैं तुम्हारे बोधशून्य बुद्धिसत्वमें प्रवेश करनेसे किसके समीप दोषी हुई हूं। हे पापरहित नरनाथ। मैंने तुम्हें दोनों हाथ, चरण, उरु अथवा दूसरे किसी अवयवके जरिये स्पर्श नहीं किया है। तुम महाकुलमें उत्पन्न हुए लज्जाशील और दीर्घदर्शी हो, इसलिये हम लोगोंने परस्पर जो कुछ सदसत व्यवहार किया है, उसे इस सभाके बीच तुम्हें कहना उचित नहीं है। ये सब ब्राह्मण लोग गुरु और माननीय हैं, तुम भी सबके माननीय हो, इसलिये परस्परके विषयमें परस्परका इस प्रकार गौरव है, इसलिये वक्तव्य वा अवक्तव्य विषयका विशेष रीतिसे विचार न करके स्त्रीपुरुषके सहवास विषयको सभामें प्रकाशित करना तुम्हें अनुचित है। हे मिथिलाराज! जैसे कमलके पत्रमें स्थित जल उसे स्पर्श नहीं करता, वैसे ही मैं भी तुम्हें स्पर्श न करके तुममें निवास करती हूं। मेरे स्पर्श न करनेपर भी यदि तुम स्पर्श ज्ञान किया करते हो, तो इन भिक्षुकोंके जरिये तुम्हारा बीजहीन ज्ञान किस प्रकार उत्पन्न हुआ। तुम गार्हस्थ धर्म्मसे च्युत होके और दुर्ज्ञेय मोक्ष धर्म्मको न जानकर दोनोंके बीचमें पड़के वार्त्तामात्रके अभिज्ञ होरहे हो, वास्तवमें मुक्त नहीं हो। मुक्त पुरुषको मुक्तके सहित और चिदात्मा प्रकृतिके साथ संयोग होनेपर अर्थात् आत्मा और प्रकृतिके संयोगसे वर्णसङ्कर नहीं होता। वर्ण और आश्रमोंसे पृथक् रूपसे निर्द्दिष्ट होनेपर जो पुरुष उसको अपृथक् भावसे देखता है, उसके पक्षमें शरीर भिन्न है, और आत्मा पृथक् है, जब मैं इसे प्रत्यक्ष देखती हूं, तब मेरे बुद्धिसत्वके अन्यत्र वर्त्तमान रहनेकी क्या सम्भावना है। करतलके एक स्थलमें यदि कोई पात्र हो, उस पात्रमें दूध और दूधमें मक्खी रहे, तो आश्रित तथा आश्रयके संयोगके पृथकत्वके अनुसार सबमें आश्रित रहती है, परन्तु पात्रमें दुग्ध भाव नहीं रहता, दूध भी मक्खी नहीं है, इसलिये पराश्रय भाव स्वयं प्राप्त होते हैं, आश्रमोंकी विभिन्नता और वर्णोंकी स्वतन्त्रताके हेतु तथा परस्पर पृथकत्वके सबबसे तुम्हारा कहा हुआ वर्णसङ्कर किस प्रकार होसकता। मैं जातिके अनुसार तुमसे उत्तम वर्णवाली नहीं हूं, और वैश्य अथवा शूद्रा भी नहीं हूं। हे राजन्! मैं

तुम्हारी सवर्णा हूं, शुद्ध योनिमें जन्म ग्रहण किया है, और अपने चरित्रको अपवित्र नहीं किया ; बोध होता है, प्रधान नामक राजर्षिका नाम तुमने सुना होगा मैं उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुई हूं, मेरा नाम सुलभा है, मेरे पूर्व्व पुरुषोंके यज्ञके समयमें द्रोण, शतशृङ्ग और चक्रद्वार नामक तीनों पर्व्वत देवराजके जरिये इष्टिके स्थानमें निवेशित हुए थे, मैंने वैसे महावंशमें जन्म लेकर अपने समान पति न पाया, तब मोक्ष धर्म्मकी शिक्षा लेके नैष्ठिक ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करती हुई सन्न्यासधर्म्म अवलम्बन किया है। मैं कपट सन्न्यासिनी, परस्वहरनेवाली अथवा धर्म्मको सङ्कर करनेवाली नहीं हूं, केवल निज धर्म्ममें रहके व्रत धारण किया है। हे प्रजानाथ! मैं अपनी प्रतिज्ञा विषयमें अस्थिर नहीं हूं, बिना विचारे कोई बात नहीं कहती और विवेचना करके भी तुम्हारे निकट नहीं आई। मैंने कुशलकी अभिलाषिणी होकर और यह सुनके कि मोक्ष धर्म्ममें तुम्हारी बुद्धि विनिविष्ट हुई है,—मोक्षधर्म्म जाननेके लिये इस स्थानमें आई हूं। मैं स्वपक्ष वा परपक्षके बीच निज पक्ष अवलम्बन करके यह वचन नहीं कहती हूं, वरन तुम्हारे ही हितके निमित्त कहती हूं। जो पुरुष मल्लकी भांति अपनी जयके लिये वादश्रम नहीं करता अथवा जो शान्तिस्वरूप परब्रह्ममें उपशान्त होता है, वही युक्त पुरुष है सन्न्यासी लोग जैसे नरसे सूने स्थानमें एक रात्रि निवास करते हैं, वैसे ही मैं तुम्हारे इस शरीरमें एक रात्रि वास करूंगी, हे मिथिलाराज! तुमने मानदायक वचन और आतिथ्यके जरिये मेरी पूजा की है, इसलिये मैं स्वन्दर्शनमें शयन कर प्रसन्न होके कल्ह चली जाऊंगा।

भीष्म बोले, राजा जनक यह सब युक्तियुक्त और प्रयोजन सम्पन्न वचन सुनके उत्तर देनेमें असमर्थ हुए अर्थात् गृहस्थाश्रमकी अवलम्बन करनेकी युक्ति अत्यन्त दुर्लभ होती है, सन्न्यास धर्म्म ही कल्याणकारी है, इसलिये सुलभाके मतको ही सिद्धान्त वाक्य जाना।

३२० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे कुरुकुल-धुरन्धर पितामह! पहले समयमें वैयासिकी शुकदेवने किस प्रकार वैराग्य लाभ किया था, इसे सुननेकी इच्छा करता हूं, इस विषयको सुननेके लिये मुझे अत्यन्त ही कौतूहल होरहा है। कार्य्य और कारणमें अनारोपित स्वरूप ब्रह्मतत्व तथा जन्मरहित नारायणसे जिन सब कार्य्योंको आपने बुद्धिसे निश्चय किया है, उसे मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, पिता वेदव्यासने निजपुत्र शुकदेवको प्राकृत चरित्रसे निर्भयचित्त होकर विचरते हुए देखकर उसे समस्त स्वाध्याय अर्थात् पितृ पितामह परम्परासे परिगृहीत वेदमार्ग अध्ययन कराके उपदेश दिया था।

व्यासदेव मुनि बोले, हे पुत्र! तुम धर्म्मको सेवा करो और जितेन्द्रिय होकर प्रचण्ड सर्दी गर्म्मी, भूख-प्यास और वायुको सदा जय करो। सत्य, सरलता, क्रोधहीनता, अनसूया, दम, तपस्या, अहिंसा और अनृशंसताको विधिपूर्व्वक परिपालन करो। अनार्ज्जव विषयोंको त्यागके सत्यधर्म्ममें रत रहो और देवताओं तथा अतिथियोंके भुक्तावशिष्ट अन्नके सहारे जीवनयात्रा निबाहो, भोजनके समयमें स्वादिष्ट वा अस्वादु वस्तुको विवेचना मत करो। हे तात! जब कि शरीर फेनके समान और जीवन पक्षीके समान निवास किया करता है, जब कि प्रिय सहवास अनित्य होते हैं, तब तुम पुरुषार्थको साधनेमें प्रवृत्त क्यों नहीं होते। काम आदि शत्रु, अप्रमत्त जाग्रत और नित्य उद्योगयुक्त होके छिद्र खोज रहे हैं, तुम बालक

हो, इसलिये उसे नहीं समझ सकते, सब दिन गणित परमायु क्षीण और जीवनकालको बीतते देखकर तुम क्यों नहीं देवता और गुरुके शरणागत होते हो। अत्यन्त नास्तिक लोग इस लोकमें मांस और रुधिरकी वृद्धिकी कामना करते हैं, परन्तु वे पारलौकिक कार्य्योंमें प्रसुप्त हुआ करते हैं। जो सब मूढ़-बुद्धि मनुष्य धर्म्मकी असूया करते हैं, उन कुप-थगामी लोगोंका जो लोग अनुसरण किया करते हैं, वे भी पीड़ित होते हैं और जिन सब महाभाग महाप्राण सदा सन्तुष्ट श्रुतिपरायण मनुष्योंने धर्म्मपथमें आरोहण किया है, उन्हींकी उपासना करो और उन्हींसे धर्म्म जिज्ञासा करो। उन धर्म्मदर्शी मनीषियोंके मतको निश्चय करके उत्पथगामी चित्तको परम बुद्धिके जरिये नियमित करो। चैतन्यता-रहित सर्व्व भक्षी लोग इस समय दूसरा दिन दूर है, ऐसा समझके निर्भय होकर कर्म्मभू-मिको अवलोकन करते हैं। धर्म्मस्वरूप सोपान अवलम्बन करके धीरे धीरे उसपर आरूढ़ होते हैं, कोषकारकी भांति आत्माको बांधके कुछ भी नहीं जान सकते हैं। नदीके तटको तोड़नेवाले प्रवाहकी भांति मर्य्यादा तोड़नेवाले नास्तिकोंको दण्ड उद्यत करनेवाले पुरुषके समान विश्वासी होकर बांई ओर कर रखो। धैर्य्यमयी नौकाको अवलम्बन करके काम, क्रोध, मृत्यु और पञ्च इन्द्रिय जलसे युक्त नदी-रूपी जन्म दुर्गको तरो। जब कि लोग जराके जरिये आहत और मृत्युसे परिपीड़ित होरहे हैं, जब परमायुका हरता हुई रात्रि सफल होके बिती जाती है, तब धर्म्मस्वरूप स्रोतको अवलम्बन करके संसारसे तरो। जब मृत्यु सुखसे सोये हुए मनुष्यको खोज रही है, तब अकस्मात मृत्युग्रस्त होकर मनुष्य किस प्रकार निवृत्ति लाभ कर सकता है। मनुष्यको अर्थ-सञ्चय करके काम भोगसे परितृप्त न होते होते, मृत्यु इस प्रकार उठा ले जाती है, जैसे बाघिन भेड़को ग्रहण करके चल देती है। अन्धकारमें प्रविश करना होगा, इसलिये धर्म्मबुद्धिमय महान् दीपशिखाको क्रमसे उज्वल करके यत्न-पूर्व्वक उसे धारण करो। हे पुत्र! अनेक शरीर धारण करके तब इस मनुष्य शरीरमें जीव कदा-चित ब्राह्मणत्व लाभका तन पाता है; तुमने वह ब्राह्मणत्व लाभ किया है, इसलिये उसे परिपालन करो, यह प्रत्यक्ष परिदृश्यमान ब्राह्मण शरीर काम भोगके निमित्त नहीं उत्पन्न होता, यह इस लोकमें तपस्याका क्लेश सहनेके लिये और परलोकमें परम श्रेष्ठ सुख-सम्भोग करनेके निमित्त उत्पन्न होता है। बहुत तपस्यासे ब्राह्मणजन्म मिलता है, इस-लिये उसे प्राप्तकर रति-परायण होके अवहेला करना उचित नहीं है। पितर पितामह पर-म्परासे प्रचलित वेदपाठ, तपस्या और सदा इन्द्रियनिग्रहमें नियुक्त रहके मोक्षार्थी और कुशलपरायण होके उक्त विषयोंमें सर्व्वदा यत्न-वान होना चाहिये। मनुष्योंके यह अवस्था-रूपी घोड़े, अव्यक्त प्रकृति, पूर्व्वोक्त कला समूह रूप शरीर युक्त स्वभावसम्पन्न क्षणकाटि और निमिषरूपी रोमश छिदनयोग्य कृष्ण तथा शुक्ल पक्षरूपी दो नेत्र संयुक्त और मांसरूपी अङ्ग-विशिष्ट होकर निरन्तर दौड़ रहे हैं। इन अव-स्थारूपी घोड़ोंको सदा प्रचण्ड वेगसे अदृश्यभा-वसे दौड़ते हुए देखकर यदि तुम्हारे नेत्र अन्धेके समान न हों तो परलोकके विषयको सुनके तुम्हारा मन धर्म्मविषयमें रत होवे।

इस लोकमें जो लोग प्रचलित धर्म्मके विष-यमें स्वेच्छाचार करते हैं और सदा डाह प्रकाश करते हुए अनिष्ट-प्रयोग किया करते हैं, वे लोग यमलोकमें यातना शरीर धारण करके बहुतसी अधर्म्मक्रियाके जरिये क्लेश भोग करते हैं। राजा सदा धर्म्मपरायण और उत्तम अधम वर्णोंका पालक होके सुकृति लोगोंके

पाने योग्य लोकोंको पाता है, वह अनेक प्रकारके शुभ कर्म्म करके अनेक योनियोंमें अनुगत निरवद्य मोक्षसुख लाभ किया करता है। जो पुरुष इस लोकमें माता पिता और गुरुजनोंके वचनको टालता है, उसका शरीर छूटनेपर नरकमें भयङ्कर शरीरवाले कुत्ते मुख बाये हुए कौवे महाबली गिद्ध तथा दूसरे बहुतेरे पक्षी और कदर्थ्य कीटसमूह उसे भक्षण करते हैं। स्वयम्भूके जरिये शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान अहिंसा, सत्य, अस्तेय, व्रताचरण और अपरिग्रह, यह दस प्रकारकी मर्य्यादा निर्द्दिष्ट हुई है, जो पापात्मा पुरुष स्वेच्छापूर्व्वक उस मर्य्यादाको अतिक्रम करते हैं, वे यम भवनरूपी वनमें अवगाहन करते हुए अत्यन्त दुःखसे निवास किया करते हैं। जो मनुष्य लोभसे लोकाप्रिय मिथ्या वचन कहता है, और छलसे ठगहारी चोरी आदि नीच कार्य्योंमें रत होता है, वह नीच कर्म्म करनेवाला पापात्मा परम नरकमें गमन करके बहुत दुःख अनुभव करता है, वह दुष्टात्मा गर्म्मजलवाली वैतरनी नामी महानदीमें स्नान करते हुए तलवारके पत्तोंसे युक्त वनमें विदीर्ण शरीर होकर परशु वनमें सुलाया जाता है, फिर अत्यन्त आर्त्त होकर महा नरकमें पड़के उसमें वास करता है। "तुम ब्रह्मा आदिके स्थानोंको देखकर मैं धन्य हुआ" इत्यादि बड़ाई किया करते हो, परन्तु परम पदको नहीं देखते; शीघ्र ही जरा आवेगी, उसे नहीं समझ सकते हो, इसलिये निश्चिन्त चित्तसे क्यों वैठे हो? मोक्षमार्गमें प्रस्थान करो, सुखको दूर करनेवाला अत्यन्त दारुण महत् भय उत्पन्न होता है, इसलिये मोक्षसाधन विषयमें यत्न करो। मरने पर यमराजके शासन वशसे उनके समीप उपस्थित होगे; इससे अगाड़ीके दुःखके लिये दारुण कृच्छ्र व्रतके जरिये सरलता साधनमें प्रयत्न करो। दुःखोंके जाननेवाले निग्रहानिग्रहमें समर्थ यमराज मूल बान्धवोंके सहित तुम्हारा जीवन हरेगा; कोई उसे निवारण करनेमें समर्थ न होगा। यमके अगाड़ी वायु प्रबल वेगसे वहेगा और वह वायु अकेले ही तुम्हें उसके निकट पहुंचावेगा, इसलिये जिससे पारलौकिक हित हो, उसहीका अनुष्ठान करो तुम्हारे प्राणको नष्ट करनेवाली वायु जो बहेगी इस समय वह कहां है। और तुम्हें महाभय उपस्थित होनेपर जो सब दिशा बिभ्रान्त होंगी वे भी इस समय कहां हैं?

हे पुत्र! जब तुम समाकुल होके गमन करोगे, उस समय तुम्हारी श्रवणेन्द्रिय निरुद्ध होगी, इसलिये तुम परम उत्कृष्ट समाधि अवलम्बन करो। प्रमाद कर्म्मोंमें लिप्त पहलेके किये हुए शुभाशुभोंको स्मरण करके तुम दुःखित न होगे, केवल आश्रयणीय समाधि अवलम्बन करो। रोगोंकी सहाय कहके मृत्यु बलपूर्व्वक जीवन क्षय होनेके समय तुम्हारे शरीरको भेद करेगी, इसलिये महत् तपस्याका अनुष्ठान करो। मनुष्य देह-गोचर भयङ्कर कामादिरूपी भेड़िये सब भांतिसे दौड़ेंगे, इसलिये पुण्यशीलताके लिये यत्न करो। अकेले अन्धकार अवलोकन करोगे और पहाड़की शिखरपर मरन-चिन्ह स्वरूप हिरण्यमय वृक्षोंको देखोगे, इसलिये पुण्य करनेमें शीघ्रता करो। हे पुत्र! कुसङ्ग तथा सुहृत् समान मालूम होनेवाले शत्रुओंके देखनेसे तुम्हारी बुद्धि बिचलित न हो, इसलिये जो परम वस्तु है उसहीकी खोजमें नियुक्त रहो। जिस धनकी रक्षा करनेमें राजभय नहीं है और चोरोंसे जिसमें भय उपस्थित नहीं होता जो धन मरे हुए मनुष्योंको भी परित्याग नहीं करता, उस ही धनको उपार्ज्जन करो। निज कर्म्मके जरिये प्राप्त हुआ जो धन परलोकमें परस्परके निकट विभक्त नहीं होता, जिसका जो यौतुक धन है, परलोकमें उसेही वह भोग करता है। हे पुत्र!

परलोकमें जो धन उपजीव्य होता है, वही धन दान करो। जिस धनका नाश नहीं है, और जो सदा रहता है, तुम स्वयं उस ही धनका उपार्ज्जन करो। महाजनभुक्त यव पिष्ट विकार जबतक परिपाक नहीं होता उतनेही समयके बीच तुम शीघ्र ही लयको प्राप्त होगे अर्थात् भोग विषयोंको भोग करके मोक्ष विषयमें यत्न करोगे, इस प्रकार मनन करना उचित नहीं है भोग्य विषय भोग न होतेही मृत्युभय आके उपस्थित होता है।

जब मनुष्य सङ्कटमें पड़के अकेले ही परलोकमें जाता है, उस समय माता, पुत्र, बान्धव और परिचित प्रिय लोग कोई भी उसका अनुगमन नहीं करते। हे पुत्र! जो कुछ पहलेका शुभाशुभ कर्म्म रहता है, परलोकमें जानेवाले मनुष्यके साथ केवल वही गमन करता है। शुभाशुभ कर्म्मोंके जरिये मनुष्योंके जो कुछ सञ्चित सुवर्ण और रत्न हैं, देह नष्ट होनेके समय वे किसी कार्य्यके साधक नहीं होते। मनुष्योंके परलोक गमन करनेके समय कृत अकृत कर्म्मके साक्षी आत्माके समान और कोई भी नहीं है साक्षी चैतन्यके परलोकमें जानेपर मनुष्य देहशून्य होता है, ज्ञाननेत्रसे हृदयाकाशमें प्रवेश कर सकनेसे ही समस्त स्पष्टरूपसे दीख पड़ता है, अग्नि, सूर्य्य और वायु इस लोकमें इस शरीरको अवलम्बन किये हुए हैं, परलोकमें वेही धर्म्मदर्शी साक्षी होते हैं। काम, क्रोध आदि शत्रु प्रकाश्य और मूढ़भावसे जब रातदिन स्पर्श कर रहे हैं, तब तुम केवल स्वधर्म्म पालन करो, परलोकके पथमें बहुतेरे परिपन्थी अर्थात् लोहतुण्ड तथा सेड़िये आदि विपक्षमें विद्यमान हैं और वे सब विरूप वा भयङ्कर दंशमक्खियोंके जरिये परिपूरित हैं, इसलिये निज कर्म्मकी रक्षामें यत्न करो; सुकृत कर्म्म परलोकमें गमन किया करता है वह वहांपर विभक्त नहीं होता, इस लोकमें जो सब कर्म्म किये जाते हैं; परलोकमें वेही कर्म्मजनित फल भोग हुआ करते हैं। अप्सरावृन्द और महर्षि लोग जो सुख भोग करते हैं, वैसे ही सुकृतशाली मनुष्य कामगामी होकर स्वकर्म्मजनित फल भोग किया करते हैं पापरहित कृतबुद्धि और शुद्धयोनिमें उत्पन्न हुए मनुष्य इस लोकमें जिन शुभकर्म्मोंको करते हैं, परलोकमें उसहीका फल प्राप्त होता है। उनमेंसे गृहस्थ धर्म्म-सेतुके जरिये कोई कोई ब्रह्मलोक कोई वृहस्पति लोक और कोई इन्द्रलोकमें गमन करके परम गति पाते हैं। मैं तुम्हें इसी भांति सहस्रसे भी अधिक उपदेश प्रदान कर सकता हूं, किन्तु निग्रहानुग्रहमें समर्थ धर्म्म मनुष्योंको मोहित कर रखता है, तुम्हारी चौबीस वर्ष अवस्था बीती है, अब पचीसवां वर्ष प्रवृत्त हुआ है; अवस्था बीती जारही है, इसलिये धर्म्म सञ्चय करो? प्रमाद गृहवासी अन्तक जब तक इन्द्रिय सेनाको अन्धत्व आदि दोष निबन्धन स्व-स्वविषयमें भोग हीन नहीं करता है, उतने ही समयके भीतर देह मात्रके जरिये उद्योगी होकर धर्म्मपालनमें शीघ्रता करो। तुम ही पश्चात् गमन करोगे, तुम्हीं आगे जाओगे, जब तुम आत्मज्ञान प्राप्त करोगे, तब तुम्हें शरीरसे क्या प्रयोजन है और पुत्रादिकी ही क्या आवश्यकता है। जब कि भय उपस्थित होनेसे अकेलेही परलोकमें जाना होता है, तब परलोकके हितकर केवल धर्म्म ज्ञानको ही निधिकी भांति गोपन करके अवलम्बन करो। जब कि वह असङ्गवान मृत्यु, बालक, युवा और बड़ोंके सहित मनुष्योंको अवश्य ही हरण करती है, तब धर्म्मका सहारा अवलम्बन करो।

हे पुत्र! मैंने निज दर्शन और अनुमानके अनुसार तुम्हारे योग्य यह निदर्शन कहा है, इसलिये मैंने जो कुछ वर्णन किया, तुम वैसाही आचरण करो। जो लोग निज कर्म्मके जरिये देहकी पुष्टि साधन करते हैं और जो किसी

फलकी इच्छासे दान किया करते हैं, वेही एकमात्र अज्ञान और बिपरीत ज्ञान मोहादि जनित दुःख प्रभृतिके सहित संयुक्त हुआ करते हैं। जो लोग शुभ कार्य्योंको सिद्ध करते हैं, उनका तत्त्वमसि वाक्य जनित ज्ञान अखण्ड ब्रह्माण्डमय व्याप्त होता है, अर्थात् वे सर्व्वज्ञ होते हैं, सर्व्वज्ञता ही मोक्षके निमित्त परम पुरुषार्थ प्रदर्शित करती है, इसलिये कृतघ्न पुरुषको जो उपदेश किया जाता है, वही सार्थक होता है, कृतघ्न मनुष्यको यह सब उपदेश प्रदान करनेसे विफल होता है। ग्रामके बीच स्त्री पुत्र आदि परिवारसे घिरकर निवास करनेकी जो अभिलाषा है, वही बन्धनरूपी रसरी है, सुकृतशाली मनुष्य इस बन्धन रज्जुको काटके गमन करते हैं और पापकर्म्म करनेवाले मनुष्य उसे काटनेमें समर्थ नहीं होते।

हे पुत्र! जब तुम परलोकमें गमन करोगे, तब धन, सम्पत्ति, बन्धु-बान्धव और पुत्र-पौत्रादिसे क्या प्रयोजन है? हृदयाकाशके बीच आत्माको अन्वेषण करो, तुम्हारे पितामह प्रपितामह कहां गये हैं। जो कल्ह करना होगा, उसे आज पूरा करो और अपरान्हमें जो करना हो, उसे पूर्व्वान्हमें सिद्ध करो; मनुष्यके कर्त्तव्य कार्य्य सिद्ध हों, वा न हों मृत्यु इसके लिये प्रतीक्षा नहीं करती। मनुष्य शरीर नष्ट होनेपर स्वजन सुहृत् और बान्धव लोग उस मृत शरीरका अनुगमन करके उसे अग्निमें डालकर निवृत्त होते हैं, इसलिये तुम आलसहीन और विश्वस्त रूपसे परमपद पानेके अभिलाषी होकर पापबुद्धि निर्द्दयी नास्तिकोंका पीछे करो, जब कि लोग कालके जरिये इस प्रकारसे पीड़ित और सब भांतिसे नष्ट हो रहे हैं, तब तुम महत् धैर्य्य अवलम्बन करके सब प्रयत्नसे धर्म्माचरण करो। जो मनुष्य इस ही भांति मोक्षपथ देखनेके उपायको पूर्णरीतिसे जानता है, वह इस लोकमें सब भांतिसे स्वधर्म्माचरण करके परलोकमें सुखभोग करता है। देह नाश होनेसे मरण नहीं होता, इसे जानके जो लोग शिष्टजनोंके समादृत पथमें वर्त्तमान रहते हैं, उनका विनाश नहीं है। जो धर्म्मकी वृद्धि करते हैं, वेही पण्डित हैं और जो पुरुष धर्म्मसे च्युत होता है वह मोहग्रस्त हुआ करता है। प्रयोक्ता जैसा कर्म्म करता है, कर्म्मपथमें प्रयुक्त निज शुभाशुभ कर्म्मोंका फल उस ही भांतिसे पाता है। हीनकर्म्म करनेवाला मनुष्य निरयगामी होता है और धर्म्म करनेवाले मनुष्य सुरपुरमें जाते हैं। और स्वर्गके सोपान स्वरूप दुर्लभ मनुष्य जन्म पाके आत्माको उस ही भांतिसे समाहित करे; जिससे कि फिर भ्रष्ट होना न पड़े। जिसकी बुद्धि स्वर्गमार्गकी अनुसारिणी होकर धर्म्मकी अतिक्रम नहीं करती, उस पुत्र-पौत्र प्रभृतिके अशोचनीय मनुष्यको लोग पुण्यकर्म्मा कहा करते हैं। जिसकी बुद्धि अबाधित होकर निश्चय अवलम्बन करती है, स्वर्गमें उसे स्थानाभाव नहीं होता और उसे महत् भय भी नहीं होता। जिसने तपोवनमें जन्म लेकर उसही स्थानमें प्राणत्याग किया है, उन काम भोगसे अनभिज्ञ तपस्वियोंके धर्म्म अत्यन्त अल्प हैं और जो लोग भोग विषयोंका त्यागके शारीरिक क्लेश आदिके जरिये तपस्याचरण करते हैं, उन्हें कुछ भी अप्राप्य नहीं है, वही फल मुझे सम्मत है।

सहस्रों माता, पिता, सैकड़ों स्त्री-पुत्र, अनागत और अतीत होते हैं, वे किसके हैं, और हम लोग ही किसके हैं। मैं अकेला हूं, मेरा कोई नहीं है, मैं भी दूसरे किसीका नहीं हूं, मैं जिसका हूं, ऐसा किसीको भी नहीं देखता और जो मेरा है, उसे भी नहीं देखता। तुम्हारे जरिये उनका कोई कार्य्य नहीं है और न उनके जरिये तुम्हारा ही कुछ कार्य्य है; उन्होंने अपने किये हुए कर्म्मोंके जरिये जन्म ग्रहण किया है, तुम भी निज कर्म्मोंके सहारे

गमन करोगे। इस लोकमें धनवान पुरुषोंके स्वजनसमूह स्वजनोंकी भांति व्यवहार करते हैं और दरिद्रोंके जीवित रहते ही उनके सब स्वजन विनष्ट होते हैं। मनुष्य प्यारी स्त्रीके अनुरोधसे अशुभ कर्म्म सञ्चय करता है, उसहीसे इस लोक और परलोकमें क्लेश मिलता है। हे पुत्र! जब जीवोंको अपने कर्म्मोंके जरिये विच्छिन्न देखते हो, तब मैंने जो सब कथा कही है, तुम उसहीके अनुसार आचरण करो। यह सब आलोचना करके जो लोग कर्म्मभूमिको अवलोकन करते हैं और जिन्हें परलोकमें सद्गति मिलनेकी बहुत अभिलाषा रहती है, उन्हें शुभ आचरण करना चाहिये। मास और ऋतुओंकी संज्ञा परिवर्त्तन करनेवाला स्वकर्म्म निष्पत्ति फलके साक्षी सूर्य्यस्वरूप अग्नि और दिनरातरूपी काठके जरिये काल सब भूतोंको बलपूर्व्वक पका रहा है। जो धन किसीको दान नहीं किया जाता और न भोग ही किया जाता है, उस धनसे क्या प्रयोजन है? जिसके जरिये शत्रुओंको बाधित नहीं किया जाता, वैसे शास्त्रज्ञानका क्या प्रयोजन है; और जिसके जरिये जितेन्द्रिय और वशीभूत न होसके, वैसी आत्मासे ही क्या आवश्यक है?

भीष्म बोले, द्वैपायनके कहे हुए ऐसे हित-वाक्यको सुनके शुकदेव पिताको परित्याग कर मोक्षोपदेशकके निकट गये।

३२१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! दान, यज्ञ, तपस्या और गुरुसेवाके विषय यदि आपको मालूम हों, तो उसे मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, मन अनर्थयुक्त बुद्धिके जरिये पापमें निविष्ट होता है, अन्तमें निज कर्म्मोंको कलुषित करके महाक्लेशमें पतित हुआ करता है। पापशील दरिद्र लोग एक दुर्भिक्ष निवारित न होते ही दूसरे दुर्भिक्षसे, एक क्लेशसे, न छूटते ही दूसरे क्लेशसे, एक भयके शान्त न होते ही दूसरे भयसे आविष्ट होते हैं, वे लोग मृतकसे भी अधिक अपदार्थ हैं। और श्रद्धा-शील, दान्त, शुभ कर्म्म करनेवाले धनवान लोग एक उत्सवसे दूसरे उत्सवमें स्वर्गसे स्वर्गान्तरमें और सुखसे सुखान्तरमें गमन करते हैं।

जो स्थान हिंसक जन्तु तथा हाथी आदिके जरिये दुर्गम है और जिस स्थलमें सांप वा चोर आदिका भय विद्यमान है, वहांपर दूसरेकी बात तो दूर रहे, नास्तिक लोग भी हस्तप्राप्य प्रदेशमें अग्रसर नहीं होते, जो लोग देवता, अतिथि और साधुओंको प्रिय समझते हैं और वदान्य होकर दक्षिणा दान करते हैं, वेही बुद्धिमान मनुष्योंके मङ्गलास्पद पथमें निवास किया करते हैं। धान्यके बीच पुलाक अर्थात् तुच्छ धान्य और पक्षियोंमें जैसे पूत्यण्ड अर्थात् अत्यन्त क्षुद्र पतङ्ग विशेष गणनीय नहीं हैं, वैसे ही जिनकी धर्म्मविषयमें श्रद्धा नहीं है, वे मनुष्योंके बीच नहीं गिने जाते, जो पुरुष जैसा कर्म्म करता है, उसके अत्यन्त दौड़नेपर भी वह कर्म्म उसके साथ दौड़ता है और कृतकर्म्मा मनुष्यके सोते रहनेपर भी कर्म्म उसके साथ शयन करता है, स्थित रहनेपर भी पाप उसके निकट निवास करता है, दौड़नेपर भी उसके सङ्ग दौड़ता है। जो पुरुष कर्म्म करता है, उस कृतकर्म्मा पुरुषको छायाकी भांति पाप उसका सङ्ग नहीं छोड़ता। जिसके जरिये जिस भांतिसे जो जो कर्म्म पहले किये जाते हैं, उत्तरकालमें जीव अपने किये हुए उन्हीं कर्म्मोंको भोग किया करता है। समान कर्म्म विक्षेप विधान और परिरक्षायुक्त, इन सबको काल सब प्रकारसे आकर्षण करता है, जैसे फूल फल अपने समयको अतिक्रम नहीं करते, पहलेके किये हुए कर्म्म भी वैसे ही हैं। मान, अपमान, लाभ, हानि, क्षय, अक्षय, ये सब प्रकृत और

महाभारत
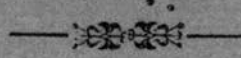
शान्ति, अनुसाशन, अश्वमेध, आश्रमवासिक,
मौषल, महाप्रस्थानिक, स्वर्गारोहणपर्व्व
समाप्त।

महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास-कृत मूल संस्कृतसे
योग्य पण्डितोंके द्वारा

अनुवादित
और
११७।१ बहूबाजार ष्ट्रीट, कलकत्तेसे
श्री शरच्चन्द्र सोमके द्वारा
प्रकाशित।

द्वितीय संस्करण।

VOL. III.

कलकत्ता;
श्री माणिकचन्द्र चक्रवर्त्तीके द्वारा
११७।१ बहूबाजार ष्ट्रीट,—कलेज मेशिन प्रेससे मुद्रित।

१६०७।

महाभारत।

शान्तिपर्व्व।
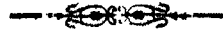
राजधर्म्म-प्रकरण।

नर, नारायण, व्यासदेव और सरस्वती देवीको प्रणाम करके महाभारत पुराणकी कथा कहे।

महात्मा राजा धृतराष्ट्र, विदुर, भरत-कुलकी स्त्रियें और पाण्डव लोग दुर्य्योधन आदि मृत सुहृद पुरुषोंको जलदानादिक क्रिया विधि-पूर्व्वक करके शोकित चित्तसे एक महीनेतक नगरके बाहर गङ्गा तीरपर बास करने लगे। उस ही समय साधुओंमें श्रेष्ठ महात्मा नारद, वेदव्यास, देवल, देवस्थान, और कण्व आदि सिद्ध, ब्रह्मर्षि, महर्षि तथा उन महात्माओंके मुख्य मुख्य शिष्य तर्पणसे निवृत्त धर्म्मराज युधिष्ठिरके समीप उपस्थित हुए साधु, पवित्र, शुद्ध-बुद्धिवाले तथा वेद जाननेवाले, गृहस्थ और स्नातक ब्राह्मणोंने आकर कुरुसत्तम युधिष्ठिरका दर्शन किया। अनन्तर वे सब वहांपर इकट्ठे हुए। महर्षि लोग यथा उचित रीतिसे पूजित होकर सुन्दर आसनोंपर बैठ गये। इसी भांति सैकड़ों सहस्रों ब्राह्मण लोग उस समयके अनुसार पूजा और दान ग्रहण करके पवित्र भागीरथीके तीरपर स्थित हुए और शोकसे व्याकुल राजा युधिष्ठिरको घेरकर उनके चारों ओर बैठके धीरज धारण कराते हुए उनके सङ्ग वार्त्तालाप करनेमें प्रवृत्त हुए। देवऋषि नारद कृष्णद्वैपायन आदि मुनियोंसे सङ्ग मिलकर धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरसे उस समयके अनुसार यही वचन बोले, महाराज! आपने अपने बाहुबलके प्रभाव और कृष्णकी प्रसन्नतासे धर्म्म-पूर्व्वक इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जय किया है; प्रारब्धसे ही आप इस महाभयङ्कर संग्रामसे जीवित मुक्त हुए हैं; इससे इस समय आप क्षत्रिय धर्म्ममें रत होकर सन्तुष्ट तो हैं? आप युद्धभूमिमें सम्पूर्ण शत्रुओंको पराजित करके इस समय इष्टमित्रोंके आनन्दको बढ़ाते तो हैं? आपने इस समय सम्पूर्ण राज-लक्ष्मी प्राप्तकी है, इससे शोकादि क्लेश तुम्हारे चित्तको दुःखित तो नहीं करते हैं?

राजा युधिष्ठिर देवर्षि नारदके ऐसे वचनोंको सुनकर बोले, हे भगवन्! कृष्णके बाहुबलके सहारे ब्राह्मणोंको प्रसन्नता और भीम अर्ज्जुनके पराक्रमसे मैंने इस सम्पूर्ण पृथ्वीको जय किया है, यह ठीक है; परन्तु लोभके वशमें होकर जातिके पुरुषोंके नाश करनेसे मेरा चित्त सदा दुःखित रहता है। देखिये सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु और द्रौपदीके पांचो-पुत्र,—इन सम्पूर्ण प्रिय पुत्रोंके युद्धमें मारे जानेसे मेरी विजय लाभ भी पराजयके समान ही मालूम हो रही है। मेरे भाईकी भार्य्या वृष्णि-कुल नन्दिनी सुभद्रा मुझे क्या कहेगी! और लोगों तापके हरनेवाले, मधुसूदन कृष्ण भी जब यहांसे द्वारकापुरीमें जायँगे, तब उनको द्वारिकावासी लोगोंने भी क्या कहेंगे? देखिये! हम लोगोंके प्रियकार्य्यमें सदा रत

और हितकारिणी द्रौपदी देवीके पिता, भ्राता और पुत्र मारे गये हैं, उसहीसे यह अत्यन्त कातर होके रुदन करती हुई मेरे चित्तको दुःखित कर रही हैं। हे भगवन्! मैं आपसे और भी एक दुःखका विषय कहता हूं, आप सुनिये। मेरी माता कुन्ती देवीने एक बात गोपनकी थी, उससे मैं इस समय अधिक दुःखसे व्याकुल होरहा हूं। जो बुद्धिमान इस पृथ्वीके बीच अद्वितीय रथी कहके विख्यात थे, जिनकी गति और पराक्रम सिंहके समान था। जो दश हजार हाथियोंके समान बलशाली, दयावान, दाता और सदा व्रताचरणमें रत, अत्यन्त पराक्रमी, निर्भय-चित्तवाले, क्रुद्ध-स्वभाव, मानी और धृतराष्ट्र पुत्रोंके आश्रय स्वरूप थे। जो अद्भुत पराक्रम प्रकाशित करनेवाले कृती, चित्रयोधी, शीघ्र अस्त्र चलानेमें समर्थ महाबलवान और प्रतियुद्धमें हम लोगोंके चित्तमें संशय उत्पन्न करते थे; वह हम लोगोंके भ्राता थे और गुप्त रूपसे उन्होंने कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। आज मृत पुरुषोंको जल देनेके समय कुन्तीने कहा, कि कर्ण सूर्य्यके प्रभावसे मेरे गर्भसे उत्पन्न हुए थे। माताने ऐसे गुणवान पुत्रको जन्मते ही मञ्जूषामें रखकर गङ्गाके स्रोतमें बहा दिया था। हे ऋषिसत्तम! जिसे सब कोई सूतवंशमें उत्पन्न हुआ समझते थे, वह कुन्तीके ज्येष्ठपुत्र हम लोगोंके सहोदर भाई थे। हे महर्षि! मैंने बिना जाने ही जो अपने भाईका वध किया है, इस ही कारण मेरा शरीर शोकरूपी अग्निसे इस प्रकार भस्म हुआ चाहता है, जैसे अग्नि रुईको भस्म कर देती है। कर्ण हम लोगोंके सहोदर भ्राता थे, इस वृत्तान्तको मैं तथा भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव कोई भी नहीं जानते थे; परन्तु श्रेष्ठ व्रत करनेवाले कर्ण हम लोगोंको अपना भ्राता ही जानते थे! मैंने सुना है, कि मेरी माता कुन्ती देवी हम लोगोंके विषयमें शान्ति स्थापित करनेकी इच्छासे कर्णके समीप जाके उनसे बोली कि "हे कर्ण! तुम मेरे पुत्र हो"। माताके वचनको सुनकर महात्मा कर्णने उनकी इच्छा पूर्ण न की। मैंने ऐसा सुना है, कि अन्तमें कर्णने यह उत्तर दिया था, कि "मैं इस उपस्थित युद्धमें दुर्योधनको किसी भांति परित्याग न कर सकूंगा, यदि मैं ऐसा कर्म करूं तो मेरी नीचता नृशंसता और कृतघ्नता प्रकाशित होगी। विशेष करके यदि मैं तुम्हारे मतके अनुसार युधिष्ठिरके सङ्ग सन्धि करूं, तो सब कोई मुझे अर्जुनसे भयभीत हुआ समझेंगे; इससे मैं कृष्णके सहित अर्जुनको पराजित करके पश्चात् युधिष्ठिरके सङ्ग सन्धि करूंगा।" महाबाहु कर्णके ऐसे वचनको सुनकर अन्तमें माताने उनसे यह वचन कहा, "हे पुत्र! तब तुम केवल अर्जुनके ही सङ्ग युद्ध करना; और अर्जुनके अतिरिक्त मेरे अन्य जो चार पुत्र हैं, उन्हें युद्धमें अभयदान करो!" उस समय कर्ण हाथ जोड़के भयसे कांपती हुई मातासे यह वचन बोले,—"हे देवी! यदि तुम्हारे अन्य चारों पुत्र युद्ध करते असमर्थ होकर मेरे वशमें भी होजावेंगे, तोभी मैं तुम्हारे अन्य चारों पुत्रोंका प्राण नाश नहीं करूंगा। इस युद्धमें मेरे अथवा अर्जुनके मारे जानेपर भी तुम्हारे पांच पुत्र उपस्थित रहेंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।" अनन्तर पुत्रोंके कल्याणकी इच्छा करनेवाली माताने फिर कर्णसे कहा "हे पुत्र! जाओ तुम जिसके मङ्गल कामनाकी अभिलाषा करते हो, उस भरणकर्त्ता दुर्योधनादिकोंके कल्याण साधनके कार्य्यको करनेमें प्रवृत्त रहो; उस विषयमें मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है"—ऐसा वचन कहके मेरी माता कुन्तीदेवी कर्णको परित्याग करके अपने गृहमें चली आई थी। हम लोगोंके बड़े सहोदर भ्राता महाबाहु कर्ण अपने भाई अर्जुनके हाथसे मारे गये हैं; परन्तु इस

गुप्त-वृत्तान्तको कुन्तीदेवी अथवा कर्ण,—इन दोनोंमेंसे किसीने भी प्रकाशित नहीं किया था, इस कारण मेरे सहोदर भ्राता महाधनुर्द्धर कर्ण अपने भाई अर्जुनके हाथसे मारे गये। हे द्विजसत्तम! मैंने माताके मुंहसे इस समय वह वृत्तान्त सुना है, कि कर्ण हम लोगोंके ज्येष्ठ भ्राता थे। जबसे मैंने इस वृत्तान्तको सुना है, तभीसे भ्रातृहत्याके कारण शोकसे मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल होरहा है क्यों कि कर्ण अर्जुनको सहायतासे मैं देवतोंके सहित इन्द्रको भी जीत सक्ता। कौरवोंकी सभाके बीच जब धृतराष्ट्रके दुष्ट पुत्रोंने हम लोगोंका बहुत अपमान किया उस समय अकस्मात् मेरे चित्तमें क्रोध उत्पन्न हुआ था, परन्तु कर्णके दोनों चरणोंको देखते ही शान्त होगया; क्यों कि कर्णके दोनों चरण मेरी माता कुन्ती-देवीके चरणके समान ही थे। उनके पांव मेरी माताके पांव समान कैसे हुए, इस बातकी मैंने बहुत ही खोज की परन्तु मुझे कुछ भी न मालूम हुआ। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ आप सब बातोंके जाननेवाले हैं और संसारकी भूत भविष्य कालकी सम्पूर्ण घटनाओंको जानते हैं, इससे मैं आपसे पूछता हूं, कि मेरे भाई कर्णके रथके चक्रको पृथ्वीने क्यों ग्रास किया था, और किस भांतिसे उन्हें शाप मिला था? मैं इन सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको सुननेकी इच्छा करता हूं; इससे आप इस विषयके सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन कीजिये।

१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब राजा युधिष्ठिरने ऐसा वचन कहा तब देवऋषि नारदने कर्णके शापके विषयमें जो कुछ घटना हुई थी, उन सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको कहना आरम्भ किया।

नारद मुनि बोले, हे महाबाहु युधिष्ठिर! तुमने जो कुछ कहा वह सब सत्य है युद्धभूमिमें अर्जुन और कर्णसे कोई कार्य्य भी असाध्य नहीं थे, परन्तु मैं तुम्हारे समीप देवताओंसे भी गोपनीय वृत्तान्त वर्णन करता हूं तुम चित्त लगाके सुनो, हे राजन्! किसी समय ब्रह्माने अपने मनमें चिन्ता की, कि ये सम्पूर्ण क्षत्रिय पुरुष शस्त्रसे मरकर किस भांति स्वर्ग लोकमें गमन करेंगे, ऐसा ही विचार करके कुन्तीकी कन्या अवस्थामें क्षत्रियोंके बीच युद्धका रूपी अग्नि प्रगट करनेवाला एक गर्भ उत्पन्न किया! उस गर्भसे जो बालक उत्पन्न हुआ था वही समयके अनुसार सूतपुत्र कहके विख्यात हुआ और अङ्गिरा वंशमें मुख्य द्रोणाचार्य्यके निकट धनुष विद्या सीखा था; परन्तु वह भीमसेनके बल, अर्जुनके अस्त्र लाघव, तुम्हारी बुद्धि और नकुल, सहदेवके विनय, विशेष करके बालक अवस्थामें श्रीकृष्णके साथ अर्जुनकी मित्रता और प्रजाका तुम्हारे ऊपर अनुराग देखकर दुःखित हुए थे। अनन्तर कर्णने भी बालक अवस्थामें दुर्य्योधनके साथ मित्रता की, परन्तु दैवी संयोगके कारण वह तुम लोगोंके द्वेषी हुए। तिसके अनन्तर कर्णने अर्जुनको धनुर्वेदमें सबसे श्रेष्ठ देख गुप्त-रीतिसे द्रोणाचार्य्यके निकट जाकर कहा, हे आचार्य्य! मैं रहस्य, प्रयोग और प्रतिसंहारके सहित ब्रह्मास्त्र सीखनेकी इच्छा करता हूं क्यों कि मेरे मनमें अर्जुनके सङ्ग युद्ध करनेकी अभिलाषा है. पुत्र और शिष्योंके ऊपर आपको समान ही प्रीति है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, इससे आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये, जिससे बुद्धिमान क्षत्रियोंके बीच कोई मुझे अकृतास्त्र न कह सके।

द्रोणाचार्य्यने कर्णके वचनोंको सुनकर उसके चित्तके विषयको जान लिया, और अर्जुनके पक्षपाती होकर यह वचन बोले,—व्रताचरण करनेवाले ब्राह्मणों और तपस्यामें निष्ठा-

वान चत्रियोंको ही ब्रह्मास्त्र जानना उचित है; दूसरी जातिके मनुष्योंको ब्रह्मास्त्र सीखनेका अधिकार नहीं है। जब द्रोणाचार्य्यने ऐसा उत्तर दिया, तब कर्ण उनका सम्मान करते हुए उनकी अनुमतिसे महेन्द्र पर्व्वत पर बास करनेवाले परशुरामजीके निकट गये; कर्णने परशुरामके समीप जाके शिर झुका कर उन्हें प्रणाम किया और उनसे कहा, कि "मैं भृगुवंशीय ब्राह्मण हूं।" परशुरामने उनका नाम गोत्र और शुभागमनका विषय पूंछ कर आदर पूर्व्वक उन्हें अपने आश्रम पर ठहराया। कर्ण प्रसन्न चित्तसे वहां रहने लगे, वह जब परशुराम जीके निकटमें जाकर महेन्द्र पर्व्वत पर निवास करने लगे, तब धीरे धीरे देवता गन्धर्व्व, यच और सब राचसोंके संग उनसे मिलाप हुआ। वहां पर रहके कर्णने भृगुश्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ परशुराम जीसे विधिपूर्व्वक सम्पूर्ण महा अस्त्र शस्त्रोंकी विद्या सीख ली; और देवता, दानव तथा राचसोंके अत्यन्त ही प्रीति पात्र हुए। अनन्तर किसी समय सूर्य्यपुत्र कर्ण तलवार और धनुष बाण धारण करके समुद्रके निकटमें ही एक आश्रमके समीप भ्रमण कर रहे थे, उस समय दैवके बशमें होकर बिना जाने उन्होंने एक अग्निहोत्र करनेवाले ब्रह्मवादी ब्राह्मणके यज्ञकी गऊका प्राण नाश किया; कुछ समय बीतने पर जब कर्णने जाना, कि बिना जाने भूलसे मैंने ब्राह्मणकी गऊका बध किया है; तब उस ब्राह्मणके निकट जाके बहुत बिनती और प्रार्थनासे उस तपस्वी ब्राह्मणको प्रसन्न करनेके वास्ते यह बचन बोले,—"हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने बिना जाने आपकी गऊका बध किया है, इससे आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये।" जब वह बार बार उस ब्राह्मणकी प्रार्थना करके ऐसा ही बचन कहने लगे, तब वह ब्राह्मण बहुत ही क्रुद्ध हुआ और कठोर बचनोंसे कर्णकी निन्दा करके यह बचन बोला, रे दुष्टबुद्धिवाले नीच पुरुष! तेरा बध करना ही उचित है। जो हो, तू अब अपने किये हुए पाप कर्म्मके फलको भोग कर; तू जिसके ऊपर सदा ही ईर्षा किया करता है, और जिसके वास्ते दृढ़ताके सहित अस्त्र शस्त्रोंका अभ्यास कर रहा है,—रे पापी! उसके सङ्ग जब तेरा द्वैरथ युद्ध उपस्थित होगा, उस समय तेरे रथके चक्रको पृथ्वी ग्रास करेगी; रथचक्रको जब पृथ्वी ग्रास कर लेगी, और तू उस ही शोक तथा दुःखसे मोहित होजावेगा; उस ही समय तेरा शत्रु दृढ़ पराक्रम प्रकाशित करके तुम्हारा शिर काटेगा। अरे अधम पुरुष! इस समय तूं यहांसे चलाजा। रे मूढ़! जैसे तूने प्रमत्त होकर मेरे यज्ञकी गऊका प्राणनाश किया है, वैसेही तेरी प्रमत्त अव स्थामें ही तेरा शत्रु तेरे शिरको काटके पृथ्वीमें गिरावेगा।" जब उस ब्राह्मणने कर्णको इस प्रकार शाप दिया, तब कर्ण अनेक गऊ और रत्न आदि बस्तुओंसे उस ब्राह्मणको यत्नपूर्व्वक प्रसन्न करने लगे। तब यह तपस्वी ब्राह्मण बोला, "मेरे मुखसे जो बचन निकला है, उसे सम्पूर्ण लोकके प्राणी इकट्ठे होकर भी मिथ्या करनेमें समर्थ नहीं हैं।"—ऐसा विचार कर चाहे तुम यहांसे प्रस्थान करो, चाहे इसी स्थानमें निवास करो। ब्राह्मणका ऐसा बचन सुनके कर्ण अत्यन्त दीनताके सहित नीचा शिर करके उस ब्राह्मणके आश्रमसे बाहर हुए और विप्रशापसे भय भीत होकर चिन्ता करते हुए उन्होंने परशुराम जीके निकट गमन किया।

२ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ तपस्वी परशुरामजी एकाग्रचित्तसे कर्णके बाहुबीर्य्य, शिक्षानुराग, इन्द्रियसंयम और गुरुशुश्रूषासे अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। अनन्तर उन्होंने

स्थिरताके सहित अस्त्रशस्त्रोंके सम्पूर्ण रहस्यको प्रयोग और निवारण करनेके कौशल सहित सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्रका उपदेश किया। तिसके अनन्तर अद्भुत पराक्रमी कर्ण समस्त अस्त्र शस्त्रोंको जानके प्रसन्नतापूर्व्वक परशुरामके आश्रममें रहके धनुर्वेदमें विशेष परिश्रम करने लगे। किसी समय कर्णके सहित परशुरामजी आश्रमके निकट भ्रमण करते करते उपवासके क्लेशसे थक गये। अनन्तर विश्वासपात्र तथा स्नेह भाजन अपने शिष्य कर्णकी जङ्घापर शिर रखके सोगये। जब परशुरामजी निद्रित हुए तब मांस मूत्र रुधिर तथा पुरीष भोजन करनेवाला एक भयङ्कर कीड़ा कर्णके समीप आके रुधिर पीनेकी इच्छासे उनके जङ्घेको छेद कर लोहू पीने लगा; कर्ण गुरुके भयसे न तो उसे दूर फेंक सके और न उसका बध कर सके। हे राजेन्द्र! कर्णने केवल परशुरामकी निद्रा-भङ्ग होनेकी शङ्का करके अपने घावकी पीड़ाको धीरज धरके सहन किया और तनिक भी विचलित न होकर परशुरामजीके शिरको अपने जङ्घेके ऊपर धारण किया। जब कर्णके जांघके घावसे रुधिर बहके महातेजस्वी परशुरामजीके शरीरमें लगा, तब वह निद्रासे जागके उठे और कर्णसे बोले, कि तुमने यह क्या किया? हाय! मेरा शरीर इस समय अपवित्र होगया! जो हो, अब तुम भय त्यागकर इसका यथार्थ कारण मुझसे वर्णन करो? अनन्तर कर्णने जिस प्रकार वह कीड़ा जङ्घाको छेदकर मांस रुधिरके बीच प्रविष्ट हुआ था, वह वृत्तान्त परशुरामजीको सुना दिया। इसके अनन्तर परशुरामजीने देखा, आठ पांव और तीक्ष्ण दांतोंसे युक्त सुईके समान, रुवोंसे पूरित पांवसे सिकुड़ा हुआ सूकरके समान आकृतिवाला अलर्क नाम एक कीड़ा कर्णके घावके भीतर स्थित है। उसने परशुरामके दृष्टिमात्रसे ही विकल होके उस रुधिरमें ही फंसके प्राण त्याग किया; उस समय उसकी मृत्यु अद्भुत रूपसे दीख पड़ी। उसके अनन्तर आकाशमें मेघमण्डलके बीच काला स्वरूप, लाल गर्दन और भयङ्कर मूर्त्तिवाला एक राक्षस दीख पड़ा। वह सफल मनोरथ होकर हाथ जोड़के परशुरामसे यह वचन बोला, हे भृगुकुल भूषण परशुराम! आपका कल्याण होवे इस समय अब मैं अपने योग्य स्थानपर गमन करूंगा। हे मुनिसत्तम! आपने मुझे इस नरकसे मुक्त करके मेरा बहुत ही प्रियकार्य्य किया है, मैं आपको प्रणाम करता हूं।"

महाबाहु प्रतापी जमदग्निपुत्र परशुरामने उसका ऐसा वचन सुनके उससे पूछा, कि "तुम कौन हो और किस कारणसे नरकमें पड़े थे"? यह समाचार मेरे समीप वर्णन करो। वह कहने लगा, हे तात! सतयुगमें मैं दंश नामक एक महा राक्षस था; मेरी अवस्था तुम्हारे पूर्वपितामह महर्षि भृगुके समान होती थी। अनन्तर मैंने महर्षि भृगुकी प्यारी स्त्रीको बलपूर्व्वक हरण किया, इसीसे महात्मा भृगुके शापसे कीड़ा होकर पृथ्वीमें गिर पड़ा। हे परशुराम! अनन्तर तुम्हारे पितामह महर्षि भृगु क्रोधित होकर मुझसे यह वचन बोले, अरे पापी! "तू महाघोर नरकमें पड़के सदा मलमूत्र रुधिर और मांसभक्षी होगा।" उनका ऐसा दारुण वचन सुनके मैंने उनसे कहा, हे ब्राह्मण! कितने दिनोंमें मैं तुम्हारे इस शापसे मुक्त होऊंगा? मेरे वचनको सुनके भगवान् भृगु मुनि बोले, कि "मेरे कुलमें राम नामक जो महात्मा पुरुष उत्पन्न होगा, उसके दर्शनसे तूं शापसे छूटेगा।" हे राम! इस ही कारणसे मैं दुष्टात्मा लोगोंकी भांति इस नीच गतिको प्राप्त हुआ था; अब आपके दर्शनसे इस पापयोनिसे मुक्त हुआ हूं। वह राक्षस परशुरामजीके निकट अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त इसी भांति वर्णन कर उन्हें प्रणाम करके अपने स्थानपर

गया। अनन्तर परशुराम जी क्रुद्ध होके कर्णसे बोले, अरे मूढ़! तेरा धीरज देखके मुझे बोध होता है; कि तू क्षत्रिय है, क्योंकि ब्राह्मण जाति कभी भी बहुत कष्ट नहीं सह सक्ती; इससे तू निर्भय होके अपना सत्य वृतान्त वर्णन कर।

अनन्तर कर्ण शाप भयसे डरके गुरुको प्रसन्न करनेकी अभिलाषासे यह वचन बोले, हे भार्गव! ब्राह्मण और क्षत्रियके मेलसे सूत जाति प्रकट भई है; मुझे भी आप उस ही सूत कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष समझिये; क्योंकि इस ही कारणसे सब कोई मुझे राधापुत्र कर्ण कहके आवाहन करते हैं। हे ब्राह्मण! आप मुझ अस्त्रलोभी पुरुषके ऊपर प्रसन्न होइये। वेद और विद्या देनवाले, गुरु जो पिता कहके वर्णन किये गये हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है; इस ही कारणसे मैंने आपके निकट भार्गव गोत्रीय ब्राह्मण कहके अपना परिचय दिया था। भृगुवंशिय श्रेष्ठ परशुराम जी कर्णके ऐसे वचनको सुनके अन्तःकरणसे क्रोधित हुए परन्तु बाहरी भावसे हंसके उस पृथ्वीमें गिरे, भयसे कांपते, दोनों हाथ जोड़े तथा अत्यन्त दीनभावसे युक्त कर्णसे यह वचन बोले। अरे मूढ़! तूने जब अस्त्रलोभसे मेरे समीप मिथ्या व्यवहार किया है, तब तेरा सीखा हुआ सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र तुझे अन्तकालमें भूल जायगा; परन्तु जबतक तू अपने समान वीर योद्धाके सङ्ग रणभूमिमें युद्ध करते हुए विपद-ग्रस्त नहीं होगा, उस मृत्युकालके अति-रिक्त ये सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र तुझे स्मरण रहेंगे; क्योंकि ब्रह्मास्त्र ब्राह्मणके सिवा अन्य किसी जातिके पुरुषोंको मृत्युके समय स्मरण नहीं रहता, तौभी इस पृथ्वीके बीच कोई क्षत्रिय तेरे समान शूरवीर योद्धा नहीं होगा। इस समय अब तुम इस स्थानसे गमन करो, क्योंकि मिथ्या व्यवहार करनेवाले पुरुष इस स्थानमें रहने योग्य नहीं हैं। कर्ण परशुरामजीके ऐसे न्याय युक्त वचनको सुनके वहांसे विदा हो दुर्य्योधनके समीप गमन करके उनसे यह वचन बोले, "हे महाराज! अब मैं कृतास्त्र होके आया हूं।

३ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! इसी भांति कर्ण भृगुकुल भूषण परशुराम जीके निकटसे अस्त्र विद्या सीखनेके अनन्तर दुर्य्योधनके सङ्ग मिलके परम आनन्दसे अपने जीवनका समय व्यतीत करने लगे। किसी समयमें पृथ्वीके सैकड़ों राजा कलिङ्ग देशमें राजा चित्राङ्गदकी राजधानी सौभाग्ययुक्त "राजपुर" नाम नगरीमें स्वयम्वर सभाके बीचमें कन्या प्राप्त करनेकी अभिलाषासे इकट्ठे हुए थे, राजा दुर्य्योधन भी स्वयम्वरका वृतान्त सुनके कर्णको सङ्ग लेकर सुवर्णभूषित रथपै बैठ कर राजाओंकी मण्डलीके बीच उपस्थित हुए। अन-न्तर उस स्वयम्वरके महोत्सवको सुनके महा-राज जरासन्ध, शिशुपाल भीष्मक, वक्र, कपोत-रोमा नील, दृढ़ पराक्रमी रुक्मी, स्त्रीराज्यके स्वामी महाराज सृगाल, शतधन्वा, अशोक, वीरनामा, भोजराज और इनके अति रिक्त दक्षिण, पूर्व्व और उत्तर देशीय बहुतेरे म्लेच्छाचारी राजा लोग कन्या प्राप्त होनेकी इच्छासे उस स्वयम्वरके बीच उपस्थित हुए। वे सम्पूर्ण राजा लोग सुवर्णभूषित कवच और तपाये हुए जाम्बुनद सोनेके समान प्रकाशमान शरीरसे युक्त तथा सिंहके समान बलवान् थे, इसी भांति जब सम्पूर्ण राजा राज सभामें बैठ गये, तब राजकन्या सहेली और नपुंसकोंको सङ्ग लेकर रङ्गभूमि तथा स्वयम्वरकी सभामें प्रविष्ट हुई। तिसके अनन्तर राजाओंके नाम, गोत्र तथा वंशका वृतान्त दासियोंके मुखसे

सुनती हुई वह राजकन्या अन्य राजाओंकी भांति राजा दुर्य्योधनको भी अतिक्रम करके आगे बढ़ी, कुरुनन्दन दुर्य्योधनसे यह अपमान नहीं सहा गया, अनन्तर उन्होंने सम्पूर्ण राजाओंको असम्मानित करके उस राजकन्याको आगे बढ़नेसे निषेध किया और भीष्म तथा द्रोणाचार्य्यके आसरे तथा अपने बलके घमण्डसे उस राजकन्याको रथमें बैठा कर वहांसे प्रस्थान किया। अस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी कर्ण कवच और अङ्गुलित्राणसे युक्त हो तलवार आदि अस्त्रशस्त्रोंको धारण करके रथ पर चढ़ कर दुर्य्योधनके पीछे पीछे गमन करने लगे, उसे देखकर राजाओंको मण्डलोंके बीच महाघोर कोलाहल होने लगा। अनन्तर वे सम्पूर्ण राजा लोग कवच पहरके तथा अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण कर रथ पर चढ़के कर्ण और दुर्य्योधनके ऊपर इस भांति अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए उनकी ओर दौड़े जैसे बादल दो पर्व्वतोंके ऊपर जलकी वर्षा करते हैं। जब इस भांतिसे सम्पूर्ण राजा लोग सम्मुख उपस्थित हुए, तब पराक्रमी कर्णने एक एक बाणसे उन सम्पूर्ण राजाओंके धनुष बाणको काट काट पृथ्वीमें गिरा दिया। उस समय कोई कोई धनुष चढ़ाके तथा कोई कोई राजा गदा आदि अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके कर्णके सम्मुख उपस्थित हुए परन्तु योद्धाओंमें मुख्य कर्णने अपने हस्त लाघवसे बाण चला कर समस्त राजाओंको व्याकुल कर दिया, तथा कितनोंको धनुष रहित और कितनोंके सारथीका प्राण नाश करके उन सम्पूर्ण राजाओंको पराजित किया, उस समय सम्पूर्ण राजाओंका मनोरथ निष्फल होगया और वे लोग पराजित होकर स्वयं अपने रथके घोड़ोंका हांकते तथा कितने ही राजा अपने सारथियोंको "चलो! पीछे लौटो!„ ऐसा वचन कहते हुए रणभूमि छोड़कर भागने लगे।

नारद मुनि बोले, हे महाराज युधिष्ठिर! उस समय राजा दुर्य्योधन इसी भांति कर्णके भुजबलसे रक्षित होकर कन्या ग्रहण करके हर्षयुक्त तथा आनन्दित चित्तसे हस्तिनापुरमें आ विराजे।

४ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, मगधदेशके राजा पराक्रमी जरासन्धने कर्णके बल-पराक्रमका वृतान्त सुनके उन्हें द्वैरथ युद्धके वास्ते आह्वान किया। अनन्तर परम अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले वे दोनों वीर नाना भांतिके अस्त्र शस्त्रोंको चलाते हुए महाघोर युद्ध करने लगे। धीरे धीरे कुछ उन दोनों वीरोंके धनुष कट गये और तूणीर बाणोंसे रहित हुए तथा तलवार आदिक अस्त्र टूट गये, तब वे दोनों वीर रथसे उतरके आपसमें मल्लयुद्ध करने लगे। अनन्तर पराक्रमी कर्णने बाहुयुद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए जरासन्धके जरा राक्षसीके जोड़े हुए सन्धिस्थलको छिन्न किया, तब जरासन्ध अपने शरीरका विकृत भाव देखकर शत्रुता त्यागके कर्णसे यह वचन बोले, "हे कर्ण! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं।" अनन्तर उस ही प्रसन्नताके कारण जरासन्धने कर्णको मालिनी नाम्नी नगरी दान किया। हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! शत्रुनाशन कर्ण पहिले केवल अङ्गदेशहीके राजा थे, तिसके अनन्तर जरासन्धकी दी हुई चम्पा अर्थात् मालिनी नगरीको भी दुर्य्योधनकी अनुमतिसे पालन करने लगे, वह सब वृत्तान्त तुमसे कुछ भी छिपा नहीं है। महा बलवान तेजस्वी कर्ण केवल इसी भांति शस्त्र बलके प्रभावसे पृथ्वीके बीच विख्यात हुए थे, शेषमें देवराज इन्द्रने तुम्हारे हितकी अभिलाषासे कर्णके निकट जाके उनके शरीरसे ही उत्पन्न हुए अभेद कवच और कुण्डलका दान मांगा; उस समय कर्णने दैवी माया

से मोहित होकर अपने शरीरसे उत्पन्न हुए उस अभेद कवच कुण्डलको देवराज इन्द्रको दे दिया था। महाराज! वह गर्भसे ही उत्पन्न हुए अपने शरीरके अभेदकवच और कुण्डलको दान करके ठगे गये थे; इसही कारण युद्धभूमि में श्रीकृष्णके सम्मुख अर्जुनके हाथसे मारे गये। तौभी देखिये कि महात्मा परशुराम और होमकी गऊके प्राण नाश होनेसे ब्राह्मणके शाप, कुन्तीके वरदान, इन्द्रकी मायाकौशल, सभाके बीच भीष्मके अर्द्धरथी कहके पुकारे जानेका अपमान, शल्यके कठोर वचनोंसे तेज-हानि, और श्रीकृष्णचन्द्रके नीतिबल, वा उपायके एकत्र मिलित होनेसे तथा गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनने रुद्र, देवराज इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, महात्मा द्रोणाचार्य्यके निकटसे सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रशस्त्रोंको प्राप्त किया था; इसं ही कारण सूर्य्यके समान तेजस्वी सूर्य्य पुत्र कर्ण मारे गये हैं महाराज! तुम्हारे भ्राता पुरुषसिंह कर्ण इसी प्रकार महात्माओंके शापसे युक्त और वञ्चित हुए थे; तौ भी सम्मुख संग्राममें मारे गये; इससे उसके वास्ते अब आप शोक न कीजिये।

५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायनमुनि बोले, देवऋषि नारद इतनी कथा सुनाके चुप होगये। अनन्तर राज-ऋषि युधिष्ठिर अत्यन्तही शोक और चिन्तासे मोहित होकर दुःखित चित्तसे बार बार सर्पकी भांति लम्बी स्वांस छोड़ते हुए आंखोंसे आंसू बहाने लगे। राजा युधिष्ठिरकी ऐसी दशा देखके शोक और दुःखसे विह्वल होकर कुन्ती देवी उस समयके अनुसार यह अर्थ-युक्त वचन बोली, हेतात युधिष्ठिर! तुम महा बुद्धिमान और वीर पुरुष हो; इससे तुम्हें इस भांतिसे शोकित होना उचित नहीं है; तुम शोक त्यागके मेरा वचन चित्त लगाके सुनो। तुम कर्णके भ्राता हो,—यह वृत्तान्त कर्णको विदित करानेके वास्ते पहिले कर्णके पिता भगवान सूर्य्यदेव और मैंने बहुत ही यत्न किया, अधिक क्या कहूं, तुम्हारे सङ्ग मेल करानेके वास्ते हम दोनोंने कर्णसे अत्यन्त ही बिनती करी थी; विशेष करके भगवान सूर्य्यने कर्णके हितको अभिलाष करके जो कुछ वचन कहना उचित था, वह स्वप्नमें तथा मेरे सम्मुखमें कहे थे; परन्तु प्रीति प्रेम तथा नाना कारण दिखाके भी हम दोनों किसी भांति कृतकार्य्य न होसके। वह कालके वशमें होकर सदा तुम लोगोंके सङ्ग शत्रुता चरण करनेमें प्रवृत्त था, इससे मैंने भी उसके पराक्रमको देखनेकी इच्छासे उसके विषयका वृत्तान्त तुम्हारे समीप नहीं वर्णन किया। राजा युधिष्ठिर कुन्तीके वचनको सुन कर आंखोंमें आंसू भरके यह वचन बोले,—हे माता! तुमने जो इस विषयको छिपा रक्खा, इसी निमित्त इस समय मुझे इतना दुःख तथा शोक हुआ है। ऐसा वचन कहते कहते महा तेजस्वी राजा युधिष्ठिरने अत्यन्त ही दुःखित हो कर यह वचन कहके सम्पूर्ण स्त्रियोंको शाप दिया, कि, "आजसे कोई स्त्री भी गूढ़ बिचारको छिपानेमें समर्थ न होंगी" अनन्तर बुद्धिमान राजा युधिष्ठिर पुत्र, पौत्र, सम्बन्धी तथा इष्ट मित्रोंकी मृत्युको स्मरण करके अत्यन्त ही व्याकुल हुए; वह धीरे धीरे शोक तथा दुःखसे अत्यन्त ही विकल होके धूएंसे व्याप्त अग्निकी भांति मन मलिन चित्त होकर बहुत चिन्ता करने लगे।

६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर महारथी कर्णको स्मरण करके शोक तथा दुःखसे व्याकुल होकर अत्यन्त ही चिन्ता

करने लगी। वह बार बार दुःख और शोकसे पीड़ित होकर लम्बी सांस छोड़ते हुए अर्जुनको सम्मुख देखकर यह वचन बोले,—हे अर्जुन ! यदि हम लोग इसके पहिले वृष्णि और अन्धक प्रदेशमें जाके भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके अपनी जीविकाका निर्व्वाह करते तो जातिके पुरुषोंका नाश न होता ; और न हम लोगोंको ऐसी दुर्गति ही होती। हम लोगोंके शत्रु कौरव लोग ही इस समय अधिक ऐश्वर्य्यवान हुए हैं, क्यों कि वे लोग क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार सम्मुख संग्राममें मरके स्वर्ग लोकमें गये हैं ; और जातिके लोगोंका वध करनेसे हम लोगोंका बल पुरुषार्थ घटगया है ; क्यों कि जो पुरुष स्वयं अपना नाश करते हैं, उन्हें धर्म्म-लाभकी कौनसी सम्भावना है ? इससे क्षत्रियोंके आचार, बल और पुरुषार्थको धिक्कार है ! और क्रोधको भी धिक्कार है, जिसके कारणसे हम लोगोंको इस भांति विपदग्रस्त होना पड़ा। इस समय मुझे यह खूबही निश्चय हुआ है, कि क्षमा इन्द्रियसंयम, पवित्रता, बैराग्य, स्तेय, अहिंसा और सत्य वचन आदि बनवासी ऋषि मुनियोंके व्यवहार ही उत्तम हैं; हम लोग केवल लोभ और मोहके वशमें होकर राज्य लोभकी लालसा तथा दम्भ और अभिमानके वशमें होकर ही ऐसी दशाको प्राप्त भये हैं। पृथ्वीके विजयकी अभिलाष करनेवाले बन्धुबान्धवोंको मरे हुए देखकर हम लोगोंका चित्त जैसा दुःखित हुआ है, उससे ऐसा बोध होता है, कि कोई तीनो लोकोंका राज्य देकर भी हम लोगोंका सन्तुष्ट नहीं कर सकता है। हम लोग राज्यके वास्ते पृथ्वीको तरह न त्यागने योग्य अवध्य स्वजनोंको मारकर भी इस समय जीवित हैं, मांसके लोभसे आपसमें लड़नेवाले कुत्तोंके समूहकी भांति राज्य लोभसे स्वजनोंका नाश करके हमको इस प्रकार अमङ्गल प्राप्त हुआ है ; इससे अब इस समय इस राज्यरूपी मांसको ग्रहण करनेमें हमारी अभिलाषा नहीं होती है ; जो इसको त्यागनाही उत्तम है ; क्यों कि इस युद्धमें जो लोग मारे गये हैं, वे लोग सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्य, सुवर्णके ढेर अथवा गऊ, घोड़े आदि समस्त वस्तुओंके वास्ते भी वध करनेके योग्य नहीं थे। परन्तु वे सब लोग कामना दुःख क्रोध तथा हर्षसे आत्माको युक्तकर मृत्युरूपी विमान पर चढ़के यमलोकको गये हैं। पिता सत्य, तितिक्षा और ब्रह्मचर्य्य आदि तपस्याओंके अनुष्ठानसे कल्याण भाजन पुत्रकी इच्छा करता है; इसी भांति माता भी उपवास, यज्ञ और ब्रतादि नाना भांतिके माङ्गलिक कार्य्योंके अनुष्ठानसे गर्भिणी होकर दश महीने तक उस गर्भको धारण करती है। अनन्तर "क्या यह सन्तान कुशलसे जन्मेगी ? क्या यह उत्पन्न होके जीवित रहेगी ? क्या यह बलयुक्त और सर्व्वत्र सम्मानित होकर हमारे सुखका विधान करेगी ?" मातायें इस जन्म और दूसरे जन्मके निमित्त (पुत्रके विषयमें) इसी भांति फल पानेकी आशा करती हुई सदा कातर रहती हैं। हाय ! हम लोगोंके मरे हुए स्वजन तथा बान्धवोंकी माताओंके ये सम्पूर्ण मनोरथ अब निष्फल होगये ; क्यों कि उन लोगोंके सुन्दर कुण्डलोंसे शोभित युवा पुत्र राज्यादि बिना भोगेही युद्धभूमिमें मरकर यमलोकको चलेगये ! इन सम्पूर्ण राजाओंके पिता माताओंने जिस समय उनके बल वीर्य्य और प्रभावके फल देखनेकी आशा की थी, उसही समय वे मारे गये। परन्तु वे सब सदा सर्व्वदा अनेक भांतिकी वासना तथा मनुष्योंसे युक्त और बहुत क्रोध तथा हर्षके वशमें रहनेके कारण किसी समयमें भी कदाचित मनुष्य जन्मके शुभ फलोंको न भोग सकेंगे ; इससे मेरे विचारमें कौरव और पाञ्चालोंमेंसे जो लोग युद्धमें मारे गये हैं, उनके नाम सदाके वास्ते सम्पूर्ण रूपसे नष्ट होगये हैं ;

क्योंकि वैसे क्रोध और दाहके वशवर्ती पुरुष भी यदि शुभ लोकोंमें गमन करें, तो क्रोध मन्युसे युक्त आत्मावाला वधिक भी अपने जीवका नाश आदि कार्य्य करके शुभ लोकमें गमन कर सकते हैं! जो हो हम ही इन सम्पूर्ण प्राणियोंके नाशके मूल हैं; अथवा धृतराष्ट्र पुत्रोंके ऊपर यह समस्त दोष आरोपित किया जा सकता है।

दुर्य्योधन सदा कपट-बुद्धि, द्वेषी और मायाजीवी था; हमारे निरपराध रहनेपर भी वह सदा हमसे असत् व्यवहार करता था, परन्तु क्या दुर्य्योधन और क्या हम कोई भी अपने पूर्ण मनोरथको सिद्ध नहीं कर सके! इससे इस युद्धमें दोनों ओरकी पराजयका होना ही स्वीकार करना पड़ेगा। दुर्य्योधन पहिले हम लोगोंके विशाल-ऐश्वर्य्यको देखकर पृथ्वीके राज्य, स्त्री, गीत-वाद्यका आनन्द सुख तथा अनगिनत रत्न, सम्पत्ति और अनेक भांतिके वस्तुओंसे सज्जित कोष—इन सम्पूर्ण भोग्य वस्तुओंमेंसे कुछ भी उपभोग करनेमें समर्थ नहीं हुआ। उस समय उसने दोषदर्शी मन्त्री और सुहृद-पुरुष आदि किसीके वचनको भी नहीं सुना; हमसे सदा द्वेष रखनेके कारण चित्तमें जलते रहकर क्रोधके कारण प्रीति तथा सुख आदिको एकबारगी त्याग किया था। इसी भांति राजा धृतराष्ट्र भी सुबलपुत्र शकुनीके मुखसे हम लोगोंकी सम्पत्तिका समस्त वृत्तान्त सुनकर दुःखसे पीले तथा दुबले होगये थे, वह पुत्र-स्नेहके कारण महाबुद्धिमान पितामह भीष्म और विदुरके वचनका अनादर करके "दुर्य्योधन न्याय युक्त कार्य्यही कर रहा है,—" ऐसाही समझते थे और उस लोभी अशुचि और कामके वशवर्त्ती अपने पुत्रको नियममें स्थित न करके ही मेरी भांति क्षयकी दशाको प्राप्त हुए हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। परन्तु सदा पाप बुद्धिवाला दुर्य्योधन हमसे द्वेष रखनेके कारण चित्तमें जलकर युद्ध उपस्थित करके रणभूमिके बीच शत्रुके हाथसे अपने सहोदर भाइयोंका नाश कराके अपने बूढ़े माता पिताको शोकाग्निमें डालकर यश रहित हुआ है। दुर्य्योधनने युद्धकी इच्छाकर श्रीकृष्णके समीप हम लोगोंके विषयमें जैसे वचनोंका प्रयोग किया था, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा स्वजन होकर कौन पुरुष अपने कुटुम्ब तथा बन्धुबान्धवोंके विषयमें वैसे नीच वचनोंको कहेगा? सूर्य्य जैसे अपने प्रभावसे समस्त दिशाओंको जला देते हैं, वैसे ही हम भी युद्धमें स्वजन और बन्धुओंको नष्ट करके अपने दोषके कारणसेही सदाके वास्ते सम्पूर्ण रूपसे नष्ट हुए। वह शत्रु नीचबुद्धि दुर्य्योधन हम लोगोंके निमित्त पूरा ग्रहरूप बना था, उसहीके वास्ते हमारे समस्त कुलका नाश हुआ! परन्तु हम लोग अवध्य पुरुषोंका वधकरके इस समय साधारण पुरुषोंके बीच निन्दनीय हुए हैं। राजा धृतराष्ट्रने उस नीचबुद्धि पापी कुलनाशी दुर्य्योधनको राज्यका स्वामी बनाया था, इस ही कारण इस समय उनको शोक करना पड़ता है। हाय! इस युद्धमें सम्पूर्ण शूरवीर पुरुष मारे गये, धन भी चुक गया और हम लोग भी पापभागी हुए हैं। शत्रुओंको मारके हम लोगोंका क्रोध शान्त हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है; परन्तु शोक केवल मुझे ही मोहित कर रहा है। हे अर्जुन! शास्त्रमें ऐसा वर्णित है, कि मनुष्यके दुष्कर्म्म मनुष्य समाजमें प्रकाश करनेसे अनुताप, दान, तपस्या, नाना भांतिके मांगलिक कर्म्मोंके अनुष्ठानसे अथवा वैभवको त्यागके तीर्थयात्रा श्रुति स्मृतिआदिके पाठ और जपसे घट सकते हैं; उनमेंसे सम्पूर्ण भाग्यमान पुरुष फिर पापमें लिप्त नहीं होते यह श्रुति-सम्मत वचन है। वेदमें ऐसा वर्णित है, सन्यासी जन्म मरणसे रहित होकर ज्ञान-रूपी दीपकके सहारे यथार्थ मार्ग पाकर ब्रह्म

लोककी जाते हैं ; इससे हे शत्रुको तपानेवाले अर्जुन ! मैं तुम सब लोगोंकी सम्मति लेकर सुखदुःखको त्याग और मौनावलम्बन करके ज्ञानपथको आश्रय करके बनवासी बनूंगा। यह स्पष्टरूपसे वेदमें कहा है कि दान लेनेवाले पुरुष कदाचित सार धर्म्मको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होसकते, और मैंने भी उसे खूब निश्चय करके प्रत्यक्ष देख लिया है। इससे आसक्ति युक्त पुरुष वेदमें कहे हुए जन्म मरणके कारणरूपी जिस प्रकार पापाचार करते हैं; मैंने भी राज्य भोगकी अभिलाषासे युक्त होकर वैसा ही पापाचरण किया है ; इससे इस समय मैं समस्त परिग्रह और राज्यभोग परित्याग करके ममताशून्य, शोकरहित और संगादिसे मुक्त होकर किसी बनके बीच गमन करूंगा। हे कुरुसत्तम, शत्रुसूदन अर्जुन ! इस समय तुम ही इस निष्कण्टक और कल्याणयुक्त समस्त भूमण्डल तथा पृथ्वीका राज्य करो, मुझे अब धन, राज्य तथा भोग आदि किसी भी वस्तुका प्रयोजन नहीं है। धर्म्मराज युधिष्ठिरके इतना बचन कहके चुप होने पर छोटे भाई अर्जुनने इस प्रकार उत्तर दिया।

७ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय ! जैसे कोई पुरुष किसीसे अपमानित होके सहनेको समर्थ नहीं होता, वैसे ही महापराक्रमी बोलनेवालोंमें मुख्य महातेजस्वी अर्जुन युधिष्ठिरका बचन सुनके न सह सके, और अपना उग्रभाव दिखाके ओठ काटते हुए गर्व्वपूर्व्वक इस प्रकारसे नीतियुक्त बचन कहने लगे। ओहो कैसा दुःख, कैसा कष्ट और क्या ही अद्भुत कातरता है, कि आप अमानुषी कार्य्य पूर्ण और अतुल ऐश्वर्य्य प्राप्त करके भी उसे परित्याग करनेमें प्रवृत्त होरहे हैं। धर्म्मराज ! आप सम्पूर्ण शत्रुओंको नाश करके क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार पृथ्वी हस्तगत करके भी इस समय क्यों बुद्धि-लाघवके कारण यह सब त्यागनेकी इच्छा करते हैं ? इस संसारके बीच क्लीव वा दीर्घसूत्री किसी समयमें भी राज्य भोग नहीं कर सक्ता। परन्तु यदि आपकी इसी भांति त्याग धर्म्मकी इच्छा थी, तो क्यों क्रुद्ध होकर सम्पूर्ण राजाओंको मारा ? जो पुरुष भिक्षावृत्तिसे जीविका निर्व्वाह करनेकी इच्छा करता है, वह कदापि पुत्र, कलत्र और पशु आदि सामग्रीको पाने तथा लोकसमाजमें विख्यात होनेमें समर्थ नहीं होता, क्यों कि अकल्याणके पात्र दरिद्र मनुष्य किसी कर्म्मसे भी ऐश्वर्य्य भोग करनेमें समर्थ नहीं होते। महाराज ! आप यदि इस समृद्ध राज्यको त्यागके पापयुक्त कापालिका-वृत्तिको अवलम्बन करके जीवन धारण करेंगे, तो लोकसमाज आपको क्या कहैगा ! आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी होकर यह सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य त्यागके कल्याण रहित दरिद्र और साधारण पुरुषकी भांति क्यों भिक्षावृत्ति अवलम्बन करनेकी इच्छा करते हैं ? आप राजकुलमें जन्म लेकर बाहुबलसे समस्त पृथ्वीका पराजित करके भी केवल मूर्खताके कारण धर्म्म और अर्थ त्यागकर बनमें गमन करनेके वास्ते तय्यार हुए हैं ! और आप यथार्थ अधिकारी होकर भी राज्य त्यागके बनमें चले जायेंगे, तब दुष्ट लोग राजा रहित पृथ्वीको सूनी पाकर हव्य कव्य आदि सुकृतकर्म्मोंको लोप करेंगे, उससे आपको ही पापभागी होना पड़ेगा। राजा नहुषने निर्द्धनावस्थामें स्वयं नीचताके कार्य्योंको करके निर्द्धनताको धिक्कार देकर मुनियोंके कर्त्तव्य कर्म्मको तुच्छ कहके वर्णन किया है ! और अगाड़ीके वास्ते कुछ भी वस्तु सञ्चय करके न रखना, यह ऋषियोंका धर्म्म है, वह आपको भी विदित है। इससे पण्डितोंने, जिसे राजधर्म्म कहके

वर्णन किया है, और वह धनसे ही सिद्ध होता है।

हे महाराज! इस संसारके बीच जो पुरुष किसीके धनको हरण करता है, वह उसके धर्मको भी हर लेता है; इससे जो धन इस प्रकार धर्मको सिद्ध करनेवाला है, उसे यदि कोई हरण करे, तो क्या हम लोग क्षमा-कर सक्ते हैं? इस लोकके बीच दरिद्रता अत्यन्त ही पाप जनक है, दरिद्र पुरुष समीप रहनेपर मनुष्य उसे मिथ्या अपवादोंसे दूषित करते रहते हैं; इससे आपको इस प्रकार दरिद्रताको प्रशंसा करनी उचित नहीं है। इस पृथ्वीपर पतित और निर्धन दोनोंको ही शोक करना पड़ता है; इससे नीच और निर्धन पुरुषोंमें कुछ विशेषता नहीं बोध होती। जैसे सम्पूर्ण नदियां पहाड़ोंसे निकल कर धीरे धीरे विस्तृत होती हैं, वैसे ही बहुतसे धन सब कर्म क्रमसे सिद्ध होते हैं। महाराज! धनके विना इस पृथ्वीके बीच मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम वा स्वर्ग-गमन और प्राण-यात्राका भी निर्व्वाह नहीं हो सक्ता। जैसे ग्रीष्मकालमें छोटी छोटी नदियां सूख जाती हैं, वैसे ही इस लोकमें धनसे हीन अल्प बुद्धि मनुष्योंके सम्पूर्ण कार्य्य नष्ट होजाते हैं। इस जगत्‌के बीच जिसके धन है, उसीके मित्र और बान्धव हैं, जिसके धन है, वही पण्डित है, जिसके धन है, वही पुरुष है। निर्द्धन मनुष्य यदि किसी विषयको अभिलाषा करके उसके सिद्ध करनेका उपाय करे तो कदापि वह सिद्ध नहीं होते। परन्तु जैसा महा बलवान हाथीसे अन्य हाथियोंको पकड़ लेते हैं, वैसे ही धनसे समस्त प्रयोजन सिद्ध हो सकते हैं।

महाराज! धर्म, बहुदर्शिता, धृति, हर्ष कामना, क्रोध ममता ये सब ही धनसे सिद्ध होसकते हैं। धनसे ही लोगोंके कुल गौरव और धर्मकी वृद्धि होती है। निर्धन पुरु-षको यह लोक और परलोक कोई भी सुखदायक नहीं होता। जैसे पहाड़से नदी प्रकट होती हैं, वैसे ही धनसे धर्म उत्पन्न होता है। हे राजन्! मनुष्यका शरीर कृश होनेसे ही उसे दुर्ब्बल नहीं कहा जा सकता; जिसके घोड़े गज पशु तथा सेवकोंको अल्पता होती है, और जिसके गृहमें अतिथि नहीं उपस्थित होते, उसे ही कृश कहा जा सकता है। महाराज आप न्यायपूर्व्वक देवासुर संग्रामका विषय विचार करके देखिये देवता लोग ज्ञातिवधके अतिरिक्त सम्पत्ति प्राप्त करनेकी कौनसी अभिलाषा करते हैं? और यदि दूसरेका धन लेना, यह धर्म आपके विचारमें उत्तम नहीं है; तो भला कहिये तो सही, राजा लोग किस प्रकारसे धर्मका अनुष्ठान कर सकेंगे? क्यों कि पर-धनके अतिरिक्त अपना धन राजाओंके पास कुछ भी नहीं हैं; और वेदमें भी पण्डितोंने "प्रति दिन साम आदि तीनों वेदोंके अध्ययन, ज्ञान उपार्ज्जन और यत्न पूर्व्वक धन प्राप्त करके यज्ञ करना उचित है," ऐसीही विधि निश्चयकी है। जब कि देवता लोग भी ज्ञातिविद्रोहकी अभिलाषा करते हैं, तब ज्ञाति विरोधके विना कौनसी वस्तु प्राप्त हो सकती है? और देवताओंने विद्रोहितासे ही स्वर्गलोक प्राप्त किये हैं, इससे देवता लोग भी इसी भांति व्यवहार करते हैं और वेदमें भी कहा हुआ है, कि राजा लोग अन्य पुरुषोंसे निकटसे जो धन प्राप्त करते हैं, उस ही धनसे उनका कल्याण होता है; क्यों कि पढ़ना, पढ़ाना, दान लेना, और देना ये सम्पूर्ण कर्म धनसे ही सिद्ध होसक्ते हैं; इसमें यदि दोष समझा जावे, तो कहीं भी ऐसा कोई अर्थ नहीं दीख पड़ता जो दूसरे पुरुषोंके अनिष्टके विना ही संग्रह किया जा सकता होवे! जैसे पुत्र पिताके धनको अपना समझता है, वैसे ही वे लोग भी युद्ध जीतके जो धन पाते हैं, उसे अपना ही

समझते हैं; और स्वर्गीय राजर्षियोंने राजधर्म्मके विषयमें ऐसा ही वर्णन किया है।

जैसे समुद्रसे बहुतसा जल सूर्य्यतेजसे आकाशमें आकर दशों दिशाओंमें व्याप्त होता है, वैसे ही सम्पूर्ण धन राजकुलसे निकलकर पृथ्वीका पालन कार्य्य सिद्ध करता है। देखिये यह पृथ्वी पहिले दिलीप, नृग, नहुष अम्बरीष और मान्धाता आदि राजाओंके अधिकारमें थी, इस समय आपके हस्तगत हुई है। इससे आप अनेक सामग्री और सर्व्व-दक्षिणासे पूरित यज्ञोंको अपने मुट्ठीमें प्राप्त समझिये। यदि अब आप यह समस्त सामग्री पाके यज्ञ आदि शुभ कर्म्मोंका अनुष्ठान नहीं करेंगे, तो अवश्य ही आपको राज्यके पापका भार उठाना पड़ेगा। राजा जो प्रजाके धनको लेकर दक्षिणासे युक्त अश्वमेध यज्ञ करता है, वह सम्पन्न होनेसे उसकी सम्पूर्ण प्रजा अवभृत स्नानसे पवित्र होती है। दूसरेकी बात दूर रहे, विश्वमूर्त्ति महादेवने भी स्वयं सर्व्वमेध यज्ञमें समस्त प्राणियोंको और उनके अन्तमें अपने शरीरको भी आहुतिमें प्रदान किया था। हे राजन्! जिस यज्ञमें यजमान पत्नीके सहित स्वयं दीक्षित हो और एक पशु, तीन वेद, चार ऋत्विक,—ये दश स्थित रहें, वह दाशरथ नाम महत् यज्ञका पथ ही नित्य है; उसका फल अविनाशी है, ऐसा ही सुना गया है; इससे आप ऐसे मार्गको त्यागके कुपथमें न जाइये।

८ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे अर्जुन! तुम क्षण भर मन और आत्माको स्थिर कर एकाग्र भावको धारण करो, ऐसा होनेसे मेरे वचनको सुननेके अनन्तर उसमें तुम्हारी रुचि होगी। इस समय मैं ग्राम्यसुख त्यागके साधुओंके गमन करने योग्य मार्गसे गमन करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं, इससे अब तुम्हारे अनुरोधसे विषय मार्गमें नहीं गमन करूंगा। परन्तु एक बारगी गमन करनेमें प्रवृत्त होनेसे इस समय मुझे कौनसा मार्ग कल्याणदायक है? यदि तुम मुझसे ऐसा प्रश्न करो, अथवा तुम्हारी पूछनेकी इच्छा न रहनेसे भी मैं स्वयं कहता हूं सुनो। मैं ग्राम्य-व्यवहारके सम्पूर्ण सुखको परित्याग करके अरण्यवासी और फल मूलाहारी होकर महत् तपस्याका अनुष्ठान करते हुए मृगोंके सङ्ग वनमें भ्रमण करूंगा। मैं वहां निवास करके यथा समय अग्निमें आहुति, प्रातः और सन्ध्याके समय स्नान, मृगछालाका वस्त्र, जटाधारण और परिमित भोजन करके शरीरको कृशित करूंगा; सर्दी, गर्मी, क्षुधा, और प्यास आदि क्लेशोंको सहनेका अभ्यास करते हुए विधि-पूर्व्वक तपस्यासे धीरे धीरे अपने शरीरको सुखा दूंगा; वनवासी मृग और पक्षियोंके मनोहर शब्दको सुनूंगा, सुगन्धित फूलोंका घ्राण लूंगा और स्वाध्यायमें रत वाणप्रस्थ आदि नाना वेषधारी सुन्दर मूर्त्तिवाले वनवासियोंको दर्शन करते हुए निवास करूंगा। मैं अब किसीके अनिष्टाचरणमें नहीं प्रवृत्त होऊंगा; इससे ग्रामवासी मनुष्योंके सङ्ग मेरा अब कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा, उस विषयमें कहनाही क्या है? मैं वहां एकान्त स्थलमें शिलो वृत्ति अवलम्बन करके वनके वृक्षोंके पके तथा बे पके फल, झरनोंके पानी और स्तोत्र आदिसे देवता तथा पितरोंको तृप्त करते हुए समय व्यतीत करूंगा; इसी भांति शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार आरण्यक कठोर व्रतका अनुष्ठान करके शरीर छूटनेके समयकी प्रतीक्षा करूंगा अथवा सिर मुड़ाके प्रति दिन एक एक वृक्षकी नीचे फल मांगके शरीरयात्रा निर्व्वाह करूंगा; और निराश्रय होकर भस्मपूरित शरीरसे चारों ओर पर्य्यटन करूंगा; अथवा सम्पूर्ण प्रिय और

अप्रिय वस्तुओंको परित्याग करके किसी वृक्षके नीचे वनके बीच निवास करूंगा और सम्पूर्ण परिग्रह शून्य और सुखदुःखसे रहित होकर ममता तथा विषय-वासनाको त्याग दूंगा, मैं कदापि शोक और हर्षके वशमें न होऊंगा, स्तुति और निन्दाको समान समझूंगा। मैं अब, कदापि किसीके सङ्ग वार्त्तालाप न करके बाहरी भावसे अन्धे जड़ वा बधिर पुरुषोंकी भांति स्थित होके आत्म-उपासनामें रत रहूंगा। मैं अब जरायुज आदि चार प्रकारके प्राणियोंके बीच किसीको भी हिंसा न करके धार्म्मिक और इन्द्रियपरायण पुरुषोंका समदृष्टिसे अवलोकन करूंगा। किसीको अवज्ञा वा किसीकी ओर टेढ़ी दृष्टिसे नहीं देखूंगा; सदा सर्व्वदा प्रसन्न चित्तसे स्थित होके इन्द्रियोंको संयम करनेमें यत्नवान होऊंगा। मार्गमें गमन करनेके समय किसी दिशा, कोई देश तथा पीछेकी ओर दृष्टि न करके स्थूल और सूक्ष्म शरीरका अभिमान त्यागकर निरपेक्ष होके स्थिर और सरलचित्तसे इच्छापूर्व्वक गमन करूंगा। स्वभाव सम्पूर्ण जीवोंके आगे आगे गमन करता है, इससे आहार आदि स्वाभाविक कार्य्य संस्कार वश ही निर्व्वाहित होंगे; परन्तु मैं ज्ञानके विरोधी उन सुखदुःखोंको कुछ भी चिन्ता न करूंगा। पवित्र भोजन यदि प्रथम गृहमें कुछ भी न मिलेगा, तो दूसरे घर जाऊंगा; वहां भी यदि न मिलेगा तो क्रमसे सात घर घूमकर उदर-पूर्त्ति करूंगा। जिस समय ग्रामवासी समस्त पुरुषोंके ओखली मूसल आदि सबका कार्य्य समाप्त और आग बूझके रसोईका घर धूएंसे रहित होगा और सब गृहस्थ पुरुष भोजन करके निवृत्त होंगे, अधिक क्या कहूं, जिस समय अतिथि और भिक्षुकोंका भी गमनागमन नहीं रहेगा, मैं उसही समयमें आकर दो तीन वा पांच घरमें भिक्षा मांगूंगा, और सम्पूर्ण आशापाशसे मुक्त होकर इस पृथ्वी पर भ्रमण करूंगा हानि और लाभको समान ही समझके वृहत् तपस्यामें रत होऊंगा। जीविताथी वा मुमूर्षु इन दोनोंमेंसे किसीकी भांति व्यवहार नहीं करूंगा मैं जीने और मरनेको समान समझूंगा, किसी विषयमें हर्ष वा विषाद नहीं करूंगा। यदि कोई पुरुष कुठार ग्रहण करके मेरी एक भुजा काट डाले और दूसरा पुरुष दूसरी भुजामें चन्दन लगावे,—तो मैं उन दोनोंके बीच किसीके भी कल्याण और अमङ्गलकी इच्छा नहीं करूंगा। मनुष्य लोग अपनी उन्नतिके वास्ते जिन सम्पूर्ण कार्य्योंका अनुष्ठान करते हैं, मैं उन समस्त कार्योंको त्यागके केवल एक शरीर निर्वाहके योग्य कर्म्म करके समय व्यतीत करूंगा। सर्व्वदा सम्पूर्ण कर्म्मोंमें आसक्ति रहित होकर इन्द्रियोंको वशमें करनेके वास्ते यत्नवान होऊंगा, और सब भांति सङ्कल्प-रहित होकर अपने मनकी मलीनताको दूर करूंगा। संसारके बन्धनोंको तोड़के माया ममतासे हीन होके वायुकी भांति स्वतन्त्र रूपसे पृथ्वीपर भ्रमण करूंगा मैंने अज्ञानसे विषय वासनामें फंस कर बहुत ही पाप किया है, इससे ऐसी विषय-वासनासे आसक्ति रहित होकर ही असीम आनन्द प्राप्त करनेमें समर्थ होगा। कोई कोई मूढ़ पुरुष अनेक भांतिके शुभाशुभ कर्म्मोंका अनुष्ठान करके कई कार्य्य कारणोंसे सम्बन्धीय स्त्री, पुत्र आदिका पालन करते हैं; अन्तमें इस जड़ शरीरको परित्याग करनेके अनन्तर परलोकमें उस पापके फलका भागी होना पड़ता है, क्यों कि कर्त्ताको ही सम्पूर्ण कर्म्मोंका फल भोगना होता है। इसी भांति समस्त प्राणी कर्म्मरूपी सूत्रमें बन्धके घूमते हुए रथचक्रकी भांति सदा इस संसारके बीच आवागमन करते रहते हैं। जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और व्याधि आदि अनेक भांतिकी आपदासे युक्त इस असार संसारको जो पुरुष त्याग सकते हैं, उनको ही

नित्य सुख प्राप्त होता है। जब कि देवता लोग स्वर्गसे और महर्षि लोग अपने अपने स्थानोंसे भी भ्रष्ट होते हैं, तब इन सम्पूर्ण कारणोंको जानकर भी कौन पुरुष इस अनित्य स्वर्ग आदि ऐश्वर्य्यकी इच्छा करेगा? और भी देखो, कि समयके अनुसार सामान्य राजा भी कपटता आदि विविध उपाय अवलम्बन करके किसी कारणसे महाराजको भी मार सकता है। जो हो, बहुत समयके अनन्तर मेरे लिये यह ज्ञानरूपी अमृत उत्पन्न हुआ है, इसको ही अवलम्बन करके मैं इस समय उस अक्षय, अव्यय और नित्य स्थानको प्राप्त करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं। ऐसी ही बुद्धि सदा हृदयमें धारण करके निर्भय मार्गमें आरूढ़ होके जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और व्याधि आदि अनेक भांतिके क्लेशोंसे युक्त इस शरीरको त्याग करूंगा।

९ अध्याय समाप्त।

भीमसेन बोले, हे महाराज! जैसे मन्दबुद्धि अर्थ ज्ञानरहित वेदपाठी ब्राह्मणकी बुद्धि वेदपाठ करते करते स्तम्भित होजाती है, वैसे ही आपकी भी बुद्धि कलुषित होनेसे तत्त्वदर्शिनी नहीं होती है। राजधर्ममें दोषारोपण करके यदि वृथा शान्ति तथा आलस-भावको अवलम्बन करना ही अभिप्राय था, तब धृतराष्ट्र पुत्रोंका नाश करके तुम्हें कौनसा फल मिला? क्षमा, दया करुणा और अनृशंसता आदि अन्य गुण क्या तुम्हारे अतिरिक्त क्षत्रिय धर्मावलम्बी दूसरे राजाओंमें वर्त्तमान नहीं है, यदि मैं आपके ऐसे अभिप्रायको पहिले जान सकता, तो कदापि शस्त्र ग्रहण करके किसीका वध न करता। जीवनके समय पर्य्यन्त अवश्य ही भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके दिन बिताता,— ऐसा होनेसे राजाओंके बीच कदापि इस प्रकार भयङ्कर युद्ध उपस्थित न होता।

हे राजन्! ज्ञानी पुरुष "स्थावर जङ्गमसे युक्त इस पृथ्वीको बलवान पुरुषोंके द्वारा ही भोग्य और पालनीय" कहके वर्णन करते हैं; और क्षत्रिय धर्म्मके जाननेवाले पण्डितोंका ऐसा ही मत है, कि बलवान् पुरुषको राज्य ग्रहण करनेके समय यदि कोई शत्रुताचरण करे, तो उस ही समय उसका वध करना उचित है। महाराज! हमारे शत्रु कौरव लोग भी उस ही दोषसे दूषित होकर हम लोगोंके हाथसे मारे गये हैं; इससे आप इस समय शत्रु-रहित होके धर्म्मपूर्व्वक यह पृथ्वी-भोग कीजिये। जैसे कोई पुरुष कुआं खोदके उसमें जल न पाकर केवल कीचड़ लिपटे हुए शरीरसे निवृत्त होता है; जैसे कोई बड़े वृक्ष पर चढ़के मधु ग्रहण करके भी उसका स्वाद न पाकर ही मृत्युको प्राप्त होता है; जैसे कोई आशा पाससे बन्धके महा घोर पथसे गमन करते हुए फिर निराश होके निवृत्त होता है; जैसे कोई शूरवीर पुरुष समस्त शत्रुओंका नाश करके पीछे आत्महत्या करनेमें प्रवृत्त होता है; अथवा जैसे भूखे मनुष्यका अन्न पाकर भी भोजन न करना और कामी पुरुषके इच्छानुरूप स्त्री पाके भी उसे भोग न करनेकी भांति आपके वन गमनमें उद्यत होनेसे हम लोगोंके शत्रुनाश आदि सम्पूर्ण कार्य्य निरर्थक होरहे हैं। हे राजन्! आप निर्बुद्धि होरहे हैं, तौभी हम लोग आपको ज्येष्ठ समझके मान्य करते हुए आपके अनुगामी होते हैं, तब हम लोगही इस विषयमें निन्दनीय हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हम लोग सब कोई बाहुबलसे युक्त कृतविद्य और सब विषयोंके निश्चय करनेवाले हैं, परन्तु असमर्थकी भांति आपकी निरर्थक आज्ञामें स्थित हैं। हे राजन्! मेरा वचन युक्ति-युक्त है वा नहीं, इसे विचारके देखिये, हम लोग अनाथोंके रक्षक हैं तब भी यदि अर्थसे भ्रष्ट

होंगे, तो प्रयोजन-सिद्धिके विषयमें सब कोई हम लोगोंको क्या अकर्मण्य न समझेंगे? क्योंकि ऐसी विधि है, कि राजा लोग वृद्धावस्था और शत्रुसे पराजित होनेपर, अर्थात् आपद-कालमें ही सन्यास धर्म्म ग्रहण कर सकते हैं; अतएव सूक्ष्म तत्वदर्शी पण्डितोंने दूसरे समयमें क्षत्रियोंकी सन्न्यासधर्म्मकी विधि नहीं दी है, वरन उससे धर्म्मकी हानि होती है, ऐसा ही सूक्ष्मदर्शी पण्डितोंने वर्णन किया है। जो पुरुष क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न होके उसहीमें निष्ठावान तथा हिंसा धर्म्मसे ही जीविका निर्व्वाह करते हैं, वे किस प्रकारसे दैव निर्दिष्ट धर्म्मकी निन्दा कर सकते हैं? ऐसा करनेसे उस विषयमें विधाताकी ही निन्दा करनी होती है, इससे दैव निर्दिष्ट धर्म्म दूषित होने पर भी निन्दित नहीं है। क्षत्रियोंको भी जो वेदमें सन्यास ग्रहण करनेके अधिकार कहा गया है; वह यथार्थमें न होने पर भी ऋक, यजु, और साम इन तीनों वेदों तथा विधि विषयमें अनभिज्ञ, निर्द्धन और नास्तिक पुरुषोंने ही वेदोक्त सन्यास धर्म्मके प्रशंसा-रहित वचनका सत्यकी भांति समझके अपना मत प्रकाशित किया है। क्षत्रियोंका सिर मुड़ाकर कपट सन्यास धर्म्म अवलम्बन करके शरीरको चेष्टा-रहितकी भांति रहित करनेसे वह नाशके वास्ते ही समझा जाता है, जीवन रक्षाके निमित्त नहीं! तब केवल देवता, ऋषि, अतिथि, पितर, पुत्र और पौत्र आदिके पालन पोषणमें असमर्थ पुरुष ही जङ्गलके बीच अकेले ही निवास करके सुखी हो सकते हैं। जैसे मृग सूअर और पक्षी वनवासी होके भी स्वर्गके अधिकारी नहीं हैं, वैसेही सत्कर्म्मोंके अनुष्ठानसे विमुख होनेवाले शक्तिमान क्षत्रिय पुरुष भी आरण्यक धर्म्मसे किसी प्रकार स्वर्गके अधिकारी नहीं हो सकते। हे राजेन्द्र! यदि सन्यास धर्म्मसे ही सिद्धि प्राप्त होती, तो ऐसा होनेसे पहाड़ और वृक्षोंके समूह शीघ्र ही सिद्धिलाभ करते। जगत्के बीच ये ही प्रकृत सन्यासी और ब्रह्मचारीकी भांति दीख पड़ते हैं, क्योंकि इन्हें परिग्रह वा किसी उपद्रवकी कुछ भी बाधा नहीं है। महाराज! पुरुष अपनी प्रारब्धके अतिरिक्त पराये भाग्यसे कदापि फल भागी नहीं होसकता; इससे अवश्य ही कर्म्म करना उचित है, कर्म्म हीन मनुष्य कभी सिद्धि-लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते! और अपना उदर भरनेसे ही यदि सिद्धि प्राप्त होसकती, तो जिसे उदर भरनेके अतिरिक्त और कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता, वे मछरी आदि जलजन्तु भी सन्न्यासरूपी मुक्ति फल प्राप्त करनेमें समर्थ होते।

अधिक और क्या कहूं, आप विशेष रीतिसे विचारके देखिये, इस जगत्के सम्पूर्ण प्राणी अपने अपने कर्म्ममें प्रवृत्त होरहे हैं, इससे अवश्य ही कर्म्म करना चाहिये; कर्म्महीन पुरुषको दूसरे किसी विषयसे भी सिद्धि नहीं प्राप्त होसकती।

१० अध्याय समाप्त।

अर्ज्जुन बोले, महाराज! इस विषयमें तपस्वियोंके सङ्ग देवराज इन्द्रके वार्त्तालापका एक पुराना इतिहास वर्णित है, मैं कहता हूं, आप सुनिये।

किसी समयमें उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए बहुतसे अजातश्मश्रु ब्राह्मणोंका निर्बोध बालकोंने परिव्राजक धर्म्म ग्रहण करके घर त्यागके वनमें गमन किया। वे सब महाधनवान होके भी सन्न्यासको ही यथार्थ धर्म्म समझके पिता भ्राता आदि बन्धुबान्धवोंको परित्याग कर ब्रह्मचर्य्य व्रत अवलम्बन करके चारोंओर पर्य्यटन करने लगे, देवराज इन्द्रने उन बालकोंके ऊपर कृपा करी। भगवान इन्द्रने सुवर्णमय

जो राजनीतिज्ञ जितेन्द्रिय राजा धर्मशास्त्रके तात्पर्यको विशेष रूपसे ग्रहण करके राज्य करते हुए प्रिय और अप्रिय वस्तुओंको समान समझते, यज्ञसे बचे हुए अन्नका भोजन, दुष्ट पुरुषोंको दण्ड, साधुओंके ऊपर कृपा करते तथा प्रजाको धर्म मार्गमें स्थापित करते हुए स्वयं निज धर्ममें तत्पर रहते हैं, और अन्तमें पुत्रको राज्यभार समर्पण करके वनवासी होकर वेदमें कही हुई विधिके अनुसार आसक्ति त्यागके कर्मों के अनुष्ठानमें रत रहते हैं, उन्हें इस लोक और परलोक दोनोंमें शुभ फल प्राप्त होता है। आप जो निर्वाणमुक्तिके विषयको वर्णन करते थे, मेरे विचारसे वह अत्यन्त ही दुष्प्राप्य और अनेक विघ्नोंसे परिपूरित है। हे धर्मराज! मैंने राजधर्मके विषयको वर्णन किया है; सत्य और दानपरायण अनेक राजा लोगोंने ऊपर कहे हुए धर्मके आसरे काम क्रोध, नृशंसता त्यागके गौ ब्राह्मणकी रक्षाके वास्ते अस्त्र धारण करके प्रजा पालन करते तथा निज उत्तम धर्मको उपार्जन करते हुए शीघ्र ही परम गतिको प्राप्त हुए। इसी भांति रुद्र, वसु, आदित्य, साध्य और राजर्षि लोग सावधान होकर राजधर्मके सहारे अपने पुण्य कर्मों से स्वर्गलोकमें गये हैं।

२१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, देवस्थान ऋषिके वचन समाप्त होनेपर अर्जुन फिर शोकित चित्तसे युक्त अपने जेठे भाई अच्युत युधिष्ठिरसे बोले, महाराज! आपने क्षत्रिय धर्मके अनुसार शत्रुओंको पराजित करके इस दुर्लभ राज्यको प्राप्त किया है; तो अब किस कारणसे इतना दुःखित होरहे हैं। अनेक यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी बढ़के युद्धभूमिमें क्षत्रिय पुरुषोंकी मृत्यु श्रेष्ठ है, यह क्षत्रियोंका धर्म कहके वर्णित है। ब्राह्मणोंकी तपस्या तथा संन्यास और क्षत्रियोंकी युद्धमें मृत्यु होनी यही पारलौकिक धर्म है, काल प्राप्त होनेपर क्षत्रियोंको युद्धभूमिमें गमन करके शस्त्रसे मरना ही धर्म है; क्यों कि क्षत्रियधर्म शस्त्रमूलक और अत्यन्त ही कठिन है। क्षत्रियकुल ब्रह्मासे उत्पन्न हुआ है, इससे यदि ब्राह्मण भी क्षत्रिय-धर्म अवलम्बन करें, तो उनका जीवन धन्य है, महाराज! क्षत्रियोंके वास्ते संन्यास, समाधि, तपस्या और दूसरेके समीप भीख मांगके जीविका निर्वाह करनेकी विधि नहीं है। आप भी राजा, मनीषी, सब कार्यों को जानने-वाले, धर्मात्मा और सम्पूर्ण धर्मों के जानने-वाले हैं, आपको पर और अपर दोनों ही विषय विदित हैं; विशेष करके क्षत्रियोंका हृदय वज्रके समान कठोर होता है, इससे आप दुःख जनित शोक त्यागके कर्मों के अनुष्ठानमें कटिबद्ध होइये। आपने क्षत्रिय धर्मके अनुसार शत्रुओंका नाश करके यह निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया है, इस समय इन्द्रियोंको वशमें करके दान और यज्ञ आदिक कर्मों के करनेमें प्रवृत्त होइये। मैंने सुना है, कि देव-राज इन्द्र ब्राह्मण होकर भी केवल कार्यके वशमें होकर क्षत्रिय धर्मावलम्बी हुए हैं; उन्होंने ज्ञातिके पापी पुरुषोंको युद्धमें आठ सौ दश बार पराजित किया था, उनका वह कर्म जगत्में पूजनीय और प्रशंसनीय कहके गिना गया है; इसमें कुछ सन्देह नहीं है; और उस क्षत्रिय धर्मके प्रभावसे ही उन्होंने देवताओंके बीच इन्द्रत्व पद पाया है। जैसे देवराज इन्द्रने निष्कण्टक होके यज्ञानुष्ठान किया था, वैसे ही आप भी इस निष्कण्टक राज्यका शासन करते हुए अनेक दक्षिणासे युक्त यज्ञ कार्यमें प्रवृत्त होइये, महाराज! आप बीते हुए विषयोंके निमित्त तनिक भी शोक न कीजिये, कौरव लोग क्षत्रिय धर्मके अनुसार शरीर त्यागके

पक्षीका रूप धरके उन बालकोंसे कहा,—इस संसारके बीच जो लोग यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन करते हैं, वे साधारण मनुष्योंसे न होने योग्य अत्यन्त कठिन कर्म्म करते हैं, और वही पवित्र कर्म है ; इससे ऐसे ही कर्म्म करनेवाले पुरुषोंका जीवन धन्य है और वेही धर्म्मपरायण पुरुष सिद्ध मनोरथ होकर परम गति लाभ करते हैं।

तपस्वियोंने कहा, ओहो ! यह पक्षी यज्ञसे बचे हुए अन्न भोजन करनेवाले मनुष्योंकी प्रशंसा करता है ! हमलोग भी यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन किया करते हैं ; इससे अवश्य ही यह पक्षी हमलोगोंको यह विषय विज्ञापित करता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ।

पक्षी बोला, हे तपस्वी पुरुषो ! मैं तुम लोगोंकी प्रशंसा नहीं करता हूं ; तुम लोग यज्ञसे बचे हुए अन्नको भोजन करनेवाले नहीं हो ; तुम लोग जूठे अन्नको भोजन करनेवाले मन्दबुद्धि अल्प पराक्रमी और पापी हो ।

तपस्वियोंने कहा, हे विहङ्गम ! हम लोग इसे ही परम श्रेष्ठ कल्याणदायक मार्ग समझकर इसही की उपासना करते हैं ; इस समय जो हम लोगोंके निमित्त उत्तम हो, तुम उसहीका उपदेश करो ; तुम्हारे वचनोंमें हमलोगोंकी अत्यन्त ही श्रद्धा उत्पन्न होरही है ।

पक्षी बोला, कि वक्ता और श्रोताका अन्तःकरण भिन्न भिन्न अंशोंमें बंटा रहता है, इससे यदि मेरे वचनोंमें तुम लोग कोई शङ्का न करो तो मैं तुम लोगोंके निमित्त यथार्थ हितकर वचनोंका उपदेश करूंगा ।

तपस्वियोंने कहा, हे धर्म्मात्मन् ! आर्य्य ! हमलोग तुम्हारे वचनको सुनेंगे ; इस जगत्‌के सम्पूर्ण मार्ग तुम्हें विदित है ; इससे हम लोग तुम्हारी आज्ञाके अनुसार इस स्थानमें स्थित हैं; अब तुम हमलोगोंको यथार्थ पथका उपदेश प्रदान करो ।

पक्षी बोला, सम्पूर्ण चौपाये पशुओंमें गऊ श्रेष्ठ हैं, धातुओंमें सुवर्ण, शब्दोंमें मन्त्र, और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं । वेद मन्त्र ही ब्राह्मणोंको जन्मसे लेकर जीवन कालके समय पर्य्यन्त गर्भ क्रिया आदि सम्पूर्ण संस्कारोंका विधि पूर्व्वक विधान करता है ! और यह वैदिककर्म्म ही सब किसीका उत्तम यज्ञ और स्वर्ग प्राप्त होनेका पथ स्वरूप है ! और यदि इसे न स्वीकार करो तो इस कर्म्मसे किस भांति सैकड़ों कर्म्म-निष्ठ स्वर्गार्थी पूर्व्व पुरुषोंके मनोरथ तथा कार्य्य सिद्ध हुए हैं ? इस विषयमें मैंने बहुत कुछ प्रत्यक्ष मालूम किया है । इससे लोकके बीच जो पुरुष दृढ़ विश्वासके सहित इस आत्माको जिस देव रूपसे भजता है, वह उसही भावसे सिद्धि प्राप्त करता है ।

इस जगत्‌के बीच जीवोंको तीन प्रकारसे सिद्धि प्राप्त होती है ; प्रथम माघ महीनेसे लेकर असाढ़ पर्य्यन्त छः महीने उत्तरायण कालमें मृत्यु होनेसे शुक्ल अर्थात् प्रकाशमय मार्गसे आदित्य लोक प्राप्त होता है; इस लोकमें इसे क्रम-मुक्ति कहते हैं । दूसरा आवण महीनेसे लेकर पौषमास छः महीने तक दक्षिणायण समयमें कृष्ण अर्थात् अन्धकारमय मार्गसे चन्द्रलोक प्राप्त होता है, इसी भांति मुक्त जीवोंका पुनरावृत्ति होती है । तीसरे अविमुक्त उपासकोंको अन्तिम समयमें भगवान रुद्रदेव स्वयं आगमन करके तारकब्रह्म मन्त्र उपदेश करते हैं, उससे वे लोग ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं ; इसको अनावृत्ति मुक्ति कहते हैं । परन्तु इन तीनों प्रकारकी सिद्धियोंको सब प्राणी कर्म्मसे ही प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं । यह गृहस्थाश्रम ही अत्यन्त पवित्र सिद्ध क्षेत्र और बड़ा है । जो मनुष्य कर्म्मकी निन्दा करके कुमार्गमें गमन अर्थात् सन्यास-धर्म्म ग्रहण करते हैं, वे सम्पूर्ण मूढ़ पुरुष अर्थ-भ्रष्ट होकर पापमें लिप्त होते हैं । इसके अतिरिक्त वे लोग

पितर लोक और ब्रह्मप्राप्ति रूपी यह नित्य भांतिकी नित्य सिद्धियोंको परित्याग करके मूढ़की भांति इस लोकमें जीवित रहके शीघ्रही कीट आदि हीन योनिको प्राप्त होते हैं। देखिये मन्त्रमें ऐसी विधि है, कि "हे यजमान्! द्रव्यदान आदि यज्ञ करो, मैं तुम्हें पुत्र पशु और स्वर्गादि सुख प्रदान करूंगा," इससे जिस प्रकारकी विधि है, उसही विधिके अनुसार चलनेसे तपस्विनोंको परम तपस्या कही गई है। इससे इसही भांतिका यज्ञ और दानरूपी तपस्या तुम लोगोंको अवश्य कर्त्तव्य है। यथा नियमसे देवतोंकी पूजा, वेदाध्ययन, पितृ तर्पण और गुरुसेवाको ही पण्डितोंने कठिन तपस्या कहके वर्णन किया है; देवता लोग इसी भांति कठोर तपस्या करके परम ऐश्वर्य्यको प्राप्त भये हैं। इसही निमित्त मैं तुम लोगोंको अत्यन्त कठिन गृहस्थ धर्म्मके भारको ग्रहण करनेका उपदेश करताहूं। यह वेदोक्त कर्म्म ही जो मुख्य तपस्या और प्रजाको उत्पत्तिका मूल है, उसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, क्यों कि वेदमें गाई स्थ्याश्रम विधिके स्थानमें "गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमोंका मूल कहके वर्णित हुआ है। काम क्रोधसे रहित ब्राह्मणोंने इसी भांति धर्म्मानुष्ठानको परम तपस्या कहके स्वीकार किया है, और ब्रह्मचर्य्यादि व्रतोंको मध्यम तपस्या कहके वर्णित किया है। जो लोग दिन और रात्रिमें कुटम्बको विधि पूर्व्वक अन्नप्रदान करके भोजन करते हैं, वे विघ्ननाशी पुरुष दूसरेको न प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ लोकोंमें गमन करते हैं। हे तपस्वी लोगो! देवता पितर, अतिथि कुटम्ब और अपने आश्रित लोगोंको यथारीतिसे अन्नप्रदान करके भोजन कराते हैं, वे विघ्ननाशी पुरुष दूसरेके न प्राप्त होने योग्य स्थानमें गमन करते हैं। इससे जो लोग इस लोकमें सत्यवादी और उत्तम व्रताचरणमें रत होके अपने धर्म्मके आचरेसे स्वयं संशय रहित होके यह विषय दूसरेको उपदेश करते हैं, वह निर्म्मत्सरी कठिन कर्म्म करनेवाले पुरुष शरीर त्यागनेके अनन्तर इन्द्र लोकको प्राप्त करके बहुत समय तक स्वर्गमें वास करते हैं।

अर्जुन बोले, हे महाराज! तिसके अनन्तर उन तपस्वी लोगोंने पक्षी रूपी देवराज इन्द्रके धर्म्मार्थ युक्त हितकर वचन सुनकर सन्यास धर्म्मको निष्फल समझ उसे त्यागके गृहस्थ धर्म्म अवलम्बन किया। हे धर्म्मज्ञ! आप भी इस समय उस चिरभ्यस्त धीरज धारण करके निष्कण्टक यह पृथ्वी शासन कीजिये।

११ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! धर्म्मात्मा बोलनेवालोंमें मुख्य दुःखसे क्षुभित, चौड़ी छातीवाले महाभुज बुद्धिमान शत्रुनाशन नकुल अर्जुनके वचन समाप्त होनेपर निज भाई धर्म्मराज युधिष्ठिरको और देखकर उनके चित्तको परिवर्त्तित करनेकी अभिलाषासे यह वचन बोले, हे महाराज! विशाख यूप नाम किसी क्षेत्र विशेषमें अग्नि स्थापित करनेके वास्ते देवतावोंने एक अग्नि कुण्ड बनाया था, वह अबतक भी दीख पड़ता है; इससे देवलभाभ भी आप कर्म्मफलसे ही समझिये! और जो लोग जलवृष्टि आदिसे नास्तिकोंको भी प्राणदान करते रहते हैं; वे पितर लोग भी विधिपूर्व्वक कर्म्म किया करते हैं। जो लोग वेदोक्त धर्म्मका परित्याग करनेवाले हैं; उन्हें अवश्य ही नास्तिक समझिये; क्यों कि ब्राह्मण लोग कभी किसी कर्म्ममें वेदोक्त विधिको परित्याग करके किसी प्रकारसे स्थित नहीं रह सकते। वेद जाननेवाले पण्डितोंने ऐसा कहा है, कि गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमोंसे श्रेष्ठ है; उस गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले मनुष्योंको देवार्चनादि ब्रह्मलोक

प्राप्त होता है। हे महाराज! निश्चय कीजिये कि जो पुरुष श्रेष्ठ यज्ञको करते हुए वेदज्ञ ब्राह्मणोंको धर्म्मसे उपार्ज्जित धन प्रदान करते, और अहङ्कार तथा ममता आदि त्यागके इन्द्रियसंयममें रत रहते हैं, उन्हें ही पण्डित लोग सात्विक त्यागी कहते हैं। जो पुरुष सुखभोग्य गृहस्थाश्रमको त्यागके जंगलमें गमन करता है अथवा अनशन आदिसे शरीर त्याग करता है, उसे तामसत्यागी समझिये। जो गृहत्यागके मौनावलम्बन पूर्व्वक वृक्ष आदिके नीचे सर्व्वदा स्थित होके योगाभ्यासमें रत रहते हैं और कोई अभिलाषा न करके केवल शरीर निर्व्वाहके वास्ते भिक्षा मांगनेके वास्ते भ्रमण करते हैं, वे भिक्षुक सन्न्यासी कहके प्रसिद्ध हैं; और जो ब्राह्मण क्रोध, हर्ष और चुगलीको त्यागके वेदाध्ययनमें रत रहते हैं, उन्हें भी भिक्षुक सन्न्यासी कहा जाता है। पण्डित लोग कहते हैं, कि सब आश्रमोंकी बराबरी करनेमें एक ओर तीनों आश्रम और एक ओर गृहस्थाश्रम; क्योंकि गृहस्थाश्रम ही ब्रह्मचर्य्यादि तीनों आश्रमोंका आश्रयस्वरूप है। शास्त्रोंके तत्वको जाननेवाले महर्षियोंने सब आश्रमोंके तारतम्यकी समालोचना करके जब समझा कि, गृहस्थाश्रममें स्वर्ग और काम दोनों ही प्राप्त होते हैं, तब यही उन लोगोंकी गति और अवलम्बस्वरूप हुआ। हे भरत-श्रेष्ठ! जैसे मूढ़ लोग गृहत्यागके वनवासी बनते हैं, वैसा न करके फलासक्तिसे रहित होकर गृहस्थाश्रममें ही कर्त्तव्य कर्म्मोंका अनुष्ठान करनेवाले पुरुष उन वनवासियोंसे श्रेष्ठ और प्रकृत सन्यासी हैं; और जो पुरुष सन्न्यास वेष धरके मनमें सम्पूर्ण कामनाओंसे युक्त वस्तुओंका ध्यान करता है, उसको गर्द्दनमें यमराज अपना फांस डालके उसे बांध लेता है। हे राजन्! जो कर्म्म अहङ्कार सम किये जाते हैं, वे फलदायक अर्थात् मुक्ति देनेवाले नहीं होते। और जो कर्म्म आसक्ति रहित होकर किया जाता है, वह महा फलदायक होता है, क्यों कि वह मुक्तिका कारण समझा जाता है। शम, दम, धैर्य्य, पवित्रता, सरलता, धृति, यज्ञ और धर्म्म ये सब नियमित आचार ऋषि-प्रणीत विधि कहके वर्णित हैं। गृहस्थाश्रममें देवता, पितर और अतिथिके उद्देश्यसे यज्ञ आदि कर्म्म करना योग्य है ऐसा करनेसे ही त्रिवर्ग योग साधन होता है। इससे आसक्तिरहित होकर गृहस्थाश्रममें स्थित सन्न्यासी पुरुषके वास्ते यह लोक और परलोक कुछ भी नष्ट नहीं होता।

महाराज! पापरहित प्रजापतिने "नाना भांतिकी दक्षिणाओंसे युक्त यज्ञ करके ये लोग मेरी पूजा अर्चा करेंगे," इसी अभिप्रायसे प्रजाओंको उत्पन्न किया है। देखिये वृक्ष, लता, औषधि पशु और मेघ आदि सम्पूर्ण सामग्री यज्ञके निमित्त ही उत्पन्न हुई हैं; और पवित्र घृत भी यज्ञमें प्रयोजनीय है। यज्ञकर्म्म गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले पुरुषोंके ज्ञानको बढ़ानेवाला है; इससे इस दुर्लभ गृहस्थाश्रम धर्म्मके कर्म्मोंका अनुष्ठान करना अत्यन्त कठिन कार्य्य है। उस अति दुर्लभ गृहस्थाश्रममें निवास करके तथा पशु और धनधान्य आदि सामग्रियोंसे युक्त होकर भी जो गृहस्थ पुरुष यज्ञादि कर्म्मोंका अनुष्ठान नहीं करते, वह बहुत दिनोंतक पापभोग करते हैं। महाराज! ऋषियोंके बीच कोई वेदाध्ययन, कोई ज्ञानकी समालोचना और कोई मनहोमन शास्त्र आलोचनारूपी महायज्ञका अनुष्ठान करते रहते हैं। इसी भांति स्थिर चित्तवाले ब्रह्मस्वरूप ब्राह्मणोंके संसर्गमें रहनेके वास्ते देवता लोग भी अभिलाष करते हैं। हे राजन्! शत्रुओंको जीतकर आपने जो बहुतसे रत्न संग्रह किये हैं, उसे यज्ञमें बिना व्यय किये हीं, जो अब इस समय आरण्यक धर्म्म ग्रहण करनेका

प्रसङ्ग करते हैं ; उससे केवल आपकी नास्तिकता प्रकाशित होती है। गृहस्थाश्रममें स्थित राजाओंकी सर्व्वमेध, अश्वमेध और राजसूय आदि यज्ञोंमें धन त्यागके अतिरिक्त दूसरी भांतिका त्याग अर्थात् सन्न्यास ग्रहण करते नहीं देखा है। हे राजेन्द्र! इससे जैसे देवराज इन्द्रने बहुतसे यज्ञ किये थे, वैसे ही अश्वमेध, राजसूय प्रभृत यज्ञ जिनकी ब्राह्मण लोग प्रशंसा करते हैं, उन्होंका अनुष्ठान कीजिये। देखिये राजाकी असावधानीसे यदि डाकू लोग प्रजाके धनको हर लेवें ; और राजा यदि प्रजाकी रक्षा न करे, तो वह राजा साक्षात् कलियुगका स्वरूप ही कहा जाता है।

हमलोग राजपुत्र होकर भी यदि सज्जित हाथी, घोड़े, गऊ और सब भांतिसे अलंकृत दासी, सेवक, गांव, भूमि और गृह आदि सामग्री ब्राह्मणोंकी दान न कर सके, तो अपने दोषसे ही हम लोग मत्सरी होकर कलिस्वरूप कहे जावेंगे। जो लोग दान आदि कर्म्मसे प्रजाकी रक्षा नहीं करते, वे पापी राजा लोग परलोकमें सदा दुःख भोग करते हैं; वे कदापि सुख नहीं पा सकते। हे धर्म्मराज! जो पवित्र तीर्थोंमें स्नान पितर लोकके वास्ते श्राद्धादि और देवताओंके वास्ते यज्ञ आदि कर्म्मोंका अनुष्ठान न करके वनकी ओर गमन करेंगे, तो आप दोनों लोकसे अन्तमें इस प्रकार नष्ट होंगे, जैसे प्रचण्ड वायुके वेगसे बादल छिन्नभिन्न हो जाते हैं। जो भीतरसे अभिमान और बाहरी सम्पूर्ण वस्तुओंमें मनकी आसक्ति त्याग सकते हैं, वे ही प्रकृत सन्न्यासी हैं; नहीं तो गृहस्थाश्रम त्यागके वनमें चले जानेसे कोई सन्न्यासी नहीं हो सक्ता। महाराज! अप्रतिषिद्ध और वेदकार्य्यमें स्थित ब्राह्मणोंके विषयमें यह लोक और परलोक नहीं बिगड़ता। पहिले समयमें साधु पुरुषोंने जैसा आचरण किया है, तथा अपने धर्म्ममें रत होके जैसे देवराज इन्द्रने दैत्योंका वध किया था, वैसे ही युद्धभूमिमें पराक्रमी शत्रु कौरवोंका वध करके आप किस प्रकार शोक कर रहे हैं, वैसा कौन पुरुष शोक करता है? हे राजेन्द्र! अब शोक न कीजिये ; आपने क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार पराक्रमके प्रभावसे पृथ्वी जय की है; इससे अब यज्ञ करके मन्त्रपाठ करनेवाले ब्राह्मणोंको बहुत सा धनादि दान कीजिये ; ऐसा करनेसे आप अनायासही शीघ्र स्वर्ग लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

१२ अध्याय समाप्त।

सहदेव बोले, महाराज! केवल बाह्यवस्तु सम्पूर्ण परित्याग करनेसे ही सिद्धि नहीं प्राप्त होसकती, वरन आन्तरिक आसक्ति त्याग सके तो सिद्धि प्राप्त होना सम्भव है। अन्तरमें विषयासक्त और बाहरी वस्तुओंके त्याग करनेवाले पुरुषको जिस प्रकार धर्म्म और सुखलाभकी सम्भावना रहती है, वह हम लोगोंके शत्रुओंको प्राप्त होवे ; और आन्तरिक अभिमान आदि त्यागके यथानियमसे पृथ्वी शासन करनेवाले राजाको जैसा धर्म्म और सुख प्राप्त होना सम्भव है, वह हम लोगोंके इष्ट मित्रोंको प्राप्त होवे। "मम" ये दो अक्षर ही मृत्यु है; और "न मम" ये तीन अक्षर अर्थात् निर्म्मम होके नित्य ब्रह्म जानना चाहिये। महाराज! ज्ञान और अज्ञान, ये दोनों अवश्य ही प्राणियोंके शरीरमें अलक्षित रूपसे स्थित होकर आपसमें प्रतिद्वन्द्वी होते हैं यदि यह निश्चित है कि जीव अमर है, तो शरीर नष्ट करनेसे कैसे प्राणियोंकी हिंसा हो सकती है? और यदि शरीरका जनना मरना देखकर उस जीवकी उत्पत्ति और मृत्यु माने तो वेदमें कही हुई समस्त क्रिया मिथ्या होजावेगी ; इससे जीवकी उत्पत्ति और नाशके विषयमें सन्देह त्यागके पूर्व समयके साधु पुरुषोंके आचरित आर्य्यकी अवलम्बन

करना बुद्धिमान पुरुषको उचित है। इस स्थावर जङ्गमसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी प्राप्त करके भी जो पुरुष राज्यसुख नहीं भोग करते, उनका जीना ही निष्फल है। जो लोग वनवासी होकर जीवन धारण करते हैं, परन्तु और विषय वासनाकी ममता उनके चित्तसे नहीं छूटती; वे शीघ्र ही मृत्युके कराल ग्रासमें पतित होते हैं। हे महाराज! आप इस आत्माको प्राणियोंके भीतर बाहर प्रत्यगात्म रूपसे स्थित समझिये; जो लोग आत्माको ऐसा जान सकते हैं, वे महाभयसे मुक्त होते हैं। आप हम लोगोंके पिता, माता भ्राता और गुरु हैं; इससे मैंने दुःखसे आर्त्त होकर जो कुछ प्रलापयुक्त वचन कहा है, उस अपराधको क्षमा कीजिये, क्योंकि मैंने जो कुछ कहा है, चाहे वह न्याययुक्त हो अथवा अन्याय पूरित हो होवे, केवल आपमें भक्ति रहनेके कारणसे ही मैंने कहा है।

१२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! भीमसेन आदि भाइयोंने वेदविहित वचनोंको कहके इस प्रकार धर्म्मराज युधिष्ठिरको प्रबोधित किया, तौभी जब उन्होंने कुछ उत्तर न दिया। तब महत् अभिजन-सम्पन्न आयतनैनी स्त्रियोंमें अग्रगण्य श्रीमती द्रौपदी देवीने कुछ कहनेकी अभिलाष की। वह धर्म्म जाननेवाली, धर्म्मदर्शनी, विपुलश्रोणी पाञ्चाली स्वाभाविक ही माननी थी उसपर भी राजा युधिष्ठिर उसका सदा सम्मान किया करते थे, इस ही कारण वह उनके समीप बहुत कुछ अभिमान युक्त वचनोंको प्रकाशित कर सकती थी। वह हाथियोंके बीचमें स्थित यूथपतिकी भांति सिंह और शार्दूलके समान पराक्रमी भाइयोंके बीचमें बैठे हुए राज शिरोमणि निज स्वामी युधिष्ठिरकी ओर कटाक्ष करके मनोहर शान्त वचनसे उन्हें सम्बोधन करके बोली, महाराज! तुम्हारे भ्राता सूखे कण्ठसे युक्त चातककी भांति चिल्ला रहे हैं, तौभी तुम उन लोगोंको अभिनन्दन नहीं करते हो? बहुत दिनोंसे दुःख भोग करनेवाले महामतवाले हाथीके समान पराक्रमी इन भाइयोंको आप यथा उचित वचनोंसे आनन्दित कीजिये।

हे राजेन्द्र! पहिले द्वैतवनमें जब तुम्हारे ये सब भाई सर्दी, वायु और गर्म्मीसे अत्यन्त क्लेशित हुए थे; तब उस समय आपने कहा था,—हे शत्रुओंको नाश करनेवाले युद्धविजयी भ्राता लोगो! हम सब कोई मिलके युद्धभूमिमें दुर्य्योधनको मारकर सब अभिलाष सिद्ध करनेवाली पृथ्वीको भोग करेंगे; और जब तुम लोग शत्रु सेनाके रथियोंको रथ रहित और हाथियोंको मारकर उन सब रथों और चतुरङ्गिनी सेनाके मृत शरीरोंसे पृथ्वीको परिपूरित करके अनेक दक्षिणासे युक्त अनेक भांतिके यज्ञोंका अनुष्ठान करोगे, उस समय तुम लोगोंका यह सब दुःख सुखमें परिणत होगा' हे धर्म्मात्माओंमें मुख्य महाराज! आप उस समय इस प्रकार धीरजयुक्त वचन कहके इस समय किस कारणसे हम लोगोंका मन उत्साहरहित कर रहे हैं? देखिये कादर पुरुष कदापि पृथ्वी वा ऐश्वर्य्य भोगनेका अधिकारी नहीं होसकता! और जैसे कीचड़में मछली नहीं रह सकती, वैसे ही नपुंसकके घरमें पुत्र कलत्र नहीं रहते। राजा दण्ड रहित होनेसे प्रभावयुक्त पृथ्वीको भोगनेमें समर्थ नहीं हो सकता और उसकी प्रजा भी कदापि सुख नहीं पासक्ती। महाराज! सब प्राणियोंके ऊपर मित्रभाव, दान, अध्ययन और तपस्या ये सब ब्राह्मणके धर्म्म हैं; क्षत्रियके नहीं। दुष्टोंका नाश, साधु पुरुषोंका पालन, और युद्धमें पीछे न हटना यही राजाओंके परम

धर्म्म है। जिसमें क्षमा, दान, क्रोध, भय; अभय, निग्रह और अनुग्रह वर्तमान है, उसे ही धर्मज्ञ कहा जा सकता है। महाराज! आपने दान, अध्ययन सान्त्ववाक्य, यज्ञ, वा याचना करके पृथ्वी नहीं प्राप्त किया है; द्रोणाचार्य्य, कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य्य आदि महावीरोंसे रक्षित युद्धमें उद्यत शत्रुके हाथी, घोड़े, रथ और पदाति वीरोंसे युक्त चतुरङ्गिनी सेनाका नाश करके इस पृथ्वीको प्राप्त किया है, इससे अब इसे भोग कीजिये। हे पुरुषश्रेष्ठ! पहिले राजसूय यज्ञके समयमें आपने अनेक भांतिके प्राणियोंसे युक्त यह जम्बूद्वीप, महामेरु पर्व्वतके पश्चिम जम्बूद्वीपके समान क्रौञ्च द्वीप और महागिरिके पूर्व्व क्रौञ्च द्वीप सदृश शाकद्वीप और इस महापर्व्वतके उत्तर दिशामें स्थित भद्राश्व द्वीप, इसके अतिरिक्त समुद्र पर्य्यन्त नाना प्राणियोंसे युक्त सम्पूर्ण अन्तर्द्वीपोंको भी शासित किया था। हे महाराज! आप इस भांति असीम कार्य्योंको करके ब्राह्मणोंसे सम्मानित होकर भी क्यों नहीं प्रसन्न चित्त होते हैं? क्या ही आश्चर्य है! आप मतवाले हाथी और वृषभके समान पराक्रमी अपने भाइयोंको और देखकर इन्हें आनन्दित करिये। देखिये आप सब कोई देवतोंके समान शत्रुओंका नाश करने और उनके पराक्रमको सहनेमें समर्थ हैं; अधिक क्या कहूं, मेरे विचारसे हम लोगोंके बीच एक ही पुरुषके स्वामी होनेसे परम सुखका निमित्त होसक्ता है। जब शरीरको धारण करनेवाली पांचों इन्द्रियोंको भांति आप पांचों भाई मेरे स्वामी हैं; तब जो मेरा कितना सौभाग्य है; उसे कहां तक वर्णन करूं? महाराज! मेरी सास सर्व्वज्ञानसे युक्त दीर्घदर्शिनी कुन्तीदेवीने कुछ भी मिथ्या वचन नहीं कहा था, उन्होंने मुझसे कहा था, "हे द्रौपदी! महापराक्रमी युधिष्ठिर युद्धभूमिमें सहस्रों राजाओंको मारके तुम्हारे सुखका विधान करेंगे," परन्तु आपको सहसा इस प्रकारसे मोहयुक्त देखकर अब बोध होता है, उनके वे सब वचन मिथ्या हुए। जिसका जेठा भाई उन्मत्त होता है छोटे भाई सब उसके ही अनुगामी होते हैं। देखिये आपका चित्त उन्मत्तता युक्त होरहा है, तौभी आपके भाई आपके अनुगामी होरहे हैं। हे राजेन्द्र! यदि ये लोग उन्मत्त न हुए होते तो नास्तिकोंके सहित आपको बांधके स्वयं ही पृथ्वीका शासन करते। जो पुरुष मूढ़ होकर आपकी भांति आचरण करता है, उसका कदापि कल्याण नहीं हो सकता। जो पुरुष इस भांति उन्मादमार्गी होता है, धूप अञ्जन नाश और रक्षा बन्धनसे उसकी चिकित्सा करनी उचित है। परन्तु हे भरतसत्तम महाराज! स्त्रियोंके बीच में ही अत्यन्त अधम हूं, क्यों कि मैं वैसे पुत्रोंसे रहित होकर भी अभी जीवित रहनेकी अभिलाषा करती हूं। आपके ये सब भाई लोग और मैं, हम सब कोई यत्न कर रहे हैं; इससे हमारे वचनोंको निष्फल करना आपके उचित नहीं है। देखिये आप सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको त्यागके वनमें गमन करनेके वास्ते उद्यत होकर स्वयं ही विपदको आवाहन कर रहे हैं। महाराज! पहिले जैसे समस्त राजाओंमें माननीय मान्धाता और अम्बरीष थे, इस समय आप भी उस ही भांति विराजमान हैं। इससे धर्म्मके सहित प्रजाको पालन करते हुए वन पर्व्वत और अनेक द्वीपोंसे युक्त इस पृथ्वीका शासन, विविध यज्ञोंका अनुष्ठान, और शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करते हुए ब्राह्मणोंको धन वस्त्र आदि अनेक भांतिकी भोगप्रद वस्तु प्रदान कीजिये; और विरत न होइये।

१४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जन-मेजय ! अर्जुन द्रौपदीके वचनको सुनकर जेठे भाई, अच्युत महाबल युधिष्ठिरका, सम्मान करते हुए फिर कहने लगे।

अर्जुन बोले, हे महाराज ! दण्ड हीं समस्त प्रजाको शासन और पालन करता रहता है; और सम्पूर्ण प्राणियोंको निद्रावस्थामें भी दण्ड जागता रहता है; इस ही कारण पण्डित लोग दण्डको ही धर्म्म कहके वर्णन करते हैं। दण्डही धर्म्म अर्थ और कामका रक्षक है; इसहीसे दण्ड त्रिवर्ग नामसे वर्णित हुआ है। अधिक क्या कहूं, प्रजाओंको धनधान्य आदि जो कुछ वस्तु है, वह सब दण्डसे ही रक्षित होती है। हे राजेन्द्र ! इससे आप भी ऐसाही निश्चय करके लोक-रक्षा स्वरूप दण्डको ग्रहण करके लौकिक भावोंपर दृष्टि कीजिये। देखिये इस पृथ्वीपर कितने ही पापी पुरुष केवल राज दण्डके भयसे ही पाप कर्म्मोंमें प्रवृत्त नहीं होते; कोई कोई यम-दण्ड और परलोकके भयसे और कोई कोई जातिय भयसे पापाचरण करनेमें प्रवृत्त नहीं होते। हे राजन् ! इसी भांति लौकिक व्यवहारोंकी सिद्धि होती है; परन्तु सब प्राणी केवल दण्ड-भयसे ही अपने अपने कार्य्योंमें यथा रीति तत्पर हैं। इस पृथ्वीपर बहुतेरे प्राणी ऐसे भी हैं, जो केवल दण्डभयसे आप-समें एक दूसरेको भक्षण नहीं करते। अधिक मैं अब क्या कहूं, यदि दण्ड प्रजाकी रक्षा न करता; तो समस्त प्राणी महाघोर अन्धकार रूपी नरकमें पतित होते। दुष्टोंका दमन और साधारण पुरुषोंको शासित करता है, इसीसे पण्डितोंने उसका नाम दण्ड रक्खा है। यदि ब्राह्मणजाति कुछ अपराध करे, तो केवल वचनसे उसे दण्डित करना कर्त्तव्य कर्म्म है। अपराधी क्षत्रियको केवल भोजन मात्र प्रदान करना चाहिये, उसे वेतन देना उचित नहीं है, वैश्यको धन (जुर्माना) रूपी दण्ड करे और शूद्र जातिको दूसरा कुछ दण्ड न करके उससे केवल सेवा कर्म्म करानेकी ही विधि है। प्रजाके धन प्राणकी रक्षा और सावधानताके वास्ते जगत्के बीच-दण्डका नियम स्थापित हुआ है। जहां दण्ड चलानेवाला राजा पूर्णरीतिसे विद्यमान होता है, और श्यामभूर्त्ति तथा लाल नेत्रवाला दण्ड यथार्थ रीतिसे उद्यत रहता है; वहांपर प्रजा कदापि मोहित नहीं होती। ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक सब आश्रमवाले केवल दण्डभयसे नियमित पथमें स्थित हैं। महाराज ! यदि दण्डभय न रहता तो कोई पुरुष यज्ञानुष्ठान और दान कर्म्म करनेकी इच्छा न करते, अधिक क्या कहूं, भय रहित होनेसे कोई पुरुष भी नियममें रहनेकी इच्छा न करते। जैसे मछुए बिना मछलियोंकी हिंसा किये जीविका निर्व्वाह नहीं कर सकते, वैसे ही राजा लोग भी शत्रुओंको बिना नष्ट किये कदापि राजश्रीको प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते। राजा लोग यदि अपने शत्रुओंका नाश न करें, तो उनका धन, कीर्त्ति और प्रजा कुछ भी स्थायी नहीं रह सकती देखिये इन्द्रने वृत्रासुरका वध करके महेन्द्र नाम प्राप्त किया है देवताओंके बीच जो लोग शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं, उनको सब कोई भक्ति पूर्व्वक पूजा अर्चा किया करते हैं। रुद्र इन्द्र, वरुण, अग्नि, स्वामकार्त्तिक, यम, काल, मृत्यु वायु, कुवेर, सूर्य्य, वसु, मरुत्, विश्वदेव और साध्य आदिक देवता ये सब कोई शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। परन्तु मनुष्य लोग उन देवतोंके प्रतापको जानके विनीत भावसे उन्हें प्रणाम किया करते हैं; ब्रह्मा, धाता वा पूषाको कदापि प्रणाम नहीं करते। केवल कोई कोई मनुष्य सब कर्म्मोंमें सम्पूर्ण प्राणियोंको सम दृष्टिसे देखते हैं और साधु तथा परिश्रमी देवताओंकी पूजा अर्चा किया करते हैं। इस संसारके बीच मैं ऐसे किसी प्राणीको भी नहीं

देखता, जो बिना हिंसा किये ही जीविका निर्व्वाह कर सके, क्योंकि निर्व्वल प्राणियोंसे बलवान जीवोंका जीविका निर्व्वाह होता है; सर्व्वत्र ऐसाही नियम दीख पड़ता है। देखिये नकुल चूहेको, बिल्लीके नकुल, कुत्ते बिल्लीको और चीता कुत्तेको भक्षण करते हैं। इसके अतिरिक्त काल-पुरुष समयके अनुसार उपस्थित होकर उन सबकोही भक्षण करता है। अधिक क्या कहूं, इस स्थावर और जङ्गममय जगत्के बीच जो कुछ पदार्थ हैं; उन्हें प्राणके भक्ष्य करके विधाताने उत्पन्न किया है; इसही कारण विद्वान पुरुष उस विषयमें मोहित नहीं होते।

हे राजेन्द्र! आपने जिस कुलमें जन्म ग्रहण किया है, उस कुलमें आचरित कर्म्मोंमें तुम्हें प्रवृत्त होना ही उचित है, मूढ़बुद्धि क्षत्रिय ही क्रोध हर्षको त्यागके वानप्रस्थ धर्म्म ग्रहण करते हैं; परन्तु हिंसाके बिना तपस्वी लोगोंके शरीरका भी निर्व्वाह नहीं होसकता। पृथ्वी-पर जलमें और थलमें बहुतेरे छोटे छोटे जीव घुसे हुए हैं; तपस्वी लोग प्राण धारण करनेके निमित्त फल और जल आदिके सङ्ग उन छोटे छोटे प्राणियोंकी हिंसा करते हैं। इस पृथ्वी पर बहुतसे ऐसे छोटे जीव हैं, कि अनुमानके अतिरिक्त उनका अस्तित्व स्थिर नहीं होस-कता; वे जीव इतने सूक्ष्म हैं, कि नेत्रकी पल-कके आघातसे भी शीघ्र नष्ट होसकते हैं। कोई कोई मनुष्य क्रोध और मत्सरता त्यागके मुनि धर्म्म अवलम्बन करके गांवसे निकलकर वनमें गमन करते हैं; परन्तु वहांपर भी उन मूढ़ पुरुषोंको गृहस्थाश्रमी होते देखा जाता है; और बहुतेरे पुरुष गृहस्थाश्रममें ही निवास करके भूमि खनन, औषधि छेदन और उद्भिज्, अण्डज आदि चारों भांतिके प्राणियोंको हिंसा करके यज्ञकार्य्योंसे अनायास ही स्वर्गलोकमें गमन कर सकते हैं। इससे मुझे इस प्रकार निश्चय मालम है, कि यथारीति दण्ड प्रयोग करनेसे ही प्राणी मात्रके कार्य्य सिद्ध होसकते हैं। इस जगत्के बीच दण्ड न रहता, तो समस्त प्रजा नष्ट होजाती; अधिक बलवान प्राणी अपनेसे निर्व्वल प्राणियोंको जलमें स्थित मछलियोंकी भांति विचार कर भक्षण कर डालते हैं। पहिले ब्रह्माने भी यह सत्य वचन वर्णन किया था कि अच्छी भांतिसे विचार पूर्व्वक दण्ड प्रयोग होनेसे ही प्रजाकी रक्षा होती है। देखिये शान्त अग्नि भी दण्डके भयसे फफकार देने मात्रसेही फिर प्रज्वलित होजाती है। साधु और दुष्ट पुरुषोंको विभाग करनेवाला दण्ड यदि इस संसारके बीच न रहता, तो सब प्राणी अन्धकार रूपी नरकमें पड़े रहते; कुछ भी विदित न होसकता। अधिक क्या कहा जावे, जो लोग नियम उल-ङ्घन करनेवाले, वेदनिन्दक और नास्तिक हैं,—वे भी दण्डसे पीड़ित होकर शीघ्र ही नियमके वशीभूत होजाते हैं। महाराज! समस्त प्राणी दण्ड भयसे नियमको उलङ्घन नहीं कर सकते क्योंकि इस जगत्के बीच पापरहित मनुष्य बहुत ही दुर्लभ हैं, इससे प्रायः सब कोई दण्ड भयसे भीत होकर नियमित मार्गमें गमन करते हैं। चारों वर्णकी प्रजाके सुख, धर्म्म, अर्थ रक्षा और उन लोगोंको नीतिमार्ग अव-लम्बन करानेके ही वास्ते विधाताने दण्डको उत्पन्न किया है। यदि दण्डका भय न रहता, तो दुष्ट पक्षी आदि विपत्कारी जन्तु सदा यज्ञकी हवि, पशु और मनुष्योंको भक्षण करते, दण्ड प्रजाकी रक्षा न करे, तो वेदाध्ययन, दूध देनेवाली गऊका दुहना, और कन्यायोंके विवाह आदि सब कार्य्य कभी न हों। यदि लोक-रक्षा करनेवाला दण्ड न रहता, तो समस्त क्रिया और नियम शिथिल होकर नष्ट होजाते तथा प्रजा किसी वस्तुको भी अपनी न समझ सकती अर्थात् बलवान निर्व्वलोंके धनको अनायासही बलपूर्व्वक हर लेते। यदि दण्ड

लोक-रक्षा न करता, तो कोई पुरुष भी निर्भ-यचित्त होकर विधिपूर्व्वक दक्षिणायुक्त सात्त्विक यज्ञोंके अनुष्ठान न कर सकते ।, और ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ आदि आश्रमवासी कोई पुरुष भी विधिपूर्व्वक अपने अपने आश्रमके कर्म्मोंका अनुष्ठान न करते और कोई पुरुष विद्या प्राप्त करनेमें भी समर्थ न होते । दण्डका भय न रहता, तो ऊंट, बलवान बैल, घोड़े, खच्चर और गर्द्दभ आदि पशु सवारियोंमें जुत-कर कदापि उसे वाहन न करते । हे महा-राज ! समस्त प्राणी दण्डभयसे यथानियम स्थित हैं ; इसी ही कारणसे पण्डित लोग दण्डको सब धर्म्मोंका मूल समझते हैं ; दण्ड ही मनु-ष्योंको स्वर्गलोकमें ले जानेका मूलका कारण है, अधिक क्या कहूं, यह सम्पूर्ण जगत् केवल दण्डप्रभावसे ही प्रतिष्ठित है । जिस स्थानपर शत्रुओंका नाश करनेवाला दण्ड विधिपूर्व्वक प्रयोग किया जाता है, उस स्थलमें किसी प्रका-रके अनिष्ट कपटता, ठगहारी नहीं रह सकती, यदि दण्ड उद्यत होकर प्रजाकी रक्षा न करता, कौवे पुरोडाश भोजन और कुत्ते यज्ञके घृतको चाटनेमें प्रवृत्त होते । हे राजन् ! धर्म्म हो, वा अधर्म्म ही होवे ; इस समय यह राज्य हम लोगोंको प्राप्त हुआ है, आप शोक त्यागके उसे भोग करिये और यज्ञ आदिक कर्म्मोंका अनुष्ठान कीजिये । श्रीमान् पुरुष अपने प्रिय-पुत्र कलत्रके सङ्ग वास कर सुन्दर वस्त्र पहरते और उत्तम भोजन करते हुए सुखपूर्व्वक धर्म्मा-चरण करते रहते हैं । इस संसारके बीच जो कुछ कार्य्य हैं, वे सब धनके वशमें हैं, और वह धन दण्डके अधिकारमें है । इस समय विचार करके देखिये, कि दण्डका कितना बड़ा गौरव है । आप समझ रखिये लोकयात्रा निर्व्वाहके वास्ते ही धर्म्म स्थित हुआ है । कोई निर्व्वल पुरुष बलवान पुरुषसे पीड़ित होनेपर उस निर्व्वल पुरुषके परित्राणके वास्ते बलवानका नाश करनेसे उस महात्मक हिंसाके द्वारा अहिं-साके भी बढ़के धर्म्मोपार्ज्जन होता है । हे राजन् ! इस संसारके बीच कोई कार्य्य भी एक बारगी दोष पूर्ण और दोषसे रहित नहीं है, सम्पूर्ण कार्य्योंमें कुछ दोष और कुछ गुण दीख पड़ते हैं । देखिये कितने ही पुरुष पशु औंके भार आदिक कार्य्य करा लेते हैं, फिर भी उन्हें दुःखित करते, सींगोंको काटते, उन्हें बांधते और उनके शरीरपर प्रहार करते हैं । यह अनित्य लोक व्यवहार इसी भांति पर्य्या-कुलित अर्थात् दण्डके प्रभावसे समस्त कार्य्य निर्व्वाहित होते हैं ; इससे आप भी ऐसे ही व्यवहारोंसे प्राचीन धर्म्माचरण कीजिये । यज्ञका अनुष्ठान, दान, प्रजापालन, शत्रुओंका नाश और मित्रोंको पालन करते हुए पूर्व्वरीतिसे धर्म्मोपार्ज्जन करिये । हे राजन् ! शत्रु नाशके समय आपके चित्तमें कुछ भी दीनता उपस्थित न होवे ; क्यों कि विधिपूर्व्वक शत्रुओंका नाश करनेसे उसे वध करनेवालेको पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता । अधिक क्या कहें, यदि ब्राह्मण भी शस्त्र ग्रहण मारनेकी इच्छासे उपस्थित होवे, तो शस्त्र ग्रहण करके उसका वध करनेसे ब्रह्म-हत्याके पापमें भी नहीं लिप्त होना पड़ता ; क्यों कि उस सम्मुख उपस्थित होनेवाले आत-तायी पुरुषका क्रोध ही मारनेवालेके क्रोध उत्पन्न करानेका मूल है । विशेष करके जो सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हैं, उनका कोई नाश नहीं कर सकता, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । यदि आत्मा अवध्य है, तो कौन किसका वध करनेवाला होसकता है ? जैसे मनुष्य बार बार घरमेंसे घरके भीतर प्रवेश करते हैं; वैसेही जीव भी बार बार एक शरीर त्यागके दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है देहधारीके प्राचीन शरीर त्याग और नवीन शरीर धारण करनेका ही तत्वदर्शी पण्डित लोग मृत्यु कहके वर्णन करते हैं ।

१५ अध्याय समाप्त ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अर्जुनका वचन समाप्त होनेपर महा तेजस्वी क्रोधी भीमसेन धीरज धर बैठे भाई राजा युधिष्ठिरसे बोले, महाराज! आप किसी विषयमें अज्ञान नहीं हैं सम्पूर्ण धर्म्म आपको विदित है; हम लोग सदा आपके चरित्रके अनुसरण करनेकी इच्छा करते हैं। परन्तु किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हो सकते। आपको कुछ भी न कहूं, ऐसे ही मनमें इच्छा रहती है; परन्तु दुःखके वेगको न सहनेके कारण इस समय मैं कुछ कहता हूं. आप सुनिये। आपके मोहयुक्त होनेसे सब निष्फल होरहा है, और हम भी कातर तथा निर्ब्बल होरहे हैं! आप सब शास्त्रोंके जानने-वाले राजा होकर भी किस कारण दीन भावसे युक्त कायर पुरुषकी भांत मोहित होरहे हैं? हे राजन्! प्राणियोंकी सुगति और अगति आपको विदित है; और भविष्यत तथा वर्त-मान कालकी गति भी आपसे छिपी नहीं है। इस राज्यके विषयमें मैं आपसे कुछ कारण दिखाके वचन कहता हूं, आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये। इस जीव-लोकमें शारीरिक और मानसिक ये हो दो भांतिकी पीड़ा उत्पन्न होती हैं; परन्तु उनमेंसे एकके उत्पन्न होनेसे ही दूसरे की उत्पत्ति होती है। शारीरिकके बिना मानसिक और मानसिकके बिना शारी-रिक पीड़ा नहीं उत्पन्न होसकती। शरीरके अस्वास्थ्यसे मानसिक पीड़ा प्रगट होती है और मानसिक पीड़ा उत्पन्न होनेसे ही शरीर शिथिल होता है; इसमें कुछ सन्देह नहीं है। जो पुरुष बीते हुए शारीरिक और मानसिक क्लेशोंको स्मरण करके शोकित होता है, वह एक सङ्ग दूसरे क्लेशको आकर्षित करके दो अनर्थोंमें फंसता है। कफ, पित्त और वायु शरीरके येही तीन गुण हैं, इन तीनों गुणोंकी जो साम्या-वस्था है, उसे ही स्वस्थ शरीरके लक्षण कहते हैं; और उनको घटती बढ़ती होनेसे ही प्रति-कार करनेके वास्ते उपदेश है; उष्ण वस्तुसे कफ और ठण्ढी वस्तुओंसे पित्त निवारित किया जाता, है। शरीरकी भांति मनके भी सत, रज और तम, ये तीन गुण हैं, इन तीनों गुणोंकी साम्यावस्थाको ही मानसिक स्वास्थ्यका लक्षण कहते हैं और उनमेंसे एकके उत्तेजित होनेसे प्रतिकारकी आवश्यकता होती है; हर्षसे शोक और शोकसे हर्ष निवृत्त होता है। कोई कोई पुरुष सुखमें स्थित होकर दुःखको और कोई दुःखमें पड़के सुखको स्मरण किया करते हैं, परन्तु आप तो कभी सुख और दुःखमें आसक्त नहीं होते, इससे दुःखके समयमें सुख और सुख उपस्थितके समय दुःखको स्मरण करना आपको उचित नहीं हैं. देखिये, प्रारब्ध ही बलवान है। अथवा जिससे आप क्लेशित होरहे हैं, आपका स्वभाव यदि ऐसा ही होवे, तो पहिले जो शत्रु लोग हमारे सम्मुख ही एक वस्त्र धारण करनेवाली रज-स्वला द्रौपदीको सभाके बीच ले आये थे, उस विषयको आप क्यों नहीं स्मरण करते हैं? हमने जो नगरसे बाहर होके मृगछाला पहरके महावनमें वास किया और वहांपर जटासुर तथा चित्रसेन गन्धर्व्वके सङ्ग युद्ध हुआ, सिन्धु-राज जयद्रथने द्रौपदीको हरण किया, अज्ञात-वास और राजपत्नी द्रौपदीके ऊपर कीचकके चरणप्रहार आदि बहुतसे उपद्रवोंसे अनेक भांतिके दुःख प्राप्त हुए थे; आप किस कारणसे उन सब दुःखोंको भूले जाते हैं? हे राजन्! पहिले जैसे भीष्म द्रोणके सङ्ग आपका युद्ध हुआ था, वैसे ही इस समय केवल एक मनके सङ्ग आपके युद्ध करनेका समय उपस्थित हुआ है, इस युद्धमें शस्त्रों और बन्धु-बान्धवोंका प्रयोजन नहीं होता इसमें एक मात्र बुद्धिकी सहायतासे ही युद्ध करना होगा यदि आप मनको बिना पराजित किये ही प्राण परित्याग करेंगे, तो आपको दूसरा शरीर ग्रहण करनेपर भी

तथा शास्त्रसे अनकाल परम शान्तिको प्राप्त हुए हैं, हे राजन् ! जो होनहार होता है, वह अवश्य होता है। प्रारब्धको अतिक्रम करनेमें कोई भी समर्थ नहीं होसकता।

२२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज ! जितेन्द्रिय अर्जुनसे इस प्रकार प्रबोधित होनेपर भी कुरु-नन्दन युधिष्ठिरने कुछ भी उत्तर न दिया। तब महर्षि वेदव्यास मुनि बोले, हे सौम्य युधिष्ठिर ! अर्जुनने यथार्थ वचन कहे हैं; शास्त्रमें गृहस्थ धर्म्म ही उत्तम करके वर्णित है। हे धर्म्म जाननेवाले युधिष्ठिर ! इससे गृहस्थाश्रम त्यागके तुम्हें वनमें गमन करना उचित नहीं है; शास्त्रकी विधिके अनुसार अपने धर्म्म अर्थात् गृहस्थाश्रममें प्रवृत्त होजाओ। देखो देवता, पितर, अतिथि और सेवक लोग सब कोई गृहस्थके ही आसरे जीविका निर्व्वाह करते हैं, इससे उन लोगोंको पालन करना उचित है। पशु पक्षी आदि समस्त प्राणी गृहस्थोंके अवलम्बसे प्राण धारण करते हैं, इससे गृहस्थाश्रम ही सब आश्रमोंसे श्रेष्ठ है। महाराज ! गृहस्थ धर्म्मका अनुष्ठान अत्यन्तही कठिन है, इससे अब तुम अजितात्मा पुरुषोंसे न सिद्ध होने योग्य गृहस्थाश्रमके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होजाओ। सम्पूर्ण वेद और शास्त्रोंमें तुम्हारी विलक्षण अभिज्ञता है, और तुमने बहुत कुछ तपका भी अनुष्ठान किया है, इस समय धुरन्धर पुरुषोंके योग्य पिता पितामहकी भांति राज्यभारको ग्रहण करना ही तुम्हें उचित है। शक्तिके अनुसार तपस्या, यज्ञ, क्षमा, अनासक्ति, भिक्षावृत्ति, इन्द्रियसंयम, ध्यान, अत्यन्त नम्रता और ब्रह्मध्यानके साधन आदि कार्य्य ब्राह्मणोंको ही सिद्धिकारक है। क्षत्रियोंके जो कुछ कर्त्तव्य कर्म्म हैं, उन्हें वर्णन करता हूं, उस विषयमें तुम भी अजान नहीं हो; विद्या प्राप्त करना, उत्साह प्रकाश, यज्ञानुष्ठान, जो कुछ प्राप्त होवे उसमें असन्तोष, राजदण्डको धारण करना, कठोरता, प्रजापालन वेदपाठ, तपस्याका अनुष्ठान, सच्चरित्रता, धन उपार्ज्जन और उसे योग्यपात्रको दान करना।—ये सब क्षत्रिय पुरुषोंके कर्त्तव्य-कर्म्म शास्त्रमें कहे गये हैं, जो लोग इन सम्पूर्ण कर्म्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे इस लोक और परलोकमें सिद्धि लाभ करते हैं। परन्तु इन सब कर्म्मोंके बीच क्षत्रियोंको दण्ड धारण करना ही मुख्य कर्म्म कहके वर्णित हुआ है, दण्डभी बलके आसरेसे धारण किया जाता है, इससे क्षत्रियोंमें बल होना परम आवश्यक है। हे राजेन्द्र ! ये सम्पूर्ण कर्म्म क्षत्रियोंको सिद्धि प्राप्त करानेवाले हैं। इस विषयमें वृहस्पतिने भी इस प्रकार कहा है कि सांप जैसे चूहेको भक्षण करता है, वैसे ही सम-परायण राजा और संसारमें आसक्त ब्राह्मणोंको पृथ्वी शीघ्र ही ग्रास करती है इस प्रकार जनश्रुति है, कि राजऋषि सुद्युम्नने प्रचेता-पुत्र दक्षकी भांति एकमात्र दण्ड धारण करनेके प्रभावसे ही परम सिद्धि प्राप्त की थी।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे भगवन् ! पृथ्वीपति सुद्युम्न किस कर्म्म फलसे परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे? मैं इस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे धर्म्मराज युधिष्ठिर ! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है, उसे मैं वर्णन करता हूं, तुम चित्त लगाके सुनो। शङ्ख और लिखित नामक अत्यन्त कठोर व्रत करनेवाले दो भाई थे। बाहुदा नदीके किनारे फल पुष्प लता और सुन्दर वृक्षोंसे शोभित अत्यन्त रमणीय अलग अलग उनके दो आश्रम थे। किसी समय लिखित ऋषि इच्छानुसार अपने जेठे भाई शङ्खऋषिके आश्रमपर उपस्थित हुए, उस समय

शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करना होगा, अर्थात् दूसरे जन्ममें भी आप युद्ध कार्य्यको अनिवार्य्य समझिये। हे राजेन्द्र ! इससे वन-गमन रूपी उत्पन्न हुआ भाव परित्याग कर आज ही आप समालोचना रूपी कर्म्मसे अव्यक्त रूप मानस युद्धसे पार होनेके वास्ते यत्नवान होइये, अर्थात् चित्त स्थिर करनेके वास्ते कोशिश करिये मनको बिना पराजित किये वाणप्रस्थ आदि किसी आश्रममें भी आपको सुख नहीं मिल सकेगा, और मनको जीतनेसे आप कृतार्थ हो सकेंगे। आप प्राणियोंकी गतिको इसी भांति विचारके पितृ पितामह आदिके व्यवहारोंके अनुसार यथारीति राज्य शासन करनेमें प्रवृत्त होइये। महाराज ! प्रारब्धसे ही पापी दुर्य्योधन अपने अनुयायी और सेवकोंके सहित युद्धमें मारा गया; प्रारब्धसे ही आप द्रौपदीके केशकी भांति फिर राज्यपद पर प्रतिष्ठित हुए हैं। हे राजेन्द्र ! पराक्रमी कृष्ण और हम सब कोई आपकी आज्ञाके वशवर्त्ती हैं; आप इस समय दक्षिणायुक्त यज्ञोंका अनुष्ठान कीजिये।

१६ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे भीमसेन ! असन्तोष, प्रमाद, विषयानुराग, अशान्ति, बल, मोह अभिमान और उद्वेग आदि पापोंमें रत होकर ही तुम राज्यकी अभिलाषा करते हो इससे विषय वासना त्याग कर सुख दुःखसे मुक्त और शान्त होकर सुखी हो। देखो, जो एकछत्र राजा होकर भी इस समस्त पृथ्वीको शासन करते हैं, उनके भी एकके सिवाय दो उदर नहीं हैं, तब तुम किस कारणसे इस राज्यकी प्रशंसा कर रहे हो? यह पूर्ण न होनेवाली आशा एक दिन वा कई एक महीनोंमें पूरी होनेकी बात तो दूर है, जीवनके अन्त समय तक भी यत्न करके कोई इसे पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। जैसे अग्नि काष्ठ प्राप्त होनेसे ही प्रज्वलित और काष्ठके अभावसे ही शान्त होती है, वैसे ही तुम भी थोड़े भोजनसे उद्दीप्त जठराग्निको शान्त करो। इस पृथ्वीपर मूर्ख पुरुष ही केवल अपने उदरके वास्ते बहुतसी भोजन करने योग्य वस्तुओंको संग्रह करते हैं, इससे तुम पहिले इस उदरको ही वशमें करो, ऐसा करनेसे ही मानो तुम सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लोगे; अनन्तर यथार्थ कल्याण प्राप्त करनेमें समर्थ होगे। तुम मनुष्योंके इच्छानुयायी ऐश्वर्य्य और भोगोंकी प्रशंसा करते हो; परन्तु भोगवासना त्यागके जो लोग तपस्यासे अपने शरीरको कृशित करते हैं, वे ही श्रेष्ठ लोकोंमें गमन कर सकते हैं। हे तात ! धर्म्म और अधर्म्मात्मक राज्यलाभ और राज्यकी रक्षा, ये दोनों ही तुम्हारे हृदयमें परिपूरित हैं; तुम इस महाभारसे मुक्त होकर त्याग अर्थात् सन्न्यास धर्म्मका आश्रय करो। जैसे व्याघ्र एक ही उदरके वास्ते बहुतसा भोजन संग्रह करता है, और दूसरे बहुतेरे दुष्ट पशु उसके संग्रह किये हुए भोजनसे अपने शरीरका पोषण करते हैं; वैसे ही राजा लोग भी अपने एक मात्र उदरके ही वास्ते बहुत सा धन सञ्चय करते हैं, और धूर्त्त लोग उसके ही अवलम्बनसे अपनी अपनी जीविका निर्व्वाह करते है। तुम जो राजाओंके विषयमें विषय शक्ति त्यागरूपी अनन्तर-सन्न्यासको विधि कहते हो, उससे राजा लोग कदापि सन्तोष प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते; तुम विषय-दूषित बुद्धि त्यागके स्वयं ही इस विषयको विचारके देखो ! जो लोग पत्ताहारी और जो पत्थर दांत तथा ओखलीसे अन्नको भूसी पृथक करके जीविका निर्व्वाह करते हैं, और जो लोग जल तथा वायुसे शरीरकी रक्षा करते हैं; वे सम्पूर्ण तपस्वी लोग ही यथार्थ रूपसे नरक-यन्त्रणासे मुक्त हो सकते हैं।

इस पृथ्वी पर सुवर्ण और पत्थरके टुकड़ोंमें जिसको समबुद्धि है, वेही निर्लोभी पुरुष और सम्पूर्ण पृथ्वीको शासन करनेवाले राजा, इन दोनोंमेंसे विषयानुरागसे रहित पुरुषको ही मुक्त समझना चाहिये ; राजाको नहीं । इससे जो इस लोक और परलोकमें अव्यय तथा अशोकको निवास-भूमि स्वरूप हैं ; तुम उनका ही आसरा करके सम्पूर्ण कार्य्योंके सङ्कल्प, आशा और ममतासे रहित होजाओ । जो सब विषयोंके त्याग करनेवाले हैं, वे किसी वस्तुके वास्ते शोक नहीं करते ! तुम विषयासक्त हो, इस ही कारण विषयके वास्ते शोक करते हो । समस्त विषय वासनाको परित्याग करो ; ऐसा होनेसे मिथ्यापवाद अर्थात् बाहरी विषय भोग और भीतरी जो विषय त्यागरूपी सन्न्यासका अभिमान है उससे मुक्त हो सकोगे। इस जगत्में जीवोंको परलोक गमन करनेके विषयमें "देवयान और पितृयान नामके दो मार्ग हैं, तिसमें यज्ञ करनेवाले पितृयान और मोक्षार्थी लोग देवयान मार्गसे गमन करते हैं ! महर्षि लोग स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य्य आदि तपस्याके अनुष्ठानमें रत होकर शीघ्र ही शरीर त्यागके मृत्युके अधिकारसे पार होजाते हैं । इस संसारमें भोग्य विषय ही बन्धन स्वरूप है, और ये भोग्य-विषय ही कर्म्म कहके वर्णित हुए हैं ; जो लोग इस पापात्मक भोग्य विषय रूप कर्म्मसे मुक्त हो सकते हैं ; वेही उस परमपदको प्राप्त करते हैं ।

पहिले शोक मोहसे रहित तत्वदर्शी जनकने जैसा कहा था, और आज पर्य्यन्त भी जो गाथा, लोकसमाजमें वर्णनकी जाती है ; मैं उसे कहता हूं, सुनो । उन्होंने कहा था,— "अहो ! मैं अनन्त ऐश्वर्य्यका स्वामी हूं, तौभी मेरा कुछ नहीं है ; इस मिथिला नगरीके भस्म होनेसे मेरा कुछ भी न जलेगा ।" हे भीम ! इससे जैसे पर्व्वतपर चढ़नेवाला पुरुष नीचे रहनेवालोंको भली भांति देखनेमें समर्थ होता है, वैसे ही जो पुरुष ज्ञानरूपी प्रासाद पर चढ़े हैं, वे मूढ़ लोगोंको अविद्यामूल विषयोंके वास्ते महाशोक करते हुए देखते हैं ; परन्तु मन्दबुद्धिवाले मनुष्य उन्हें देखनेमें समर्थ नहीं होते । जिससे दृष्ट विषयोंका बोध अर्थात् निश्चय होता है, उसीको बुद्धि कहते हैं ; उस बोध रूपी नेत्रसे जो लोग अज्ञात विषयोंको जानते और देखकर ही उसके कर्त्तव्याकर्त्तव्यको निश्चयकर सकते हैं ; उन्हें ही बुद्धिमान् और नेत्रवान् कहा जाता है । जो स्थिर चित्तसे ब्रह्मज्ञानसे युक्त विद्वान पुरुषोंके वचनको हृदयमें धारण कर सकते हैं, सर्व्वत्र अधिक सम्मान-लाभके अधिकारको प्राप्त करनेमें समर्थ हैं । जिस समय पृथक् रूपसे बोध होनेवाले आकाश आदि भूत एक आत्मामें ही स्थित हुए दीख पड़ते हैं ; तब ही समझना चाहिये, कि सम्पूर्ण रूपसे ब्रह्मसे साक्षात्कार हुआ है, तत्वज्ञ पुरुष ही वैसी परम गतिको प्राप्त कर सकते हैं ; अल्पज्ञ, तपस्या और ज्ञान हीन पुरुष कदापि परमगति प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि ज्ञानको ही सबका मूल जानना चाहिये ।

१७ अध्याय समाप्त ।

धर्म्मराज युधिष्ठिर ऐसा ही वचन कहके चुप हुए । अर्ज्जुन उनके वचन रूपी शलाकासे पीड़ित और शोक दुःखसे अत्यन्त सन्तापित होकर फिर बोले । महाराज विदेहराज जनकका अपनी भार्य्याके सङ्ग जो कुछ वादानुवाद हुआ था, आज तक लोग उस विषयका वर्णन किया करते हैं ; मैं उस सम्वादको अर्थात् राजा जनकने जब सन्न्यास ग्रहण करनेमें सङ्कल्प किया, तब उनकी राजपत्नीने उनसे जो कुछ वचन कहे थे, उसे वर्णन करता हूं, सुनिये

विदेहराज जनकने अनेक भांतिके रत्न, पुत्र, कलत्र स्वर्गपथस्वरूप यज्ञकर्म्मोंके अनुष्ठानको त्यागके, सर्व्वत्र निर्भय, निर्म्मत्सर, निरीह और निराकाङ्क्षी होके एक मुट्ठी भ्रष्टयवसे ही जीविका निर्व्वाहके निमित्त शिर मुड़ाकर सन्न्यास धर्म्म ग्रहण करते देखकर उनकी मनस्विनी प्यारी स्त्री क्रुद्ध होकर निर्ज्जन स्थानमें उनके समीप गमन करके इस प्रकार हेतुयुक्त वचन कहने लगी। हे महाराज! आप धनधान्यसे युक्त निज राज्य परित्याग करके किस कारणसे कापालिक वृत्ति अवलम्बन करते हैं? भ्रष्ट-यवकी मुट्ठीसे जीविका निर्व्वाह करना आपके वास्ते कदापि यह उत्तम नहीं है। आपने इस वृहत् राज्यको परित्याग करके मुट्ठी भर भ्रष्ट यवचूर्णकी आशा करके "सब त्याग किया है"—यह आपकी प्रतिज्ञा और चेष्टा विपरीत हो रही है। और देखिये एक मुट्ठी मात्र भ्रष्ट यवसे आप कदापि देवता, पितर और अतिथियोंको तृप्त करनेमें समर्थ न होसकेंगे; इससे आपका सम्पूर्ण परिश्रम निष्फल होगा। आप देवता पितर, अतिथि और सबसे परित्यक्त तथा क्रियारहित होकर इस सन्न्यास धर्म्मको ग्रहण करते हैं! यह कैसा आश्चर्य है। ओहो! पहिले आप तीनों वेदोंके जानने वाले सहस्रों ब्राह्मणों और सब लोगोंके पालन करनेवाले होकर इस समय उन ही लोगोंके आसरेसे अपना उदर भरनेकी इच्छा करते हैं! आप प्रदीप्त राजश्री परित्याग करके इस समय कुत्तेकी भांति पराये अन्नकी आशा करके इधर उधर देख रहे हैं। कैसा आश्चर्य है! आपके इस प्रकार नष्ट होनेसे आपकी माता पुत्रहीन और आपकी भार्य्या कोशल राजपुत्री आज विधवाकी भांति वाध की रही हैं; और ये दरिद्र क्षत्रिय लोग धर्म्म तथा फलार्थी होकर आपकी उपासना कर रहे हैं; जब कि मोक्ष पद अज्ञात ही संशयसे युक्त है, और दैवाधीन पुरुष सब भांतिसे कर्म्म करनेमें परतन्त्र है; तब आप इन अनुयायी पुरुषोंकी आशा निष्फल करके कौनसे लोकमें गमन करनेमें समर्थ हो सकेंगे? जब आप धर्म्मपत्नीको परित्याग करके जीवन धारणकी इच्छा करते हैं, तब आप भी अत्यन्त ही पापी हैं, इसमें सन्देह नहीं है। आपको न इस लोक न परलोकमें कहीं भी मङ्गल न हो सकेगा। महाराज! आप किस कारणसे दिव्यसुगन्धयुक्त वस्तु, माला, अनेक भांतिके वस्त्र और अलङ्कारोंको त्यागके क्रियारहित होकर परिव्राजक धर्म्म ग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं? सम्पूर्ण प्राणियोंको जल तथा वृक्षकी भांति आश्रयस्वरूप होकर इस समय आप दूसरेकी उपासना करनेमें प्रवृत्त हुए हैं; क्या ही आश्चर्य है। महाराज! आपकी बात दूर रहे, पुरुषार्थरहित होके निश्चष्ट-भावसे स्थित होनेसे हाथीका भी कीड़े और मांसभक्षी जन्तु भक्षण करनेमें समर्थ होसकते हैं। जिस आश्रममें प्रविष्ट होनेसे सम्पूर्ण वस्तुओंको परित्याग करके त्रिदण्ड, कमण्डलु और कौपीन ग्रहण करना पड़ता है, जिसमें प्रविष्ट होनेसे सब त्यागके केवल भ्रष्ट-यवकी एक मुट्ठीमें ही आसक्त होना पड़ता है, उसमें आपकी किस कारणसे प्रवृत्ति हुई है? यदि कहिये कि एक मुट्ठी अन्न और राज्य आदिमें मेरी सम दृष्टि है, तब आप किस कारणसे राज्य आदि त्याग करके केवल एक मुट्ठी भ्रष्टयवमें आसक्त हो रहे हैं? और यदि आपको ऐसा ही प्रयोजन है, तो "सर्व्वत्यागी हुआ हूं"—कहके आपने जो प्रतिज्ञा की है, वह व्यर्थ हो रही है। यदि आप केवल एक मात्र चिदानन्दमें अपने मनको स्थिर समझते हैं; तो ऐसा होनेसे "मैं तुम्हारा कौन हूं? और तुम्ही मेरे कौन हो" अर्थात् इस चिदाभासके परस्परका सम्बन्ध किस प्रकार रह सकता है? इससे कोई वस्तु तथा व्यक्ति विशेषमें आसक्त वा

विरक्त होना आपको किसी प्रकार भी उचित नहीं है। यदि अनुग्रह करना ही आपका कर्त्तव्य कर्म होवे, तो आप कृपाकरके इस पृथ्वीको ही शासन कीजिये। जो लोग सुखार्थी पर निर्द्धन, तथा अत्यन्त दरिद्र हैं और समस्त बन्धु बान्धवोंसे परित्यक्त होकर दण्ड कमण्डल आदि चिन्होंको धारण करके संन्यास ग्रहण करते हैं; उनके चिन्हको देखकर जो पुरुष उस भांति व्यवहार करनेमें प्रवृत्त होते हैं, अर्थात् मन्दिर, उत्तम शय्या, सवारी, उत्तम वस्त्र और अलङ्कार आदि त्यागके दण्ड कमण्डल ग्रहण करते हैं उनका वह त्याग केवल विडम्बना मात्र है। हे महाराज! जो पुरुष सदा दान ग्रहण करता और जो पुरुष सदा दान देता है, उन दोनोंके बीच कौन श्रेष्ठ है? उन दोनोंका आपसमें कितना दूरका अन्तर है; उसे विचार करके देखिये तो सही, ऐसा होनेसे अवश्य जान सकेंगे। परन्तु दम्भी और सदा मांगनेवालेको धन दान करनेसे जलती हुई अग्निमें आहुति डालनेकी भांति वह दान निष्फल होता है। जैसे अग्नि बिना किसी वस्तुको जलाये शान्त नहीं होती, वैसे ही भीख मांगनेवाले ब्राह्मण बिना कुछ प्राप्त हुए निवृत्त नहीं होते। दाताका अन्न ही साधु सन्यासियोंका जीवन-स्वरूप है, क्योंकि उन लोगोंका स्वयं बनाके भोजन करनेकी विधि नहीं है। इससे यदि राजा दाता न होवे, तो कैसे मोक्षार्थी पुरुषोंका जीवन धारण हो सकेगा? इस पृथ्वीपर जिसके घरमें अन्न है, वेही गृहस्थ कहे जाते हैं, भिक्षुक लोग उन्हीं सम्पूर्ण गृहस्थोंके आसरे शरीरयात्रा निर्व्वाह करते हैं; समस्त प्राणी अन्नसे ही जीवन धारण करनेमें समर्थ होते हैं इससे अन्नदाता प्राणदाता स्वरूप है। गृहस्थाश्रमसे निकलकर जितेन्द्रिय सन्यासी लोग गृहस्थ पुरुषोंके अवलम्बसे ही शरीरयात्रा निर्व्वाह करते हुए प्रतिष्ठा और योग प्रभावको प्राप्त कर सकते हैं। महाराज! समस्त वस्तुओंके परित्याग करने, सिर मुड़ाने और भीख मांगनेसे कोई संन्यासी नहीं हो सकता; जो लोग सरलभावसे सम्पूर्ण विषय युक्त सुखोंको परित्याग करनेमें समर्थ होसकते हैं, उन्हेंही सन्यासी कहना चाहिये। जो भीतरसे समस्त वस्तुओंमें आसक्तिरहित होकर बाहरसे आसक्तिकी भांति व्यवहार करते तथा मित्र शत्रुको समान जानते हैं, वे सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्त हो सकते हैं, और वैसे सङ्गरहित पुरुषका ही मुक्त कहा जा सकता है। मूर्ख लोग बहुतसे आशापाशमें बंधकर शिष्य और मठ आदि विषय प्राप्त होनेकी अभिलाषासे कषाय वस्त्र धारण और सिर मुड़ाके संन्यासधर्म्म ग्रहण करते हैं, परन्तु जो लोग त्रिविद्या, वार्त्ताशास्त्र और पुत्रकलत्रको त्यागके त्रिदण्ड भस्म तथा कषाय आदि वस्त्रोंको धारण करते हैं; वे अत्यन्त ही मूर्ख हैं। महाराज! संन्यासधर्म्म पवित्र होनेपर भी उसे ग्रहण करके सिर मुड़ाना गेरुये वस्त्रोंको धारण करना केवल जीविका निर्व्वाहके ही वास्ते जानना चाहिये, मेरे विचारमें जीविका निर्व्वाह मात्र ही उन लोगोंका पुरुषार्थ है, इससे आप इन्द्रियोंको अपने वशमें करके गेरुए वस्त्र, मृगछाला और कौपीन धारण करनेवाले, तथा नङ्ग, सिर मुड़े और जटाधारी आदि साधु संन्यासियोंका प्रतिपालन करते हुए इस लोक और परलोकको जय करनेमें प्रवृत्त होइये। जो मोक्ष प्राप्त होनेके वास्ते अग्निहोत्र, पशु और दक्षिणायुक्त यज्ञोंका अनुष्ठान तथा प्रतिदिन दान करते हैं, उनसे बढ़कर अधिक धर्म्मात्मा कौन है? विदेहराजकी भार्य्या इतनी कथा कहके चुप होगई।

अर्जुन बोले, हे धर्म्मराज! देखिये, विदेहराज जनक इस पृथ्वीपर तत्वज्ञ कहके विख्यात हुए थे, परन्तु वह भी कर्त्तव्य कर्म्मसे निर्णयके मोहको प्राप्त हुए थे; इससे आप मोह परि-

महर्षि शङ्ख अपने आश्रमसे किसी दूसरे स्थान-पर गये थे; अनन्तर ऋषि लिखित शङ्खके आश्रममें पहुंचके पके हुए फलोंको तोड़ने लगे और उन फलोंको ग्रहण करके प्रसन्न-चित्तसे भोजन करनेमें प्रवृत्त हुए। इतने ही समयमें शङ्ख ऋषि अपने आश्रममें आके उप-स्थित हुए और लिखित ऋषिको फल खाते देखकर उनसे पूछा कि, तुम किस कारणसे फल खा रहे हो! इन फलोंको तुमने कहां पाया? तब छोटे भाई लिखित अपने बड़े भाई शङ्खके समीप जाकर उन्हें प्रणाम करके हंसते हुए यह वचन बोले कि, हे महात्मन्! मैंने आपके इस आश्रमसे ही फल ग्रहण किया है। उनसे ऐसे वचनको सुनके महर्षि शङ्ख अत्यन्त कुपित होके बोले, हे भाई! मेरे न रहनेपर तथा बिना मेरी आज्ञाके इन फलोंको ग्रहण करनेसे तुम्हें चोरीका पाप लगा है; इससे दण्डित होनेके वास्ते अब तुम राजाके समीप गमन करो; और वहां जाकर अदत्त ग्रहण रूपी अपने पाप कर्मको सुना कर कहना कि, हे महा-राज! आप मुझे चोर करके निश्चित कीजिये और राजधर्मको पालन करते हुए शीघ्र ही मुझे चोरीके अनुसार दण्ड दीजिये। अनन्तर व्रत करनेवाले महात्मा लिखितने अपने जेठे भाईकी ऐसी आज्ञा सुनकर राजासुद्युम्नके समीप गमन किया। राजा सुद्युम्न द्वारपालके सुखसे धर्मज्ञ पुरुषोंमें अग्रणी लिखित ऋषिके आगम-नका वृत्तान्त सुनकर अपने अनुयायी पुरुषोंके सहित पैदल ही द्वारपर आके बोले, हे भग-वन्! किस अभिप्रायसे यहां आपका आगमन हुआ है? आपकी क्या आज्ञा है? राजा सुद्यु-म्नके वचनको सुनके महर्षि लिखित बोले, महाराज! पहिले "जो कार्यकी आज्ञा होगी, उसे मैं करूंगा" आप ऐसी प्रतिज्ञा कीजिये, तब पीछे मेरे मुखसे सुनकर उसे पालन करिये, मैंने अपने भाईकी अनुमतिके बिना उनके आश्रममें जाके फल ग्रहण करके भक्षण किया है, शीघ्र ही मेरे ऊपर दण्ड प्रयोग कीजिये। महाराज सुद्युम्न बोले, हे भगवन्! "राजाके दण्डप्रयोग करनेसे ही पापकी शान्ति होती है" यदि आपको ऐसा स्थिर ज्ञान होवे, तो राजाके क्षमा करने पर भी उस पापकी शान्ति होती है,—ऐसा ही समझिये। आप महा-व्रत करनेवाले ब्राह्मण हैं; मैंने आपके अपरा-धको क्षमा किया, उससे आप पापरहित हुए। इस समय आपकी दूसरी और कौनसी अभि-लाषा है, उसे वर्णन कीजिये। मैं आपकी समस्त कामना पूर्ण करूंगा।

वेदव्यास मुनि बोले, हे धर्मराज! महात्मा पृथ्वीनाथ सुद्युम्नने इस भांति अपराध क्षमा करके लिखित ऋषिको सम्मानित किया; तो भी महर्षि लिखित उनके निकट दण्डके अति-रिक्त और किसी विषयकी भी अभिलाषा नहीं की, तब राजा सुद्युम्नने दण्ड धारण करके महात्मा लिखितके दोनों हाथ काट दिये। अनन्तर लिखित ऋषि भुजा कटनेसे विकल होके अपने जेठे भाई महर्षि शङ्खके समीप गमन करके यह वचन बोले। हे महात्मन्! मैंने राजाके निकट जाके उचित दण्ड पाया है, अब आप मेरे अपराधको क्षमा कीजिये, छोटे भाईके वचनको सुनकर महर्षि शङ्ख बोले, हे भ्राता! तुमने मेरा कुछ भी अनिष्ट नहीं किया था, और मैं भी तुम्हारे ऊपर कुपित नहीं हुआ था; तुम धर्मसे भ्रष्ट हुए थे, इस ही कारण मैंने तुम्हें उस पापसे मुक्त किया है। इस समय शीघ्र ही बाहुदा नदीमें जाके देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करो, अब कदापि ऐसी बुद्धि न करना। अनन्तर महर्षि लिखितने अपने बड़े भाई शङ्खके वचनको सुनके बाहुदा नदीमें जाकर स्नानकरके ज्यांही तर्पण करनेकी इच्छा किया, त्योंही सहसा अङ्गुलियोंसे युक्त उनके दोनों हाथ प्रकट होगये, उससे लिखित अत्यन्त

विस्मित होकर अपने बड़ेभाई शङ्खके समीप,आके नवीन उत्पन्न हुए अपने दोनों हाथोंको दिखाया। महर्षि शङ्ख उनके दोनों हाथोंको देखकर बोले, हे भ्राता ! मेरे तपके प्रभावसे तुम्हारे दोनों हाथ फिर उत्पन्न हुए हैं ; यह कुछ भी आश्चर्य्यका विषय नहीं है, क्यों कि दैव ही इस विषयके विधोंको करनेवाला है। अनन्तर लिखित ऋषि बोले, हे तेजस्विन् ! जब कि आपका ऐसा तप प्रभाव है, तब आपने पहिले ही क्यों नहीं मुझे इस पापसे मुक्त किया ? ऐसा होनेसे राजाके समीप मुझे न जाना पड़ता। शङ्ख बोले, हे भ्राता ! उस विषयमें यदि मुझे अधिकार होता, तो मैं अवश्य ही तुम्हें यहां ही उस पापसे मुक्त कर देता ; परन्तु मैं तो तुम्हारा राजा नहीं हूं, जो दण्ड प्रयोग करके तुम्हें चोरीके पापसे मुक्त कर देता ; इस कारणसे मैंने तुम्हें राजाके समीप भेजा था। तुम्हारे ऊपर बिधिपूर्व्वक दण्ड प्रयोग करके राजा सुद्युम्न और तुम, अर्थात् तुम दोनों ही पितरोंके सहित मुक्त हुए।

वेदव्यास मुनि बोले, हे पाण्डवश्रेष्ठ ! मैंने जो कुछ तुम्हारे समीप वर्णन किया ; उस भांति कर्म्मके प्रभावसे राजा सुद्युम्नने दक्ष प्रजापतिकी भांति इस लोकमें प्रतिष्ठा और परलोकमें परम सिद्धि प्राप्त की थी। प्रजाको पालन करना ही क्षत्रियोंका धर्म्म है, इसके अतिरिक्त तुम दूसरे को कुपथ समझो। तुम धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंमें अग्रगण्य हो, इससे अपने भाई अर्ज्जुनके वचनकी रक्षा करो। अब शोक मत करो, प्रजाको पालन करनेके निमित्त राजदण्ड धारण करना ही क्षत्रिय धर्म्म है; शिर मुड़ाना राज धर्म्म नहीं है।

२३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर महर्षि वेदव्यास अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरको उपदेश करनेमें फिर प्रवृत्त होकर यह वचन बोले, हे पुत्र ! हे युधिष्ठिर ! वनमें वास करनेके समय तुम्हारे भाइयोंकी जो कुछ अभिलाषा थी उसे सफल करना इस समय कर्त्तव्य है ; इससे तुम नहुष-पुत्र राजा ययातिकी भांति पृथ्वीको पालन करनेमें प्रवृत्त होजाओ। पहिले तुम लोगोंने तपस्यामें रत होके जङ्गलमें वास करते हुए केवल महादुःख भोग किये थे, इस समय वह महादुःख बीत गया ; इससे कुछ दिनतक सुख अनुभव करो। हे भारत ! तुम अपने भाइयोंके सङ्ग मिलकर कुछ दिनोंतक धर्म्म, अर्थ और कामका सेवन करो ; अनन्तर फिर वनको प्रस्थान करना। आगे देवता, पितर और प्रार्थी लोगोंके ऋणको चुकाओ ; पीछे वाणप्रस्थ आदिक धर्म्मोंमें क्रमसे प्रवृत्त होना। हे महाराज ! तुम अश्वमेध और सर्व्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करो, ऐसा होनेसे पीछे परम गतिको प्राप्त होगे, और तुम अपने भाइयोंको अनेक दक्षिणासे युक्त यज्ञोंमें दीक्षित करो, ऐसा होनेसे इस लोकमें भी अतीव कीर्त्ति प्राप्त कर सकोगे। हे राजन् ! जिस कार्य्यको करनेसे तुम किसी प्रकार फिर धर्म्मसे भ्रष्ट न होसकोगे ; उस विषयमें मैं विशेष उपदेश वचन कहता हूं, चित्त थिर करके सुनो। जो परधन हरनेवाले डाकू समान मनुष्य हैं, वेही राजाओंको युद्ध आदि कार्य्योंमें नियुक्त होनेको व्यवस्था देते हैं।

जो राजा शास्त्रजनित बुद्धि अवलम्बन करके देशकालकी प्रतीक्षा करके डाकुओंके विषयमें भी क्षमा करते है, उन्हें कदापि पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता ; और जो राजा राज्यका छठवां भाग ग्रहण करके भी यथा रीतिसे राज्यकी रक्षा नहीं करते, वे प्रजाके पापका चौथा भाग ग्रहण करते हैं हे युधिष्ठिर ! राजा लोग शास्त्रकी आज्ञाको उल्लङ्घन करनेसेही धर्म्म भ्रष्ट होते हैं ; और शास्त्रके अनुकूल कार्य्य कर-

वैसे निर्भय होकर समय व्यतीत कर सकते हैं। जो शास्त्रमें कही हुई रीतिको अवलम्बन कर काम, क्रोध त्यागके निरपेक्ष होकर पिताकी भांति प्रजा पालनमें तत्पर होते हैं, वे कदापि पापयुक्त कर्म्मोंमें लिप्त नहीं होते। यदि राजा उपस्थित कार्य्यमें दैवी-संयोगसे किसी कर्म्मके करनेमें असमर्थ होजावे, तो ऐसा होनेसे उसी कार्य्य अतिक्रमकारी नहीं कहा जा सकता। बल बुद्धि वा कौशलसे शत्रुको पराजित करना उचित है ; राज्यके बीच जिससे पाप कर्म्म न बढ़ने पावे और सदा पुण्य-कर्म्मोंका सोता बहता रहे ; उस विषयमें यत्नशील होना उचित है। वीर पुरुष, पुण्यकर्म्म करनेवाले साधु, विद्वान, वैदिक कर्म्मोंके जाननेवाले ब्राह्मणों और धनी वैश्योंकी विशेष यत्नके सहित पालन करना उचित है। व्यवहार और धर्म्म कार्य्योंमें बहुदर्शी पुरुषोंको नियुक्त करना उचित है, परन्तु अनेक गुणोंसे युक्त होनेपर भी एकही पुरुषका सम्पूर्णरूपसे विश्वास करके कार्य्य करना उचित नहीं। जो राजा आशाके वशमें गर्व्वित, अभिमानी और विजयरहित होकर प्रजाका पालन नहीं करते, वे महाघोर पापमें फंसके लोकसमाजमें अधर्म्मी कहके विख्यात होते हैं। जहां प्रजा यथा रीतिसे रक्षित नहीं होती, दैवकी प्रति कूलता अर्थात् राज्यमें अनावृष्टि आदि अनेक उपद्रवोंसे दुःखित तथा चोर डाकुओंसे पीड़ित होती है ; उस स्थलमें सम्पूर्ण अनिष्टजनित पाप राजाको ही स्पर्श करता है। हे युधिष्ठिर ! उत्तम मन्त्रणा और श्रेष्ठनीति अवलम्बन करके भली भांति विचार कर पुरुषार्थके सहित कार्य्य करनेसे कदापि अधर्म्मका सञ्चार नहीं होता। अनुष्ठित कर्म्म सिद्ध भी हो सकते हैं और दैवकी प्रति कूलतासे वे सब निष्फल भी हो सकते हैं ; परन्तु यत्नमें त्रुटि न होनेसे राजाका पाप ग्रस्त नहीं होना पड़ता। महाराज ! जैसे अतिही कठिन कर्म्मोंके करनेवाले राजर्षि हयग्रीवने संग्रामभूमिमें अनगिनत शत्रुओंका वध करके अन्तमें सहाय-रहित, होकर प्राण त्याग किया था, उसे मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, सुनो ! राजा हयग्रीव बहुतसे सत्कार्य्योंको करके अन्तमें युद्धभूमिमें प्राण त्याग कर उत्तम कीर्त्ति प्राप्तकर स्वर्गलोकमें सदा सुखभोग कर रहे हैं ; अधिक क्या कहें, जिसके किये हुए सम्पूर्ण कर्म्मोंको जाननेसे ही प्रजा पालन और शत्रुओंके पराजित करनेके उत्तम उपाय मालूम हो सकते हैं ? पुण्यकर्म्मोंके प्रभावसे सिद्ध मनोरथ महात्मा हयग्रीव काल क्रमसे डाकुओंके वश आनेसे शस्त्र ग्रहणकर महाघोर युद्ध करके उनके शस्त्रोंका चोटसे क्षत विक्षत होकर शरीर त्यागके स्वर्गवासके सुखको भोग रहे हैं ; राजसिंह तपस्वी हयग्रीव रणरूपी यज्ञकी अग्निमें अनगिनती शत्रुओंकी आहुति देके पापरहित होकर अन्तमें अपना प्राण होमकर यज्ञ समाप्त करके देवलोकमें सुख भोग रहे हैं ; उस यज्ञमें धनुषही यूप, शोदा यूपवेष्टन, बाण-स्रुक ; तलवार स्रुवा, देहसे झरता हुआ रुधिर ही घृत स्वरूप, रथही वेदी युद्धमूलक क्रोध ही अग्नि और रथके चारों घोड़ेही चातुर्होत्रस्वरूप थे। उस महात्मा यज्ञ करनेवाले राजाने उत्तम नीति और बुद्धिकौशलमें राज्यको पालनकर सम्पूर्ण लोकोंमें कीर्त्ति स्थापित करके अन्तमें प्राणत्याग किया था। उन्होंने विषयासक्तिको त्याग और योगप्रभावसे दैवी और मानुषी सिद्धि प्राप्त करके दण्डनीति अवलम्बन करके पृथ्वी पालन किया था ; और यथारीतिसे सब वेद शास्त्रोंको पढ़के चारों वर्णोंकी प्रजाको यथा योग्य धर्म्मके कार्य्योंमें स्थापित किया था ; वह श्रद्धा और कृतज्ञताके सहित कर्म्मोंका अनुष्ठान करके ध्यानके प्रभावसे मेधावी तत्वज्ञ पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य श्रेष्ठ लोकमें गमन करके सुख भोग रहे हैं। राज्य

करनेके समयमें उन्होंने अनेक बार संग्राममें जय प्राप्त किया था, बहुतसे सोमरस पान, उत्तम ब्राह्मणोंको तृप्ति और युक्तिपूर्वक दण्ड धारण करके प्रजाको पालन किया था। विद्वान् पुरुष आजतक जिनके प्रशंसनीय चरित्रोंकी अत्यन्त प्रशंसा किया करते हैं, वह महात्मा राजा निज कीर्त्ति तथा पुण्यके प्रभावसे सिद्धि प्राप्त और स्वर्गलोकमें गमन करके वहां पर वीरपुरुषोंके प्राप्त होने योग्य सुख भोग कर रहे हैं।

२४ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मराज युधिष्ठिर अर्ज्जुनको कुपित देखके तथा व्यासदेव मुनिके वचनको सुनकर महर्षि द्वैपायन मुनिसे बोले, हे महर्षि! मेरा चित्त इस समय शोकसे अत्यन्त ही दुःखित हो रहा है, इससे इस सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्य और अनेक भांतिके भाग्य वस्तुओंको प्राप्त करनेसे भी मुझे किसी भांति तृप्ति नहीं होती है। और पति और पुत्रोंसे रहित स्त्रियोंके विलापको सुनकर मेरे चित्तमें किसी प्रकारसे भी शान्ति प्राप्त नहीं होती है।

राजा युधिष्ठिरके ऐसे वचनको सुनकर योगियोंमें अग्रगण्य धर्म्म ज्ञानसे युक्त सम्पूर्ण वेदोंके जानने वाले महा बुद्धिमान वेदव्यास मुनि उनसे बोले, महाराज! कोई पुरुष कर्म्म वा यज्ञ कार्य्योंसे कुछ भी प्राप्त नहीं कर सक्ता और न कोई पुरुष किसीको दान कर सक्ता है; विधाता ही समयके अनुसार सब पुरुषोंके प्राप्तिका विधान करता है, और उस विधाताके नियत किये हुए समय पर ही मनुष्य समस्त वस्तुओंको पा सकते हैं। समय उपस्थित न होनेसे विद्या वा बुद्धिके प्रभावसे कोई धन लाभ करनेमें समर्थ नहीं हो सकता और समयके अनुसार मूर्ख पुरुष भी धन प्राप्त कर सकता है, इससे सम्पूर्ण कार्य्योंके सिद्धिमें कालको ही निरपेक्ष समझिये, अर्थात् काल समयानुसार मूर्ख और पण्डितको समान रूपसे फल प्रदान करता है। जब पुरुषोंके दुःखका समय रहता है, तबतक विज्ञान, मन्त्र औषधि आदि कोई वस्तु भी फल प्रदान करनेमें समर्थ नहीं होती; और जब अभ्युदयका समय आता है, तब वे ही सब मन्त्र, औषधि आदि गुणकारी होके सिद्धिप्रद होती हैं। कालके प्रभावसे वायु प्रचण्ड वेगसे बहता है, बादल जलकी वर्षा करते, तालाब कमलों तथा नील-पद्म आदि पुष्पोंसे परिपूर्ण होते और वृक्षादिक फल फूलोंसे युक्त होते हैं इसी भांति कालके प्रभावसे कभी चन्द्र बिम्ब सोलह कलासे पूर्ण होता, कभी रात्रि महाघोर अन्धकारसे युक्त और कभी निर्म्मल ज्योतिसे विभूषित होती है, महाराज! बिना समय पहुंचे वृक्षादिक फूलने फलनेमें असमर्थ होते हैं, नदियां प्रबल वेगसे बहनेमें समर्थ नहीं होतीं। हाथी अश्व आदि पशु सर्प तथा पक्षी बिना समय पहुंचे संयोगकी अभिलाषा नहीं करते। इसी भांति स्त्रियोंके गर्भ, शरद-बसन्त आदि ऋतुओंका समागम, जीवोंके जन्म और मृत्यु, बालकोंके मुंहसे पहिले पहल वचन निकलना, युवा अवस्थाका आगमन, बोए हुए बीजके अंकुर, मरीचि मालि सूर्य्यका उदय और अस्त होना, शीत किरण-धारी चन्द्रमाकी कला और तरङ्गमालासे युक्त समुद्रके तरङ्गोंकी घटती बढ़ती बिना समय पहुंचे कदापि नहीं होसकती। महाराज! राजा सेनजित्‌ने दुःखित होकर जो वचन कहा था, आजतक सब कोई उस गाथा को कीर्त्तन किया करते हैं; मैं उस ही पुराने इतिहासको तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, सुनो! उन्होंने कहा था, समयानुसार समस्त प्राणीको स्पर्श करता है, पृथ्वीकी सम्पूर्ण वस्तु कालके प्रभावसे अपने समय पर नष्ट होजाती हैं। एक पुरुष किसी पुरुषका वध करता है, और काल उसको

वह भी दूसरेके हाथसे मारा जाता है, यथार्थमें कोई किसीको नहीं मारता और न कोई किसीके मारनेसे मरता है, तब कोई कोई ऐसा समझते हैं, कि "अमुक पुरुषने अमुक का वध किया," और कितनेही बुद्धिमान पुरुष ऐसा समझते हैं, कि इस जगत्में कोई किसीका वध करनेवाला नहीं है ; क्योंकि स्वभाव ही प्राणियोंके जन्म और मृत्युके विषयमें कारण है। मूर्ख लोग धन क्षय होने तथा पिता माता वा पुत्र स्त्री आदिकी मृत्यु होनेपर "अहो ! कैसा दुःख है ? हाय क्या हुआ ?" ऐसा ही समझके बीते हुए दुःखोंको केवल पुष्ट करते रहते हैं ; इससे तुम क्यों मरण-धर्मशील कौरव और पाञ्चाल आदिक युद्धमें मरे हुए पुरुषोंके निमित्तशोक कर रहे हो ? विचार कर देखो, कि भय और शोककी जितनी बार आलोचना की जावे उतने ही बार उसकी अधिक बढ़ती होगी "इस शरीर वा पृथ्वीमें जो कुछ वस्तु है, उसमें कुछ भी मेरा नहीं है ; अथवा इसमें जैसा मुझे अधिकार है, वैसा ही दूसरेको भी है"—पण्डित लोग ज्ञानसे इसी भांति विचार करके किसी वस्तुमें मोहित नहीं होते। इस पृथ्वीपर मूढ़ पुरुष ही सैकड़ों शोक और सहस्रों भांतिके हर्ष आदि विषयोंमें मोहित होते हैं ; परन्तु पण्डितोंको ये हर्ष शोकादि कदापि मोहित नहीं कर सकते ये सब हर्ष आदिके विषय समयके अनुसार कभी प्रिय कभी अप्रियरूपसे मालूम होते हैं, इसी भांति वेही कभी सुख कभी दुःख रूपको धारण करके सम्पूर्ण जीवलोकोंमें भ्रमण किया करते हैं। मूढ़ पुरुषोंको आशा भङ्ग होनेसे ही दुःख और अभिलषित वस्तु मिलनेसे सुख प्राप्त होता है ; परन्तु यथार्थमें यह संसार केवल दुःखको ही स्थान है, इसमें सुख कुछ भी नहीं है ; इस कारण प्रायः दुःखको ही अधिकता दीख पड़ती है। संसारमें आसक्त रहने वाले जीवोंको सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके अनन्तर सुख प्राप्त होता है, वे कदापि सदाके वास्ते सुख वा दुःख भोगी नहीं होवे। इसी भांति कभी सुख कभी दुःख अवश्य ही प्राप्त होता रहता है ; इससे जो पुरुष नित्य-सुखकी इच्छा करते हैं। उन्हें इस अनित्य सुख तथा दुःख दोनोंको ही त्यागना उचित है। जिसके कारणसे दुःख जनित शोक और सन्ताप आदि अनेक-क्लेश उपस्थित होते हैं ; उसके एक अङ्गको भी अन्तःकरणमें रहने देना योग्य नहीं है। महाराज ! सुख, दुःख, प्रिय वा अप्रिय, जिस समयमें जो उपस्थित होवे, धीरज युक्त चित्तसे उसे भोगना ही उचित है। हे सौम्य ! स्त्री पुत्र आदि स्वजनोंके प्रियकार्य्य साधनमें तनिक त्रुटि करनेसे मालूम होसकता है, कि इस संसारके बीच कौन किस कारणसे किस भांति किसीका आत्मीय बान्धव हुआ है ? इस पृथ्वीपर जो लोग अत्यन्त ही मूढ़ हैं, और जिन्होंने परमात्म ज्ञान प्राप्त किया है, वे दोनों सम्प्रदायके पुरुष ही सुख पूर्वक समयको व्यतीत करते हैं ; मध्यवर्त्ती अर्थात् अर्द्धज्ञानी पुरुष ही नाना भांतिके क्लेशोंसे क्लेशित होते हैं। हे राजन् ! धर्मसुख और दुःखके कारणोंको जाननेवाले पर और अपर विषयोंके ज्ञाता महाबुद्धिमान राजा सेनजित्ने ऐसा ही वचन कहा था। जो पुरुष सदा पराये दुःखसे दुःखी होता है, वह कभी भी सुख प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। दुःखका कभी भी नाश नहीं होता, पर्य्याय क्रमसे दुःख, सुख, सम्पत्ति, विपत्ति, हानि, लाभ, जन्म और मृत्यु सम्पूर्ण जीवोंको ही प्राप्त होती हैं ; इससे पण्डित लोग उसमें शोकित वा आनन्दित नहीं होते। पण्डित लोग राजाओंके निमित्त युद्ध ही यज्ञ, दण्डनीतिकी आज्ञा चलाकी ही योग, यज्ञ आदि कर्म्मोंमें धन दानकी ही सन्न्यास कहके वर्णन करते हैं ; अर्थात् समझना चाहिये, कि इन्हीं सम्पूर्ण

कार्य्योंसे उनकी पवित्रता होती है। जो यज्ञ करनेवाले, महात्मा राजा बुद्धिके अनुसार राज्यकी रक्षा, समस्त प्राणियोंके ऊपर समदृष्टि, युद्धमें जयलाभ, यज्ञमें सोमरस पान, युक्तिके सहित दण्ड प्रयोग, यथा रीतिसे वेद और शास्त्रोंको पढ़ना, चारों वर्ण की प्रजाको यथा रीतिसे स्वधर्म्ममें स्थापित करना इत्यादि कर्म्मोंको करके प्रजाके सुख समृद्धिकी उन्नति करते हुए अन्त समयमें युद्धभूमिके बीच शरीर त्याग करते हैं, वे अवश्य ही देवताओंके सङ्ग मिलके स्वर्ग लोकमें परम सुख भोग करते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। जिस राजाके परलोक गमन करनेके अनन्तर पुर तथा जनपदवासी समस्त प्रजा, और राज्यके सेवक लोग उसके चरित्रोंकी प्रशंसा किया करते हैं; उसे राजसत्तम समझना चाहिये।

२५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजय! उस समय उदारबुद्धिवाले राजा युधिष्ठिर अर्जुनसे यह युक्ति-पूरित वचन बोले,—हे अर्जुन! तुम जो ऐसा समझते हो, कि धनसे बढ़के कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, और निर्द्धन पुरुषोंको स्वर्ग, सुख तथा अर्थ लाभ नहीं होसकता,—यह तुम्हारी भ्रान्ति मात्र है। इस पृथ्वीपर अनेक मुनि तपस्याके प्रभावसे ही सनातन स्वर्गलोकमें गये हैं, और बहुतेरे पुरुषोंको केवल स्वाध्यायरूप यज्ञसे ही सिद्धि प्राप्त होती देखी गई है। जो लोग ब्रह्मचर्य्य व्रतमें स्थित, और सदा स्वाध्यायमें रत होके सब धर्म्मोंके जाननेवाले होते हैं; देवता लोग उन्हें ही ब्राह्मण समझते हैं। हे अर्जुन! तुम स्वाध्याय-निष्ठ तथा ज्ञाननिष्ठ ऋषियोंको यथार्थ धर्म्मात्मा समझो और ज्ञाननिष्ठ पुरुषोंके उपदेशके अनुसार ही समस्त कार्य्योंको करना उचित है। वैखानस ऋषियोंका विषय भी इस प्रकारसे सुना गया है, कि अज, पृश्नि, सिकत, अरुण और केतु आदि वाणप्रस्थ आश्रमी ऋषियोंने केवल स्वाध्यायके प्रभावसे ही स्वर्गलोकमें गमन किया है; जो लोग वेदमें कहीहुई रीतिके अनुसार यज्ञ, दान, अध्ययन और कठिन इन्द्रिय-निग्रह आदि कार्य्योंके अनुष्ठानमें रत रहते हैं, वे सूर्य्यके दक्षिण मार्गके सहारे स्वर्गलोकमें गमन करते हैं; कर्म्मपरायण पुरुषोंकी ऐसी ही गति वर्णित है, इसे मैंने पहिलेही तुमसे कहा है; और जिसे उत्तर पथ समझते हो; उसी अवलम्बन करके योगी लोग नियम आदि योगके प्रभावसे उस प्रकाशमय सनातन लोकमें गमन करते हैं; इस कारण पहिले समयके आचार्य्योंने उत्तर पथकी ही अधिक प्रशंसा किया करते हैं। सन्तोषसे ही पुरुषोंको स्वर्ग और परम सुख प्राप्त होते हैं, सन्तोषसे बढ़के दूसरी कुछ भी वस्तु श्रेष्ठ नहीं है; क्रोध हर्षसे रहित योगियोंके निमित्त सन्तोष ही परम प्रतिष्ठा और उत्तम सिद्धिस्वरूप है; इस विषयमें राजर्षि ययातिका कहा हुआ एक प्राचीन इतिहास है, श्रवण करो! उसके सुननेसे सम्पूर्ण वासना कूर्म्मअङ्गकी भांति भीतर ही लीन हो जाती हैं। जब योगी पुरुष इस जगत्‌के बीच किसी जीवसे भयभीत नहीं होते और न उनसे ही कोई प्राणी भय करते हैं; तथा जब कि उन्हें किसी वस्तुमें भी इच्छा द्वेष नहीं उत्पन्न होता तभी जानना चाहिये, कि उन्हें ब्रह्मप्राप्ति होगी। और जब वचन, मन तथा कार्य्यसे प्राणी मात्रके अनिष्ट चिन्तामें प्रवृत्ति नहीं होती तबही वे निश्चय ब्रह्मस्वरूप प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। जिनके हृदयसे अभिमान और मोह नष्ट होजाता है, उन आसक्तिरहित आत्म ध्यानसे युक्त साधु पुरुषोंको निर्व्वाण मुक्ति प्राप्त होसकती है। हे धनञ्जय! मैं और एक कथा वर्णन करता हूं, चित्त लगाके सुनो। इस जगत्‌के

बीच कोई धर्म कोई धन और कोई कोई सदाचारकी इच्छा करते हैं ; परन्तु धन जांचके धर्मोपार्ज्जनकी इच्छा करनेकी अपेक्षा उसका अनुष्ठान न करना ही उत्तम है ; क्यों कि अर्थसे ही अनेक भांतिके दोष उत्पन्न होते हैं ; इससे धनसे सिद्ध होनेवाले यज्ञ आदिक कर्म्म भी उस कारणसे दोषयुक्त होजाते हैं ; इसमें कुछ सन्देह नहीं है। इस विषयको मैंने परीक्षा करके देखा है, तुम्हें भी परीक्षा करके देखना उचित है। जो धनकी अभिलाषा करनेवाले हैं ; उन्हें अवश्य त्याग करने योग्य विषयोंको त्याग करना भी अत्यन्त कठिन होजाता है। जो धनवान हैं, उनसे सत्कर्म्मोंका अनुष्ठान होना अत्यन्त दुर्लभ है, क्यों कि दूसरेके अनिष्टके बिना धन कदापि नहीं मिल सकता और धन प्राप्त होनेसे चोर आदिकोंसे अनेक भांतिके भयकी सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त दुराचरी डाकू लोग स्नेह और भयको त्यागके थोड़ेसे धनके वास्ते भी मनुष्योंके ऊपर अनेक भांतिके अत्याचार करते हैं ; परन्तु उसमें जो उन लोगोंकी ब्रह्महत्या आदि महाघोर पापमें लिप्त होना पड़ता है ; उसे नहीं जान सकते। अर्थसे आसक्त पुरुषोंको यह धन इतना प्यारा है, कि वे लोग दुर्लभ धनको पाकर अपने सेवकोंको उचित वेतन देकर भी ऐसे सन्तापित होते हैं जैसे डाकुओंसे धन लुटे जानेपर सब कोई शोकित होते हैं। और वेतन न देनेसे भी सेवक लोग वैसे लोभी अपने स्वामीकी निन्दा करते हैं। और देखिये, निर्धन मनुष्यको कोई भी कुछ नहीं कह सकता, वह मुक्त पुरुष जो कुछ प्राप्त होवे, उसहीमें सन्तुष्ट होकर सब भांतिसे सुखी रहता है परन्तु धनसे कोई भी सुख प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता।

" प्राचीन विषयोंके जाननेवाले पण्डितोंने यज्ञ विषयको भी जिस प्रकार विस्तारपूर्व्वक वर्णन किया है, उसे कहता हूं ; सुनो। विधाताने यज्ञके निमित्त धन प्रकट किया, और धनकी रक्षा करनेके वास्ते पुरुषको उत्पन्न किया है ; इससे सम्पूर्ण धन यज्ञमें ही समर्पण करना उत्तम है ; भोग आदि अभिलाष पूर्ण करनेमें धन व्यय करना उचित नहीं है। हे अर्ज्जुन ! विधाता यज्ञ करनेके ही वास्ते मनुष्योंको धन प्रदान करते हैं, सुख विलासके वास्ते नहीं ; तुम भी धनशाली पुरुषोंमें अग्रणी हो, इससे तुम्हें इस विषयको जानना उचित है। इस कारण ज्ञानी पुरुषोंने यह निश्चय किया है, कि यह धन जगत्में किसी पुरुषका भी नहीं है ; इससे श्रद्धावान होकर यज्ञ और दान करना ही कर्त्तव्य कार्य्य है। पण्डितोंने उपार्ज्जित किये हुए धनको दान करनेहीके वास्ते उपदेश किया है; भोगको अभिलाष तथा अपव्यय करनेके वास्ते उपदेश नहीं किया है। दान आदिक सत्कार्य्योंके वर्त्तमान रहते अर्थ-सञ्चयकी क्या आवश्यकता है ? परन्तु जो अल्पबुद्धिवाले मनुष्य धर्म्मभ्रष्ट पुरुषोंको धन दान करते हैं, वे परलोकमें एक सौ वर्ष पर्य्यन्त सदा पुरीष भोजन करते रहते हैं। कुपात्रको देना पात्रको न देना ; ऐसी घटना केवल योग्य और अयोग्यका ज्ञान न रहनेसे ही होती है ; इससे दानधर्म्म भी अत्यन्त कठिन है। हे अर्ज्जुन ! धन प्राप्त होनेपर उसे कुपात्रको देना और सत्पात्रको न देना ; इन दोनोंमें समझ रक्खो, कि महा उलट फेर होजाता है।

२६ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, अभिमन्यु, द्रौपदीके पांचो पुत्र, राजा द्रुपद, विराट धृष्टद्युम्न, धर्म्मात्मा वसुषेण (कर्ण) राजा धृष्टकेतु और अनेक देशीय राजाओंके युद्धभूमिमें मारे जानेसे मैं अत्यन्त ही दुःखित हुआ हूं। हाय ! मैंने

राज्यलोभसे सम्पूर्ण स्वजनोंका नाश करके इकबारगी अपने वंशका नाश किया है। जिसने गोदीमें लेकर हम लोगोंको लाड़प्यारसे पालन करके बड़ा किया था,—मैंने राज्यलोभसे उस भीष्म पितामहका भी बध किया है। प्रकाशमान बाणोंसे परिपूर्ण सिंहके समान ऊंचे शरीरवाले पुरुषसिंह भीष्म पितामह जिस समय शिखण्डीसे आक्रान्त होके अर्जुनके वज्र समान बाणोंके प्रहारसे विचलित होकर इधर उधर घूमने लगे, उस समय उनको वैसी दशा देखकर मेरे अन्तःकरणमें जैसा दुःख उत्पन्न हुआ था; उसका वर्णन नहीं हो सकता। विपक्षीय रथियोंको पीड़ित करनेवाले भीष्म पितामह रथके बीच पीड़ित होकर घूर्णायमान पर्व्वतकी भांति जब रथसे पूर्व्व ओर पृथ्वीपर गिरे थे; उस समय मैं ज्ञानसे रहित हुआ था जिन्होंने धनुष बाण ग्रहण करके महायुद्धमें भृगु नन्दन परशुरामके सङ्ग कुरुक्षेत्रमें कई दिनतक युद्ध किया था; काशीपुरीमें कन्याओंके वास्ते जिन्होंने अकेले ही रथपर चढ़े हुए सम्पूर्ण क्षत्रियोंको युद्धके वास्ते आह्वान किया था; जिनके अस्त्र प्रतापरूपी अग्निमें राजचक्रवर्त्ती पराक्रमी उग्रायुध क्षण भरके बीच भस्म होगया; मैंने उस भीष्म पितामहको भी युद्धभूमिके बीच बध किया है, साक्षात् मृत्युरूपी जानके भी जिन्होंने शिखण्डीका बध नहीं किया, अर्जुनने वैसे महात्मा भीष्म पितामहका बध किया है। हाय! क्या ही दुःखका विषय है। हे मुनिसत्तम! जबसे मैंने उनको रुधिरपूरित शरीरसे पृथ्वीपर गिरते देखा, उस समयसे अत्यन्त शोकित होरहा हूं। जिन्होंने बालक अवस्थामें पालन पोषण करके हम लोगोंको बड़ा किया था; मैंने अस्थिर राज्य-लोभसे उनका बध किया है इससे मैं ही अत्यन्त ही मूढ़ और पापी हूं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण राजाओंमें पूजनीय, युद्धभूमिमें स्थित महाधनुर्धारी द्रोणाचार्य्यके समीप गमन करके "आपकका पुत्र मारा गया" कहके जो मिथ्या वचन कहा था, उस मिथ्या वचन कहनेके पापसे मेरा सम्पूर्ण शरीर भस्म हुआ जाता है। गुरुने जब मुझसे ऐसा पूछा था, कि "हे, राजन्! मेरा पुत्र जीवित है, वा नहीं, तुम सत्य कहो?" आचार्य्यने समझा था, कि युधिष्ठिर सत्य कहेगा। परन्तु मैं ऐसा पापी हूं,.. कि राज्य लोभके कारण उस समय सत्यको छिपाते हुए मनमें हाथीका नाम लेकर स्पष्ट स्वरसे "अश्वत्थामा मारे गये," ऐसा वचन कहके गुरुके सङ्ग मिथ्या व्यवहार किया है, उस फलसे न जाने किस निकिष्ट लोकमें गमन करूंगा; उसे नहीं कह सकता। और भी देखिये, युद्धमें पीछे न हटनेवाले महा पराक्रमी जेठे भाई कर्णका भी मैंने बध किया है; इससे मुझसे बढ़के अधिक पापी और कौन है? मैं ऐसा लोभी हूं, कि विजयकी लालसासे सिंह पुत्रके समान पराक्रमी सुभद्रा पुत्र अभिमन्युको द्रोणाचार्य्यसे रचित चक्रव्यूहके बीच प्रवेश करनेकी अनुमति दी थी। हे महाऋषि! अधिक क्या कहूं भ्रूणहत्या करनेवाले पापी की भांति उस समयसे मैं पुरुषोंमें श्रेष्ठ कृष्ण और अर्जुनके मुखको अच्छी प्रकार देखनेमें भी समर्थ नहीं होता हूं। उसी भांति पञ्चपर्व्वतोंसे रहित पृथ्वीकी भांति पांच पुत्रोंसे हीन अत्यन्त दुःखित द्रौपदी देवीको ओर देखनेसे भी मैं शोकसे अत्यन्तही कातर होजाता हूं। मैं पृथ्वीके सम्पूर्ण क्षत्रियों और गुरुजनोंका नाश करके अत्यन्त ही अपराधी हुआ हूं; इससे मैं इस स्थानमें योगाभ्यास अवलम्बन करके अपने शरीरको सुखा दूंगा, ऐसा होनेसे फिर मुझे किसी जातिमें जन्म नहीं लेना पड़ेगा आजसे मैं खाने पीनेकी सम्पूर्ण वस्तुओंका त्यागके यहां पर ही स्थित होके अपने प्रिय प्राणको त्याग करूंगा। हे तपस्वी श्रेष्ठ! मैं

आपसे विनय पूर्व्वक कहता हूं, कि आप मुझे शरीर त्यागनेकी आज्ञा देकर अपने अभिलषित स्थान पर गमन कीजिये ।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिर बन्धु-बान्धवोंके वियोगसे अत्यन्त शोकित वा विह्वल होके विलाप करने लगे ; तब ऋषिसत्तम व्यासदेव बोले, महाराज ! योग अवलम्बन करके प्राण त्याग मत करो, तुम्हें इस प्रकारसे शोकित होना उचित नहीं है ; मैं फिर तुम्हें उत्तम उपदेश करता हूं, सुनो। जैसे पानीके बुलबुले पानीमें ही उत्पन्न होके कुछ समयके अनन्तर फिर उसहीमें लवलीन होजाते हैं, वैसे ही प्राणी मात्रका पहिले संयोग और पीछे वियोग हुआ करता है । सञ्चित वस्तु अन्तमें नाशमान होती हैं, उन्नतिके अनन्तर अवनति होती रहती है, जन्मके अनन्तर मृत्यु होती है , सुखके बाद दुःख होता है ; अधिक क्या कहूं, इस जगतके बीच जितनी वस्तु उत्पन्न हुई हैं, वे सबही प्रगट होके पीछे नाशमान हो जाती हैं, परन्तु आलससे दुख और कार्य्यमें रत रहनेसे ही पुरुषोंको सुख प्राप्त होता है। ऐश्वर्य्य लक्ष्मी लज्जा, कीर्त्ति और धृति आदि गुण आलसी मनुष्यमें कदापि नहीं रह सकते , वह सुहृदपुरुषोंको सुख और शत्रुओंको दुःख देनेमें भी समर्थ नहीं हो सक्ता, बुद्धिसे धन और धनसे सुख भी नहीं प्राप्त कर सकता । हे राजन् ! विधाताने तुम्हें धर्म्म करनेके ही निमित्त उत्पन्न किया है, कर्म्म त्याग करनेमें तुम्हें अधिकार नहीं है ; इससे धर्म्मके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होनेसे ही तुम्हें सिद्ध प्राप्त होगी।

२७ अध्याय समाप्त।

———

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डवोंमें जेठे राजा युधिष्ठिर स्वजनवियोग रूपी दुःखसे सन्तापित होकर प्राण त्याग करनेके अभिलाषी हुए ; तब मुनि सत्तम व्यासदेव उनके शोकको दूर करनेमें प्रवृत्त होकर बोले,-महाराज ! अश्म गीत नाम एक प्राचीन इतिहास मैं वर्णन करता हूं, सुनिये। किसी समय विदेह-राज जनकने शोक दुःखसे अत्यन्त ही सन्तापित होके अश्म नामक महाबुद्धिमान एक ब्राह्मणसे संशय निवारण करनेके निमित्त यह प्रश्न किया, हे ब्राह्मण ! स्वजन और धनकी बढ़ती तथा नाश होनेके समय कल्याणकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषको कैसा कार्य्य करना उचित है ।

अश्म बोले, मनुष्यके उत्पन्न होते ही सुख दुःख आके उसके अनुगामी होते हैं। सुख दुःख दोनोंका प्राप्त होना सम्भव रहता है, परन्तु उन दोनोंमेंसे जिस समय एक की अधिकता होती है, तब जैसे वायु बादलोंको छिन्न भिन्न कर देता है, वैसे ही वह मनुष्यकी चैतन्य शक्तिको हर लेता है। अभ्युदयके समय लोग समझते हैं, कि,, मैं साधारण मनुष्य नहीं हूं, मैं श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुआ हूं, जो इच्छा करूं उसही कार्य्यको कर सकता हूं,-इन तीन प्रकारके अभिमानमें मतवाले होके इक बारगी हिताहित विवेकसे रहित होते हैं ; इससे विषयोंमें अत्यन्त ही आसक्त होके अपव्ययसे सम्पूर्ण पैतृक धनको नष्ट करके शीघ्र ही निर्द्धन होजाते हैं; उस समय पराया धन हरण करनेको भी वे लोग उत्तम कार्य्य समझते हैं। अनन्तर जैसे व्याध मृग आदि पशुओंका वध करता है, वैसे ही राजा भी उन नियम उल्लङ्घन करनेवाले तथा पर धन हरनेवाले दुष्ट-मनुष्योंको दण्ड देता है ; परन्तु जो बीस तथा तीस वर्षकी अवस्थामें इन दुष्कर्मोंसे विरत होजाते हैं, वे लोग प्रायः एक सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवित नहीं रह सकते। इससे राजाको सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतरी वृत्तान्त जानके

दरिद्रता आदि दुःखोंसे पीड़ित प्रजाके क्लेशोंको बुद्धिकौशलसे दूर करनेका उपाय करना चाहिये। "चित्त विभ्रम और अनिष्ट-विषय" इन दोनोंके सिवा मानसिक दुःख उत्पन्न होनेका तीसरा कारण कोई भी नहीं है, भोगादिकोंसे अथवा अन्य विषयोंसे चाहे किसी भांतिके दुख क्यों न होवें—सब इन्हीं दो कारणोंके अन्तर्गत हैं। इस जगत्‌के बीच बड़े, छोटे निर्व्वल बलवान आदि सब प्राणियोंको जरा मृत्यु व्याघ्रकी भांति आके भक्षण करती है। जो पुरुष अपने पराक्रमके प्रभावसे समुद्रके सहित सम्पूर्ण पृथ्वीको जय कर सकते हैं, वे भी जरा मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। सुख दुख उपस्थित होनेसे अभिमान रहित होकर उसे भोग करना ही उचित है, क्यों कि प्रारब्धके अनुसार जो कुछ उपस्थित होता है, वह अपरिहार्य्य अर्थात् अटल है।

हे महाराज! देखिये प्राणी मात्र ही अजर अमर होनेकी अभिलाषा करते हैं, परन्तु उसके विपरीति जरा, मृत्यु उपस्थित होके किसीको बाल्य किसीको युवा और किसीको वृद्धावस्थामें ग्रहण करती है; मृत्युके हाथसे कोई भी मुक्त नहीं होसकता। प्राणियोंको जन्म, मृत्यु, हानि, लाभ, प्रियवस्तुओंका संयोग वियोग, सुख, दुख आदिक प्रारब्धके अनुसार ही होते हैं। इससे जैसे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि स्वभावसे ही प्रकट होके अन्तमें निवृत्त होजाते हैं; उस भांति जाना, उठना, खाना, पीना, बैठना, सुख दुःख इत्यादि समयानुसार प्राणियोंको प्रारब्धसे ही उत्पन्न होते हैं; और समय पूरा होनेसे नहीं रहते। इस संसारमें वैद्य भी रोगी होते हैं, बलवान पुरुष निर्बल और धनवान मनुष्य निर्धन होजाते हैं; इससे कालकी गतिको अत्यन्त विचित्र जानना चाहिये। बड़े कुलमें जन्म, वीर्य्य, निरोगता, रूप, सौभाग्य और उपभोग ये सब होतव्यताके अनुसार ही प्राप्त होते हैं। इस पृथ्वीपर इच्छा न रखनेसे भी दरिद्रोंको अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं; परन्तु समृद्धि युक्त पुरुषोंको प्रार्थना करनेपर भी एक पुत्र उत्पन्न नहीं होता; इससे दैवके आश्चर्यमय कार्य्योंको अवलोकन करो। जरा, व्याधि अवनति, भूख, प्यास, जल, अग्नि और विष आदिसे जो कुछ आपदा दीख पड़ती है, वह प्राणियोंको प्रारब्ध तथा सुकृत दुष्कृत आदि कर्म्मोंके फलके अनुसारही प्राप्त होती है। इस जगत्‌के बीच कोई पुरुष पाप न करके भी दण्ड पाता है, और कोई महाघोर अत्याचारी होकर भी राजदण्डसे छुटकारा पाता है; इससे प्रारब्धको अवश्य ही स्वीकार करना पड़ता है। इस पृथ्वीपर धनवान पुरुषोंको युवावस्थामें ही मृत्युके मुखमें पतित होते, और दरिद्र पुरुषोंको अत्यन्त क्लेशके सहित जरायुक्त होकर भी एक सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहते देखा जाता है; इससे छोटे वंशमें जन्म लेकर भी दीर्घजीवी और श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषको भी पतङ्गकी भांति नष्ट होते देखा जाता है। इस संसारके बीच श्रीमान पुरुष प्रायः ऐश्वर्य्य भोग करनेमें समर्थ नहीं होते, अर्थात् अल्पायु होते हैं; परन्तु दरिद्र-पुरुष अत्यन्त निकृष्ट वृत्तिसे ही जीविका निर्व्वाह करनेमें समर्थ होते हैं, उस निमित्त वे अनेक दीर्घजीवी होसकते हैं। दुष्टात्मा पुरुष निज सुखके वास्ते पापकार्य्योंका भी अनुष्ठान करते तथा कालप्रेरित होकर उसे ही प्रिय समझते हैं। मृगया, जुआ, स्त्रियोंमें आसक्ति, मद्यपान व्यर्थप्रलाप,—इन कई एक विषयोंको पण्डितोंने अत्यन्त निन्दित कहके वर्णन किया है; परन्तु बहुतसे शास्त्र जाननेवाले पुरुषोंको भी नहीं सम्पूर्ण विषयोंमें आसक्त होते देखा जाता है। ईप्सित वा अनीप्सित सम्पूर्ण विषय समयानुसार प्राणियोंको आक्रमण करते हैं; उसमें दूसरा, कोई भी कारण नहीं बोध होता।

वायु, आकाश, अग्नि, सूर्य्य, चन्द्रमा, दिन, रात, ज्योतिवाले पदार्थ, नदी और पहाड़ोंको किसने उत्पन्न किया है; और कौन सबको धारण करता है? अतएव काल ही सबको धारण करता, और कालके प्रभावसे ही समस्त वस्तु उत्पन्न होती हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! इस भांति सर्दी, गर्म्मी, वर्षा और मनुष्योंके सुख-दुःख कालके प्रभावसे ही प्राप्त होते, और समयानुसार फिर नष्ट होजाते हैं। जब मनुष्य जरा-मृत्युसे ग्रस्त होते हैं, उस समय औषधि, मन्त्र, जप, होम आदिक कोई भी उसके परित्राण करनेमें समर्थ नहीं होते। जैसे महासागरमें दो काठके टुकड़े दो ओरसे आके एक स्थानमें मिल जाते हैं, और समयके अनुसार फिर अलग अलग होजाते हैं, वैसे ही प्राणियोंका भी समयके अनुसार संयोग-वियोग होता रहता है। जो पुरुष उत्तम स्त्रियोंके बीचमें रहके गीतवाद्य आदिक सुखोंको भोगते रहते हैं, और जो पराये अन्नके आसरे जीवन धारण करनेवाले अनाथ पुरुष हैं;—काल दोनोंके सङ्ग समान व्यवहार करता है; अर्थात् वे कोई भी मृत्युके मुखसे छुटकारा नहीं पा सकते। इस संसारमें माता, पिता, स्त्री और पुत्र आदिक सैकड़ों तथा सहस्रों भांतिके सम्बन्ध दीख पड़ते हैं; परन्तु विचारपूर्व्वक देखनेसे वे लोग किसके माता, पिता हैं; और हम लोग ही किसके आत्मीय बान्धव हैं? कोई भी इस आत्माका आत्मीय नहीं है और न यह आत्मा किसीका आत्मीय वस्तु होसक्ता है। जैसे पथिक मार्गमें गमन करते हुए थोड़े समयके वास्ते एक स्थानपर इकट्ठे होकर विश्राम करके फिर यथायोग्य स्थानपर गमन करते हैं, इस संसारमें स्त्री पुत्र और स्वजनोंकी प्रकृति भी उसी भांति समझनी चाहिये। मैं कौन हूं, कहां हूं, और कहां जाऊंगा। किस कारण इस संसारमें स्थित हूं, और क्यों शोक वा दुःख करता हूं? ज्ञानी पुरुषको ऐसा विचारना चाहिये, कि चक्रकी भांति घूमने वाले संसारके बीच प्रियजनोंका एकत्र वास अनित्य है। जैसे मार्गमें चलते हुए पथिक लोग एक स्थानपर इकट्ठे होके थोड़े समयतक विश्राम करते हैं; पिता, माता, भाई और मित्रोंके समागमको भी उसी प्रकार जानना चाहिये। ज्ञानको अभिलाषा करनेवाले पुरुषको शास्त्र-विधिके अनुसार परमार्थ विषयमें श्रद्धा करनी उचित है? देखिये पण्डित लोग बिना देखे ही परलोकके सम्पूर्ण विषयोंको जानते हैं। विद्वान् पुरुषको भी देवता पितरोंकी पूजा अर्थात् शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार त्रिवर्गसेवन अर्थात् धर्म्म, अर्थ, काम आदि सत्कर्म्मोंका अनुष्ठान करना उचित है। जरा मृत्यु रूपी ग्राहसे युक्त कालरूपी समुद्रमें जो यह जगत् डूब रहा है, उसे कोई भी नहीं मालूम करता।

कितने ही वैद्य आयुर्वेदका पढ़के भी परिवारके सहित व्याधिसे ग्रस्त होते हैं; जैसे समुद्रका वेग तटको उलङ्घन नहीं कर सकता, वैसे ही वे लोग नाना भांतिके घृत आदिक औषधि सेवन करके भी किसी प्रकार मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। जैसे हाथी पर्व्वतोंपर निवास करके भी कभी कभी मतवाले होकर अपने दांतोंसे पर्व्वत तोड़नेकी इच्छा करते हैं, वैसे ही रसायनिक तथा वैद्यक विद्याके जाननेवाले पण्डित लोग शरीररक्षाके निमित्त भली भांति रसायन प्रयोग करके भी प्रायः जरा मृत्युसे ग्रस्त होते दीख पड़ते हैं। इसी भांति दाता यज्ञशील, वेदपाठी और तपस्वी पुरुष भी जरा-मृत्युको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। उत्पन्न हुए प्राणियोंके विषयमें वर्ष, महीना, पक्ष, दिन रात्रि आदि जो व्यतीत होजाते हैं, वे फिर लौटके नहीं आते। इससे अनित्य शरीरवाले मनुष्योंको समय

पूर्ण होनेकी इच्छा न रहनेपर भी अवश्य ही सम्पूर्ण प्राणियोंके गमन करनेवाली चिरनिश्चित उस महापथसे ही गमन करना पड़ता है। शीघ्र ही देह जीवसे पृथक होता है, वा जीव ही देहसे पृथक् होजाता है। जो हो, जगतके बीच स्त्री वा अन्य वस्तुवर्गोंकी जो सङ्गति है, वह मार्गमें निवास करनेवाले पथिकोंकी भांति है। इस जगतमें कोई कदापि एक एक सङ्ग सदा सर्व्वदा निवास नहीं कर सकता, जब कि निज शरीरहीके साथ जीवके चिर-सहवास-लाभकी सम्भावना नहीं है; तब दूसरेके साथ सदा एक सङ्ग सहवास कैसे स्थिर रह सकता है? हे पापरहित युधिष्ठिर! इस समय तुम्हारे पिता वा पितामह आदि पितर कहां हैं? इस समय वे लोग तुम्हें नहीं देखते हैं, और तुम भी उन लोगोंको नहीं देख सकते हो। हे राजेन्द्र! स्वर्ग और नरकको कोई पुरुष भी नहीं देख सकता; परन्तु शास्त्र ही पण्डितोंके नेत्र स्वरूप हैं; इससे तुम उसके अनुसार इस संसार यात्राका निर्व्वाह करो। इस संसारमें जन्म लेनेके अनन्तर देवता पितर और ऋषियोंके ऋणको चुकानेके निमित्त असूयारहित होके पहिले ब्रह्मचर्य्य फिर दार-परिग्रह कर सन्तान उत्पन्न, अनन्तर यज्ञादिकोंका अनुष्ठान करे; जो लोग इसलोक और परलोकके कार्य्योंको समान रूपसे साधन कर सकते हैं, और शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार कर ग्रहण करते हैं; उन धर्म्म स्थापित करनेवाले राजाओंका यश समस्त लोकोंमें विख्यात होता है। शुद्ध-बुद्धि-वाले विदेहराज जनक इसी भांति हेतु पूरित सम्पूर्ण उपदेश वचनोंको सुन कर शोक रहित हुए और अश्म ऋषिको आमन्त्रण करके अपने घर लौट आये। हे अच्युत युधिष्ठिर! तुम इन्द्रके समान पराक्रमी हो, इससे शोक त्याग कर तुम्हें हर्षित होना उचित है। तुमने क्षत्रिय-धर्म्मके अनुसार इस पृथ्वीको जय किया है; इस समय अब सम्पूर्ण पृथ्वीके राज्यको भोग करो! मेरे वचनमें कुछ संशय मत करो!

२८ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, जब राजा युधिष्ठिरने वेदव्यासके उपदेश वचनोंको सुनके भी कुछ उत्तर नहीं दिया, तब पाण्डुपुत्र गुडाकेश अर्ज्जुन हृषीकेश कृष्णसे यह वचन बोले, हे माधव! शत्रुनाशन धर्म्मपुत्र महाराज युधिष्ठिर ज्ञाति-वध शोकसे अत्यन्त ही दुखित हुए हैं; इससे आप शोक रूपी समुद्रमें डूबते हुए राजा युधिष्ठिरको प्रबोधित कीजिये। हे जनार्द्दन! हम लोगोंमेंसे किसीके वचनमें इन्हें विश्वास नहीं होता है।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, जब महात्मा अर्ज्जुनने श्रीकृष्णसे ऐसा वचन कहा, तब पुण्डरीकाक्ष अच्युत कृष्ण धर्म्मराज युधिष्ठिरको धीरज धारण करानेमें प्रवृत्त हुए। केशव बालक अवस्थासे ही धर्म्मराज युधिष्ठिरके अर्ज्जुनसे भी अधिक प्रिय थे, इससे उनके वचनको राजा युधिष्ठिर अवश्य ही मानते थे। कृष्ण राजा युधिष्ठिरके चन्दन-चर्च्चित शैल स्तम्भके समान भुजाको ग्रहण करके उत्तम वचनसे उनके चित्तको प्रसन्न करने लगे जैसे सूर्य्य उदय होने पर कमल प्रफुल्लित होता है, वैसे ही वचन बोलनेके समयमें श्री कृष्णके सुन्दर दर्शन; उत्तम पंक्तिसे युक्त मुख, नेत्र और शरीरकी शोभा हुई।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे पुरुष शार्दूल महाराज! जो लोग कुरुक्षेत्रके युद्धमें मारे गये हैं, उन लोगोंके फिर प्राप्त होनेकी किसी प्रकारसे भी अब सम्भावना नहीं है, इससे आप ऐसे शोकको परित्याग कीजिये। जैसे स्वप्नमें प्राप्त हुई वस्तु जागनेके अनन्तर नहीं दीख पड़ती, इस महायुद्धमें मरे हुए क्षत्रियोंको भी उस ही

भांति समझना चाहिये। वे मरे हुए शूरवीर पुरुष सब ही युद्धभूमिमें सम्मुख संग्राम करके एक दूसरेके हाथसे मारे गये; उनके बीच कोई भी पुरुष पीठ दिखाके अथवा भागते हुए नहीं मारा गया; वे सब ही वीर शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करके शस्त्रसे मरकर स्वर्ग लोकमें गये हैं; इससे उन लोगोंके निमित्त आप शोक न कीजिये महाराज! क्षत्रिय-धर्म्ममें रत, वेद वेदांगको जाननेवाले शूरवीर पुरुष अवश्य ही वीर पुरुषोंके योग्य पवित्र गतिको पाते हैं। आप परलोक प्राप्त हुए महात्मा पूर्व्व राजाओंके वृत्तान्तको सुनने होसे मरे हुए बन्धु-बान्धवोंके निमित्त शोक नहीं करेंगे; इस विषयमें देवऋषि नारदने एक प्राचीन इतिहास कहा था, उसे सुनिये।

पुत्र शोकसे आर्त्त हुए सृञ्जय राजको नारद मुनिने यह उपदेश किया था कि, हे सृञ्जय! तुम, मैं वा अन्य मनुष्य कोई भी सुख दुःखसे छुटकारा नहीं पासकते और हम सब लोगोंको ही एक दिन मरना होगा; तब विलाप करनेको क्या आवश्यकता है? मैं तुम्हारे समीप पहिले समयके राजाओंका माहात्म्य वर्णन करता हूं; उसे चित्त लगाके पूर्णरीतिसे सुननेसे ही तुम्हारा शोक नष्ट होजावेगा। उन महातेजस्वी राजाओंके वृत्तान्तका मुझसे सुनकर शोक परित्याग करो। राजाओंमें अग्रणी इन महात्मा राजाओंके सुन्दर मनोहर तथा पवित्र उपाख्यानको सुननेसे ही क्रूर ग्रह शान्त होते और आयु बढ़ती है।

हे सृञ्जय! तुमने सुना होगा, कि अविक्षितके पुत्र मरुत नामक एक विख्यात राजा हुए थे; परन्तु वह भी परलोक गये हैं। जिस महात्मा मरुत राजाके विश्वजित् अर्थात् सर्व्वस्व दान नामक यज्ञमें देवतोंके गुरु बृहस्पति प्रमुख इन्द्र और वरुण आदि देवता उपस्थित हुए थे; और जिन्होंने अहङ्कार पूर्व्वक देवराज इन्द्रको युद्धभूमिमें पराजित किया था; जिनके यज्ञानुष्ठानके समय विद्वान बृहस्पतिके इन्द्रकी प्रियकामनासे जिस मरुत्तराजको यह कहकर कि मैं तुम्हारे यज्ञमें न जा सकूंगा, लौटा देने पर बृहस्पतिके ही कनिष्ठ भ्राता सम्वर्त्तने जिनके यज्ञको पूर्ण कराया था। जिनके शासन समयमें पृथ्वी राजविभवसे शोभित होकर विना हलसे जोते ही शस्य उत्पन्न करती थी। जिनके यज्ञमें विश्वेदेवा सभासद, साध्य लोग परिवेष्टा हुए थे, और मरुद्गणने आकर सोमरस पान किया था। दक्षिणा देनेमें जो देवता, गन्धर्व्व और मनुष्योंसे भी बढ़ गये थे। जो धर्म्म ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य, इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे; हे सृञ्जय! जब ऐसे गुणोंसे युक्त महात्मा मरुत राजाने भी परलोकमें गमन किया है; तब तुम्हें पुत्रके निमित्त शोक करना उचित नहीं है।

हे सृञ्जय! सुहोत्र नामक एक विख्यात राजा थे, तुमने सुना होगा उन्हें भी परलोकमें गमन करना पड़ा। जिस सुहोत्र राजाके राज्यमें इन्द्रने एक वर्ष पर्य्यन्त लगातार सुवर्णकी वर्षा की थी। जिन नरपतिको पति रूपसे पाके पृथ्वी "सत्यवती" नामसे विख्यात हुई थी। उनके राज्य शासनके समयमें सम्पूर्ण नदियोंमें स्वर्णमय जलजन्तु तैरते थे। उसका कारण यह है कि उन दिनों लोक पूजित इन्द्रने पृथ्वीकी सब नदियोंमें सोनेके कूर्म्म कर्कट घड़ियाल और शिशुमारकी वर्षा की थी। अधिक क्या कहा जावे, उन सैकड़ों तथा सहस्रों मच्छ मकर और कच्छप आदि स्वर्णमय जल जन्तुओंको देखकर राजा सुहोत्र स्वयं विस्मित हुए थे। हे राजन्! अनन्तर राजा सुहोत्रने कुरुजाङ्गलमें यज्ञ आरम्भ करके उस असीम सुवर्णके ढेरको ब्राह्मणोंको दान किया था। वह महात्मा सुहोत्र राजा धर्म्म, वैराग्य, ज्ञान और ऐश्वर्य्य इन चारों विषयोंमें तुमसे

श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे भी अधिक पुण्यात्मा थे ; परन्तु वह भी मृत्युके ग्रासमें पतित हुए हैं। इससे तुम दान और यज्ञसे रहित अपने पुत्रके वास्ते शोक मत करो।

हे सृञ्जय ! तुमने अङ्गराज बृहद्रथका नाम सुना होगा, उनकी भी मृत्यु हुई है। जिन्होंने विष्णुपदगिरि पर यज्ञमें दीक्षित होकर रत्नादिसे भूषित दश लाख कन्या, और दश लाख घोड़े, पद्मजाल चिन्हसे युक्त दश लाख हाथी, सहस्र गजके सहित सुवर्णमालासे भूषित एक करोड़ वृषभ दक्षिणामें दिये, पहिले जिन्होंने एक सौ यज्ञ किये थे, जिन यज्ञोंमें सोमरसपान करके देवराज इन्द्र और दक्षिणा पाये हुए धनके मदसे एकबारही ब्राह्मण लोग मतवाले हुए थे। दक्षिणा देनेमें जो देवता, गन्धर्व और मनुष्योंसे बढ़ गये थे जिन यज्ञोंमें सोमपानकी विधि है, उन अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम उकथ्य, षोड़शी, वाजपेय, अतिरात्र, अप्तुर्य्याम इन सात सोमसंस्थान नामक यज्ञोंमें अङ्गराज जिस प्रकार धनदान किया था, उस प्रकार धन दान करनेवाला कोई पुरुष इस पृथ्वीपर न हुआ, न होगा। हे सृञ्जय ! वह अङ्गराज न्याय, धर्म्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे ; वह भी कालके ग्रासमें पतित हुए हैं ; इससे तुम पुत्रके वास्ते क्यों शोक करते हो ?

हे सृञ्जय ! तुमने उशीनरपुत्र महाराज शिबिकी कथा भी सुनी होगी; उनकी भी मृत्यु हुई है ; जिन्होंने इस पृथ्वीको शरीर तोपनेवाले चमड़ेकी भांति हस्तगत किया था जिन्होंने एकही जयशील रथपर चढ़के रथके बड़े शब्दसे चारों ओर गुंजाकर सम्पूर्ण राजाओंको पराजित करके पृथ्वीको एकछत्रके अधीन किया था, और जिन्होंने अपने तमाम अङ्गली और पलए गौ, घोड़े आदि पशुओंको मंगाके यज्ञमें दान किया था। अधिक क्या कहा जावे, प्रजापति ब्रह्माने उस समय समस्त राजाओंके बीच उशीनरपुत्र राजऋषि शिबिके अतिरिक्त और किसीको भी राज्यभार ग्रहण करनेके योग्य नहीं समझा था। देखिये वह महात्मा शिबि राजा धर्म्म अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु ऐसे गुणोंसे युक्त महात्मा शिबि राजाकी मृत्यु हुई है, तब तुम दान और यज्ञसेरहित अपने पुत्रके निमित्त शोक मतकरो !

हे सृञ्जय ! महा ऐश्वर्य्यवान् शकुन्तलाके गर्भसे उत्पन्न हुए दुष्मन्तपुत्र महात्मा भरतकी कथा तुमने सुनी होगी, जिस महातेजस्वी राजा भरतने देवताओंकी प्रीतिकी अभिलाषासे यमुनाके तीरपर तीस, सरस्वती नदीके किनारे बीस, गङ्गाके तीरपर चौदह इत्यादि इसी भांति क्रमसे एक हजार अश्वमेध और एक सौ राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। जैसे मनुष्य बाहुबलके सहारे आकाशमें गमन करनेमें समर्थ नहीं होते उसी भांति पृथ्वीके कोई राजा भी महाराज भरतके कर्म्मोंके अनुगामी होनेमें समर्थ नहीं होसकते। अधिक क्या कहा जावे, उस महात्मा राजा भरतने अनगिनत यज्ञवेदी आरम्भ करके उनमें एक सहस्रसे अधिक अर्व्वुद घोड़े और पद्म सहस्र रत्न कण्व मुनिको दान किया था, वह धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे ; परन्तु उन्होंने भी शरीर त्याग किया है ; इससे तुम अपने पुत्रके वास्ते व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय ! राजा दशरथके पुत्र महात्मा रामचन्द्रका वृत्तान्त तुमने सुना होगा, उन्होंने भी शरीर त्याग किया है। जिन्होंने सदा प्रजाको अपने पुत्र समान पालन किया था ; राज्यशासनमें जो अपने पिता दशरथके समान थे। और अधिक क्या कहा जावे, रामचन्द्रके

राज्यशासनके समयमें कोई स्त्री विधवा नहीं थीं, न कोई अनाथ ही दीख पड़ते थे, यथा समयपर जलकी वर्षा होती थी; अन्न भी यथा समय पर उत्पन्न होते थे; इससे उनके राज्य शासनके समयमें किसी भांति दुर्भिक्ष नहीं उपस्थित हुआ था। उस समय किसीकी जलमें डूबके वा अग्निमें भस्म होके मृत्यु नहीं हुई थीं, और दूसर किसी भांतिके रोगका भी भय नहीं था। रामचन्द्रके राज्यशासनके समय सब प्राणी सहस्र वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहते, और सहस्र पुत्रवाले होते थे, और सबके अभिलषित मनोरथ सिद्ध होते थे, रोग रहित होके समय व्यतीत करते थे; उनके राज्यमें पुरुषोंकी बात तो दूर है, स्त्रियां भी आपसमें विवाद करनेमें प्रवृत्त नहीं होती थीं। उस समय सब कोई धर्म्ममें रत, सदा सन्तुष्ट चित्त सत्यव्रती, अभिलाष विषयमें पूर्ण मनोरथ, निर्भय और स्वाधीन थे। वृक्ष सदा फूलफलोंसे युक्त रहते थे, गौयें बड़े परिमाण दूध देती थीं। उस महातपस्वी रामचन्द्रने पिताके सत्यको पालन करनेके वास्ते चौदह वर्ष पर्य्यन्त वनमें निवास करके फिर राज्य शासनके समयमें तिगुनी दक्षिणासे युक्त दश अश्वमेध यज्ञ पूर्ण किये थे। लाल नेत्रवाले श्याम सुन्दर युवा रामचन्द्र यूथपति हाथी समान बलवान थे। उनकी आजानुलम्बितभुजा थीं, मुख कान्ति मनोहर और कन्धा सिंहस्कन्धके समान था। महात्मा रामचन्द्रने ग्यारह हजार वर्ष पर्य्यन्त निर्विघ्नताके सहित अयोध्यामें राज्य किया था। वह धर्म्म, अर्थ वैराग्य और ज्ञान इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; उन्हें भी मनुष्य लीला समाप्त कर इस लोकको त्यागके परलोकमें गमन करना पड़ा, तब तुम्हें पुत्रके निमित्त शोक करना उचित नहीं है।

हे सृञ्जय! पहिले भगीरथ नामक एक बड़े राजा हुए थे, उनका नाम तुमने सुना होगा; उन्हें भी मृत्युमुखमें पतित होना पड़ा! जिसके यज्ञमें सोमरस पान करके सुरसत्तम भगवान् पाकशासनने मतवाले हाथीकी भांति मत्त होके अपने बाहुबलके सहारे एक हजार असुरोंको पराजित किया था। उन्होंने यज्ञमें रत्नोंसे भूषित करके एक हजार कन्यादान किया था। उनमेंसे हर एक कन्या चार घोड़ोंसे युक्त एक एक रथपर चढ़ी थीं, हर एक रथके साथ सुवर्ण मालासे सुशोभित पद्मचिन्हसे युक्त एक एकसौ हाथी, हर एक हाथीके सङ्ग एक हजार घोड़े नियुक्त थे, हर एक घोड़ेके सङ्ग एक हजार गऊ, सहस्र बकरे और सहस्र भेड़ें थे। अधिक क्या कहा जावे, उस इक्ष्वाकु कुलभूषण यज्ञशील बहुत सी दक्षिणा देनेवाले महात्मा भगीरथको त्रिलोक गामिनी गङ्गादेवी पिता स्वीकार करके उनकी जङ्घापर बैठी थीं; जिस स्थलमें गङ्गा भगीरथकी जङ्घापर बैठीं उस स्थानमें उनका नाम उर्व्वशी और भागीरथी हुआ। वह धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारो विषयोंमें तुमसे तथा तुम्हारे पुत्रसे श्रेष्ठ तथा अधिक पुण्यात्मा थे; वह भी कालके ग्राससे मुक्त होनेमें समर्थ न हुए, इससे तुम यज्ञ और दक्षिणासे हीन अपने पुत्रके निमित्त वृथा शोक मत करो।

हे सृञ्जय! तुमने महात्मा दिलीप राजाका भी वृत्तान्त सुना होगा, जिसके अनेक उत्तम कर्म्म और कीर्त्तिकी कथाको ब्राह्मण लोग आज तक गाया करते हैं। जिन्होंने महायज्ञका अनुष्ठान करके रत्न-पूरित पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान की थी। जिसके हर एक यज्ञमें पुरोहित ब्राह्मणको एक सहस्र सुवर्णमय हाथी दक्षिणामें प्राप्त हुई थीं। जिसके शोभायुक्त यज्ञमें खम्भे भी सुवर्णमय हुए थे; अधिक क्या कहा जावे, उस समय इन्द्र आदि देवताओंने भी आदिष्ट कार्य्योंको पूर्ण

करके महाराज दिलीपकी उपासना कोथी और उनके यज्ञ मण्डपके हिरण्मय स्तम्भ पर छः हजार देवता गन्धर्व्व इकट्ठे होकर नाचते, और विश्वावसु बीचमें बैठके बीन बजाते थे। जिन बीनके बाजेको सुनकर समस्त श्रोताओंने समझा था, कि ये मुझे ही लक्ष्य करके बीन बजा रहे हैं। पृथ्वीके कोई राजा भी महाराज दिलीपके इस कार्य्यके अनुकरण करनेमें समर्थ न हुए। राजा दिलीपके ऐश्वर्य्यकी बात क्या कहूं, सुवर्ण भूषणोंसे भूषित मतवाले हाथी मदमत्त होकर मार्ग हीमें शयन करते थे; अधिक क्या कहूं, उस शतधन्वा सत्यवादी महात्मा महाराज दिलीपका जिन मनुष्योंने दर्शन किया था, वे भी स्वर्गभागी हुए। जिसके राज भवनमें सदा सर्व्वदा धनुष टङ्कार, वीरोंके सिंहनाद, वेदध्वनि और "देहि देहि" ये तीन भांतिके शब्द क्षण भरके वास्ते भी नहीं बन्द होते थे। देखिये महात्मा दिलीप धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; परन्तु उन्हें भी इस लोकको त्यागना पड़ा, इससे अब तुम पुत्रके वास्ते शोक मत करो।

हे सृञ्जय! युवनाश्वपुत्र महाराज मान्धाताकी कथा तुमने सुना होगा; उनको भी मृत्यु हुई है। राजा युवनाश्वने पुत्र उत्पन्न करनेमें समर्थ दही युक्त अभिमन्त्रित घृत अपनी स्त्रीको न देकर भ्रमपूर्व्वक स्वयं पान किया था, उससे उनके ही गर्भ रह गया और मन्त्रित आज्यके प्रभावसे रुधिर-संयोगके बिना ही वह बालक पितृगर्भमें दिनोंदिन बढ़ने लगा; फिर मरुत आदि देवताओंने पितृगर्भको भेदकर उस बालकको निकाला था, अनन्तर वह बालक त्रिलोक-विजयी राजा हुआ था,—ऐसी घटना किस प्रकार हुई, वह सम्पूर्ण वृतान्त वर्णन करता हूं, सुनो। उत्पन्न होते ही उस बालकको मातापिताकी गोदमें शयन करते देखकर देवता लोग आपसमें यह वचन कहने लगे, कि यह बालक किसका आसरा ग्रहण करेगा। अनन्तर देवराज इन्द्रने कहा, "अयं मां धास्यति" अर्थात् यह मेरा आसरा ग्रहण करेगा,—ऐसा कहके उन्होंने उस बालकका "मान्धाता" नाम रखा, और शरीरपुष्टिके निमित्त अपने हाथकी उङ्गली उसके मुंहमें डाल दी; तिसके अनन्तर उस उङ्गलीसे ही-दूधकी धार बहने लगी। इन्द्रके हाथकी उङ्गलीके दूधको पीकर वह बालक दिनोंदिन इस प्रकार बढ़ने लगा, कि बारह दिनमें ही बारह वर्षको अवस्थाके समान मालूम हुआ; इसी भांति क्रमसे एक सौ दिनतक इन्द्रकी उङ्गलीके दूधको पीकर पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हुआ था। अनन्तर इन्द्रके समान पराक्रमी शूर, धर्म्मात्मा, महात्मा मान्धाता युद्धभूमिमें अङ्गार, मरुत, असितद्रुय, अङ्गराज वृहद्रथ आदि मुख्य मुख्य सम्पूर्ण राजाओंको पराजित करके एक ही दिनमें समस्त पृथ्वीके स्वामी हुए। जिस समय अङ्गराज वृहद्रथके सङ्ग महाराज मान्धाताका युद्ध हुआ था, उस समय देवताओंने उनके धनुष्टङ्कारके शब्दको सुनकर समझा कि आकाश विदीर्ण हुआ चाहता है। उनके प्रबल प्रतापकी कहांतक वर्णन करूं जहांसे सूर्य उदय होते और जहांपर जाके अस्त होते हैं अर्थात् अन्तिम सीमा पर्य्यन्त आजतक पृथ्वी "मान्धाता क्षेत्र" कहके विख्यात है। पृथ्वीपति मान्धाताने एक सौ अश्वमेध और एक सौ राजसूय यज्ञोंको पूर्ण करके ब्राह्मणोंको दक्षिणामें अनगिनत रोहू मछली प्रदान की थी, दूसरी वस्तुओंके दानकी कथा क्या कहूं! जब कि मान्धाता राजाके यज्ञके अन्तमें ब्राह्मणोंके अतिरिक्त दूसरी जातिके मनुष्योंने भी एक योजन ऊंचे और दश योजन चौड़े सुवर्णके ढेरको बांट लिये थे; तब ब्राह्मणोंने कितना धन पाया था, उसका कहना बाहुल्यता मात्र है। हे सृञ्जय!

राजा मान्धाता धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य, इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु वह भी जब शरीर त्यागके इस लोकसे विदा होगये हैं, तब पुत्रके निमित्त शोक करना तुम्हें उचित नहीं है।

हे सञ्जय! बोध होता है, तुमने नहुषपुत्र राजा ययातिका वृत्तान्त सुना होगा, उनकी भी मृत्यु हुई है। जिसने अपने बाहुबलसे सम्पूर्ण पृथ्वीको जय किया था, जिसने शम्यापात अर्थात् एक बलवान पुरुषके हाथसे फेंके जानेपर जितनी दूरमें एक मोटी तथा भारी लकड़ीका टुकड़ा गिर पड़ता है, उतनी दूरके घेरमें यज्ञकी वेदीसे पृथ्वीको चिह्नित और उत्तम यज्ञ करते हुए क्रमसे पृथ्वीकी सीमा अर्थात् समुद्रके किनारे पहुंचे थे। इसी भांति एक सौ वाजपेय और इसके अतिरिक्त एक हजार दूसरी भांतिके यज्ञोंका अनुष्ठान करके सुवर्णके बने हुए तीन पर्व्वत ब्राह्मणोंको दान दिये थे। नहुषपुत्र महाराज ययातिने युद्धभूमिमें अनगिनत दैत्य और दानवोंकी व्यूहबद्ध सेनाका नाश करके समस्त पृथ्वी विभाग कर अपने पुत्रोंको बांट दी थी, परन्तु अन्तमें यदु और द्रुह्यु आदि पुत्रोंको निराश करके सबसे छोटे पुरुको समस्त राज्य पर अभिषिक्त करके स्त्रीके सहित वनको चले गये। हे सञ्जय! राजा ययाति धर्म्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे; वह भी जब कालके कराल ग्राससे मुक्त न होसके, तब तुम किस कारण अपने पुत्रके वास्ते शोक करते हो?

हे सञ्जय! तुमने नाभागपुत्र राजा अम्बरीषकी कथा सुनी होगी वह भी मृत्युके मुखमें पतित हुए। जिस पृथ्वी-पालक राजसत्तम अम्बरीषको सब प्रजा साक्षात् पुण्यकी मूर्त्ति समझती थी, जिन्होंने अयुत यज्ञोंके अनुष्ठान किया था, वैसे ही दश हजार राजाओंको उपस्थित ब्राह्मणोंकी सेवामें नियुक्त किया था। बहुतेरे दीर्घदर्शी पुरुषोंने नाभाग पुत्र राजा अम्बरीषके ऐसे अद्भुत कार्य्यको देखकर कहा था, कि "पहिले कोई भी राजा ऐसा कार्य्य न कर सके और न भविष्य होमें कर सकेंगे,"—इसी भांति बारम्बार उनकी प्रशंसा की थी। हे सञ्जय! जो सब राजा यज्ञके समय ब्राह्मणोंकी सेवामें नियुक्त थे, उन लोगोंने महाराज अम्बरीषके महात्म्य प्रभावसे अश्वमेध यज्ञोंके फलके भागी होकर उत्तरायण मार्गसे हिरण्यगर्भ लोकमें गमन किया। हे सञ्जय! राजा अम्बरीष धर्म्म, अर्थ ज्ञान और वैराग्य इन चार विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु वह भी मृत्युके कराल ग्रासमें पतित हुए; इससे पुत्रके वास्ते तुम व्यर्थ शोक मत करो।

हे सञ्जय! तुमने चित्ररथ-पुत्र शशविन्दुका उपाख्यान सुना होगा, जिस महात्मा शशविन्दु राजाके एक लाख स्त्री थीं और उन सम्पूर्ण स्त्रियोंसे दश लाख पुत्र उत्पन्न हुए थे; वे सब राजपुत्र सुवर्णमय कवचोंसे युक्त और महाधनुर्द्धर थे, उन हर एक राजपुत्रोंने एक एक सौ कन्याओंके सङ्ग विवाह किया था। हर एक कन्याके सङ्ग एक सौ हाथी प्रति हाथीके साथ एक सौ रथ, हर एक रथके सङ्ग सुवर्ण माला भूषित एक सौ उत्तम घोड़े थे, हर एक घोड़ेके साथ एक सौ गऊ, प्रति गऊके सङ्ग एक एक सौ बकरे और भेड़ नियुक्त थे। इस समस्त अपार धनको महाराज शशविन्दुने अश्वमेध नामक महायज्ञमें ब्राह्मणोंको दान किया था। हे सञ्जय! राजा शशविन्दु तुमसे धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे परन्तु वह भी मृत्युके मुखसे मुक्त होनेमें समर्थ न होसके इससे तुम पुत्रके निमित्त व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय! राजा अमूर्त्तरयसके पुत्र गयकी कथा तुमने सुनी होगी; उनकी भी मृत्यु हुई है। जिन्होंने एक सौ वर्ष पर्य्यन्त यज्ञसे शेष बचे एक अन्नको भोजन करके अपने जीवनको धारण किया था। अग्निने जब उन्हें वर देनेको कहा, तब उन्होंने यह वर मांगा, "हे अग्नि! तुम्हारी कृपासे मेरा धन अक्षय होवे, धर्म्म और सत्यमें मेरी अटलरूपसे सदा बुद्धि रत रहे," ऐसी जनश्रुति है, कि अग्निने राजा गयकी प्रार्थना सुनके उन्हें वही अभिलषित वर प्रदान किया था। राजा गय एक हजार वर्ष पर्य्यन्त दर्श-पौर्णमास, चातुर्मास्य और अश्वमेध यज्ञसे देवताओंकी पूजा अर्चामें नियुक्त थे। एक हजार वर्षतक राजा गयने प्रति यज्ञके अन्तमें सौ हजार गऊ और सौ हजार अश्वतर दान की थी। इस ही भांति उस पुरुष श्रेष्ठ धनसे ब्राह्मणों, सोमरस पानसे देवताओं, स्वधासे पितरों और अभिलषित वस्तुओंके दानसे स्त्रियोंको तृप्त किया था। उन्होंने अश्वमेध यज्ञोंके पूर्ण होनेपर दशव्याम चौड़ी और एक सौ हाथ लम्बी सुवर्णकी कृत्रिम पृथ्वी बनाके ब्राह्मणोंको दान की थी। हे सृञ्जय! पृथ्वीपर जितने बालूके कण देख पड़ते हैं, महात्मा गयने उतनी ही गऊ ब्राह्मणोंको दान की थी, हे सृञ्जय! महात्मा गय धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, उन्हें भी जब शरीर त्यागना पड़ा, तब तुम यज्ञ और दक्षिणासे हीन अपने पुत्रके निमित्त क्यों शोक करते हो?

हे सृञ्जय! तुमने महाराज रन्तिदेवकी कथा सुनी होगी, वह भी सदाके वास्ते इस पृथ्वीपर रहनेमें समर्थ नहीं हुए। जिस महात्मा रन्तिदेवने अपने तपके प्रभावसे इन्द्रसे यह वर मांगा था, कि "मेरे अपरम्पार अन्नके ढेर सदा-सर्व्वदा तैयार रहें, मेरे द्वारपर प्रति दिन अनगिनत अतिथि उपस्थित रहें, किसी समयमें भी मेरी श्रद्धा, कम न होवे, और मुझे किसीके समीप याच्ञा करनी न पड़े,"—इन्द्रने उन्हें इच्छानुसार वरदान किया। व्रत करने-वाले, महात्मा रन्तिदेवके यज्ञके समयमें ग्राम और वनके पशु स्वयं आके उपस्थित होते थे। उनके यज्ञमें मरे हुए पशुओंके रुधिर और चर्म्मोंसे एक महानदी प्रकट हुई थी, वह आज तक पृथ्वीपर चर्म्मण्वती नामसे विख्यात है। जिस रन्तिदेवने सभाके बीच सुवर्णमुद्रा दान करनेके समय "तुम्हें एक सौ स्वर्ण मुद्रा दान करूंगा, तुम्हें एक सौ स्वर्णमुद्रा दूंगा,—इसी भांति मन्त्रसे सङ्कल्प करके जब देनेको उद्यत हुए, तब ब्राह्मण लोग हम लोग एक सौ स्वर्ण मुद्रा नहीं लेंगे,—ऐसा वचन कहके कोला-हल मचाने लगे; अनन्तर महात्मा रन्तिदेवने उन हर एक ब्राह्मणोंको एक एक हजार स्वर्ण मुद्रा प्रदान की थी। उस बुद्धिमान राजा रन्तिदेवकी पाकशालामें कलसी, कड़ाही, थाली लोटे आदि भोजनके पात्र सुवर्णके अतिरिक्त दूसरी धातुके नहीं थे; जिसके गृहमें रात्रिमें पहुंचे हुए अतिथियोंके वास्ते जिस रात्रिको बीस हजार पशु मारे गये थे, उस रात्रिमें सुन्दर मणि जटित कुण्डलोंसे शोभित रसोई बनानेवाले पुरुष "आज पहिलेकी भांति मांस नहीं है इससे तुम लोग आज इच्छानुसार दालके सङ्ग भोजन करो,"—ऐसे ही वचन कहते हुए अतिथियोंके समीप प्रार्थना करते थे। हे सृञ्जय! महाराज रन्तिदेव धर्म्म, अर्थ, ज्ञान और वैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, परन्तु उन्हें भी कालके कराल ग्रासमें पतित होना पड़ा; इससे तुम यज्ञ और दक्षिणारहित अपने पुत्रके निमित्त व्यर्थ शोक मत करो।

हे सृञ्जय! अत्यन्त पराक्रमी इक्ष्वाकुकुल-भूषण पुरुष शार्दूल महात्मा सगरकी कथा

तुमने सुनी होगी ; उन्हें भी परलोकमें गमन करना पड़ा। महाराज ! राजा सगरके गमन करनेके समय साठ हजार पुत्र इस प्रकार उनके अनुगामी होते थे, जैसे शरदृतुमें चन्द्रमाके आस पास नक्षत्रमण्डली दीख पड़ती है। उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीपर एकछत्र राज्य करके एक हजार अश्वमेध यज्ञोंके अनुष्ठानसे देवताओंको तृप्त किया था, और हर एक यज्ञोंके पूर्ण होनेपर राजा सगरने सुवर्णस्तम्भ, सुन्दर नेत्र और उत्तम शरीरवाली स्त्रियोंके सहित उत्तम शय्यासे पूरित श्रेष्ठ मन्दिर प्रदान किये थे ; उनकी आज्ञानुसार ब्राह्मणोंने उन समस्त वस्तुओंको आपसमें बांट लिया था। राजा सगरने क्रुद्ध होकर पृथ्वीको खनके समुद्रको पुनर्व्वार उत्पन्न किया था, उस ही समयसे समुद्र सागर नामसे विख्यात हुआ है। वह धर्म, अर्थ, ज्ञान और बैराग्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ और तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे ; तो भी करालकाल उन्हें हस्तगत करनेमें न चुका ; इससे तुम पुत्रके निमित्त शोक वृथा मत करो।

हे सृञ्जय ! तुमने वेणुपुत्र राजा पृथुकी कथा सुनी होगी, उन्हें भी इस लोकसे परलोकमें गमन करना पड़ा। जिस राजा पृथुको महर्षियोंने जङ्गलके बीच राज्यपद पर अभिषिक्त करके "ये पृथ्वीके सम्पूर्ण भागको उन्नत करेंगे ; इससे इसका नाम पृथु हुआ"-ऐसा वचन कहके उनका नाम पृथु रक्खा था ; उन्होंने क्षतसे प्रजाओंका उद्धार किया था, इससे वह सकल क्षत्रिय शब्दसे प्रसिद्ध हुए ; और सब प्रजा "हम सब तुम्हारे ऊपर अनुरक्त हैं", ऐसा अनुराग भाव प्रकाशित कर वह राजा कहके विख्यात हुए। राजा पृथुके राज्यशासनके समय बिना हलसे जोते ही पृथ्वीमें अन्न उत्पन्न होते थे ; वृक्षोंके हर एक पत्तोंमें मधु प्रकट होती और गौएं कलश परिमाण दूध देती थीं ; उस समय सम्पूर्ण मनुष्योंकी अभिलाषा पूरी होती थी और सब कोई रोगरहित होकर घर तथा क्षेत्रमें अपनी इच्छानुसार निवास करते थे। जब महाराज पृथु समुद्र यात्रा करते थे, तब समुद्रकी लहरका शब्द बन्द हो जाता और नदियोंके जल स्तम्भित हो जाते थे ; मार्गमें गमन करनेके समय उनके रथके ध्वजाकी कहीं पर किसी भांति भी रुकावट नहीं होती थी। उन्होंने वृहत् अश्वमेध यज्ञके अनुष्ठानमें एक हजार हाथ ऊंचा सुवर्णका पर्व्वत तैय्यार कर ब्राह्मणोंको दान किया था। महाराज पृथु धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य इन चारों विषयोंमें तुमसे श्रेष्ठ तथा तुम्हारे पुत्रसे अधिक पुण्यात्मा थे, जब उन्हें भी मृत्युके मुखमें पतित होना पड़ा तब तुम यज्ञ दक्षिणाहीन अपने पुत्रके निमित्त व्यर्थ शोक मत करो।

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय ! तुम मौनावलम्बन करके किस की चिन्ता कर रहे हो ? तुम क्या मेरे इन सब वचनोंको नहीं सुनते हो ? यदि तुम नहीं सुनते हो, तो कालग्रस्त रोगी पुरुषको औषध देनेकी भांति मेरे ये सब उपदेश युक्त वचन तुम्हारे समीपमें निष्फल तथा व्यर्थ हुए।

सृञ्जय बोले, देवर्षि ! कीर्त्तिमान पवित्र चरित्रवाले महात्मा राजर्षियोंकी कथा, जो कि आपने मेरे समीप वर्णन की है, वह शोक मोहका नाश करनेवाली और सुगन्धि युक्त मालाकी भांति मनोहर है, मैंने विचित्र अर्थसे युक्त आपके सम्पूर्ण उपदेशोंको चित्त लगाके सुना है। हे ब्रह्मवादी-श्रेष्ठ महर्षि ! आपके कहे हुए ; हितोपदेश वचन निष्फल नहीं हुए ; अधिक क्या कहूं, आपके दर्शन मात्रसे ही मैं शोक रहित हुआ हूं। जैसे कोई अमृत पीके तृप्त नहीं होता, वैसे ही आपके उपदेश युक्त वचनोंको बार बार सुनकर भी मेरा चित्त तृप्त

नहीं होता है। हे देवर्षि ! आपके समान महात्मा पुरुषोंके दर्शन कदापि निष्फल नहीं होते, इससे यदि आप पुत्र शोकसे शोकित मुझ दीनके ऊपर प्रसन्न हुए हों, तो आपकी कृपासे मेरा पुत्र फिर जीवित होके मेरे सङ्ग वार्त्तालाप करे

नारद मुनि बोले, हे सृञ्जय पर्व्वत ऋषिके वरप्रभावसे तुम्हें जो पुत्र प्राप्त हुआ था, तथा सुवर्णष्ठीवीनामक तुम्हारा जो गुणवान पुत्र इस समय प्राण रहित होकर पृथ्वी पर शयन कर रहा है, मैं तुम्हारे उस सुवर्णप्रद पुत्रको फिर जिला देता हूं; अब मेरे आशीर्वादसे इस बार एक हजार वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहेगा।

२९ अध्याय समाप्त ।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे कृष्ण ! सृञ्जयराजका पुत्र सुवर्णष्ठीवी किस भांति हुआ और पर्व्वत ऋषिके वरसे उत्पन्न होके भी वह किस कारण अकालमें ही मृत्यु ग्रस्त हुआ ? उस समयमें जब कि सब मनुष्योंकी आयु एक हजार वर्ष पर्य्यन्त थी, तब सृञ्जयपुत्रने कुमार अवस्थाके न बीतते ही बीतते क्यों यमलोकमें गमन किया ? जो हो, उसका नाम मात्र सुवर्णष्ठीवी था, वा निष्ठीवनमें सुवर्ण उत्पन्न होता था, इस कारण उसका नाम सुवर्णष्ठीवी हुआ ? यदि स्वाभाविक सुवर्ण उत्पन्न होता था, तो किस भांति वह सुवर्णष्ठीवी हुआ, मैं इस विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज ! इस विषयमें जो कुछ घटना हुई थी, मैं वह सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करता हूं, आप सुनिये । लोक-सत्तम नारद और पर्व्वत दो ऋषि हैं, उन दोनोंमें मामा और भानजेका सम्बन्ध है, उनमें नारद मामा और पर्व्वत भानजे थे। पहिले किसी समयमें घृत चावल आदि अन्न भोजन करनेकी अभिलाषासे उन दोनों ऋषियोंने मर्त्तलोकमें आगमन किया था। अनन्तर वे दोनो ऋषि पृथ्वीपर मनुष्योंके भोग्य सम्पूर्ण वस्तुओंको भोगते हुए चारों ओर भ्रमण करने लगे। उन दोनोंने प्रीति पूर्व्वक आपसमें यह नियम स्थापित किया, कि "चाहे शुभ हो चाहे अशुभ होवे, जिस समय हम लोगोंके बीच जैसे भावका उदय होगा; यदि कोई इसमें अन्यथाचरण करेगा, तो वह पापका भागी होगा। उन दोनों ऋषियोंने "ऐसाही होगा"-यह वचन कहके ऊपर कहे हुए नियमको पालनकरनेके वास्ते प्रतिज्ञा की थी। अनन्तर सब लोकोंमें पूजित वे दोनों ऋषि राजा सृञ्जयके समीप जाके यह वचन बोले, हे महाराज! तुम्हारे हितके निमित्त हम दोनों इस स्थानपर कुछ दिनोंतक वास करेंगे; तुम हम लोगोंके ऊपर अनुकूल होकर यहांपर रहनेके वास्ते आज्ञा दो। राजा सृञ्जय उन दोनों ऋषियोंके वचनको सुनते ही "जो आज्ञा" कहके उनकी सेवा करनेमें प्रवृत्त हुए। इस ही भांति कुछ दिन व्यतीत हुए, तब एक दिन राजा सृञ्जय प्रीतिपूर्व्वक उन दोनों महात्माओंसे बोले, हे दोनों महात्मन् ! मेरा एक निवेदन सुनिये। मेरे एक पद्मपुष्पके समान सुन्दर रूपवाली, कामिनीकुलकी भूषण, शीलता आदि गुणोंसे युक्त सुकुमारी नामकी अनिन्दिता कन्या है, वह अकेलीही आप दोनो महात्माओंकी सेवा करेगी, इस विषयमें आप लोगोंका जो कुछ अभिप्राय हो; उसे प्रकाशित कीजिये।

राजाके वचनको सुनकर उन दोनों ऋषियोंने "उत्तम है"—ऐसा कहके उस विषयमें अपनी सम्मति प्रकाशित की। तब राजा सृञ्जय अपनी कन्यासे यह वचन बोले, हे पुत्री ! तुम पिता और देवताकी भांति इन दोनों ऋषियोंकी सेवा करो। पिताकी आज्ञा सुनके वह अनिन्दिता कन्या उन दोनों महात्माओंकी सेवा

करने लगी। उसकी अकपट सेवा और सुन्दर रूपको देखकर थोड़े ही समयके बीच महात्मा नारद ऋषिके अन्तःकरणमें सहसा कामदेव प्रकट होके शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भांति क्रमसे बढ़ने लगा; परन्तु धर्म्मात्मा नारद ऋषिने लज्जापूर्व्वक अपने भानजे महात्मा पर्व्वतऋषिके समीप निज मानसिक भावको प्रकाश नहीं किया।

महर्षि पर्व्वतने अपने तपके प्रभावसे नारदको कामार्त्त समझा और अत्यन्त क्रुद्ध होके उनसे यह वचन बोले, "आपने स्वयं मेरे सङ्ग यह नियम किया था, कि" हम दोनोंके बीच जिसके मनमें शुभ अशुभ जैसे भावका उदय होगा उसी समय कपट रहित होकर आपसमें प्रकाश करेंगे; परन्तु तुमने वह प्रतिज्ञा झूठी की। क्योंकि राजपुत्री सुकुमारीके विषयमें जो आपकी काम-प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है, उसे इतने दिनोंतक आपने मेरे समीप प्रकाशित नहीं किया; इससे मैं आपको शाप दूंगा। आप मेरे गुरु, ब्रह्मचर्य्य व्रतमें निष्ठावान और तपस्वी ब्राह्मण हैं; परन्तु हम लोगोंके आपसमें किये हुए नियमको आपने उल्लङ्घन किया है, उस ही कारण मैं तुम्हें जैसा शाप दूंगा, उसे सुनो,—राजकन्या सुकुमारी तुम्हारी भार्य्या होगी इसमें सन्देह नहीं है; परन्तु विवाहके समयसे आप स्वरूप भ्रष्ट होकर अपनी विवाहिता स्त्री और अन्य मनुष्योंको वानर रूपसे दीख पड़ेंगे।

देवर्षि नारदने अपने भानजेके असङ्गत शापयुक्त वचन सुनके क्रुद्ध होकर उन्हें भी शाप दिया, कि "यद्यपि तुम तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, सत्य और दम आदि गुणोंसे युक्त तथा अटल रूपसे निज धर्म्ममें स्थित हो" तौभी मेरे शापसे अब पहिलेकी भांति स्वर्ग लोकमें गमन करनेमें समर्थ न होओगे। इसी भांति उन दोनों ऋषियोंने क्रोधपूर्व्वक एक दूसरेको शाप देकर क्रुद्ध हाथीकी भांति अपने अपने अभिलषित स्थानपर गमन किया। महाबुद्धिमान पर्व्वत ऋषि निज तेज प्रभावसे समस्त मनुष्योंमें सम्मानित होकर पृथ्वीपर भ्रमण करनेमें प्रवृत्त हुए, और विप्रवर नारद ऋषिने शास्त्र विधिके अनुसार सृञ्जयराजकी कन्या अति सुकुमारीको ग्रहण किया; परन्तु वह कन्या पाणीग्रहणके समयसे ही नारद ऋषिको पर्व्वत ऋषिके शाप प्रभावसे वानर रूपसे देखने लगी। आश्चर्य्यका यह विषय है, कि उस धर्म्मज्ञ राजपुत्रीने नारद ऋषिके बन्दरके समान मुख और रूपको देखकर भी उनकी अपमानना नहीं की, बल्कि प्रीति पूर्व्वक अपने स्वामीकी सेवा करनेमें प्रवृत्त हुई। उसने अपने पतिमें अनुरक्त होकर देवता, यक्ष, मुनि तथा अन्य किसी पुरुषको कभी मनसे भी पतिभावसे नहीं देखा।

तिसके अनन्तर किसी समय भगवान् पर्व्वत ऋषिने अपने मामा नारद ऋषिको वनके बीच एकान्त स्थानमें देखा। उस समय वह नारद ऋषिको प्रणाम करके यह वचन बोले, हे भगवन्! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होके फिर स्वर्ग लोकमें गमन करनेकी अनुमति दीजिये। अनन्तर शापसे अत्यन्त दुःखित महात्मा नारद ऋषि अपने भानजे पर्व्वत ऋषिको शापसे कातर और हाथ जोड़के उपासककी भांति अपने सम्मुख स्थित देखके उनसे बोले, हे तात! पहिले मुझे "तुम बन्दर होगे," यह कहके तुमने शाप दिया, तब मैंने भी क्रोधपूर्व्वक तुम्हें शाप दिया, कि "आजसे तुम अब स्वर्ग लोकमें गमन न कर सकोगे"। देखो तुम मेरे पुत्रके समान हो, इससे मेरे सङ्ग ऐसा व्यवहार करना तुम्हें उचित नहीं हुआ। इसी भांति वाद विवाद करके वे दोनों ऋषि शान्त होके आपसमें एक दूसरेको अपने शापसे मुक्त किया। तब देवर्षि नारद पहिलेकी भांति फिर अपने दिव्य स्वरूपको प्राप्त हुए, इधर राजपुत्री पति सुकुमारी भी नारद ऋषिका देवतोंके

समान तेजपुञ्जसे युक्त शरीर देखके अन्य पुरुष समस्त उनके समीपसे भागने लगे। तब पर्व्वत ऋषि अनिन्दिता सुकुमारी राजपुत्रीको भागती देखके बोले, हे पतिव्रता! ये तुम्हारे वेही पति निग्रहानिग्रहमें समर्थ महात्मा नारद ऋषि हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, इससे तुम शङ्का रहित होकर इनकी अनुगामिनी बनो। महात्मा पर्व्वत ऋषिने उस राजकन्याके समीप ऐसे विनय युक्त वचन कहके फिर आपसके शापका वृत्तान्त वर्णन किया, तब राजकन्या सुकुमारी पर्व्वत ऋषिके मुख समस्त वृत्तान्त सुनके शान्त हुई। अनन्तर महर्षि पर्व्वत स्वर्ग लोक और नारद ऋषिने अपने गृहको ओर गमन किया।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! मैंने आपके समीप जिस वृत्तान्तको वर्णन किया, वह सब जिन्होंने प्रत्यक्ष देखा था, वह भगवान् नारद ऋषि यहीं पर बैठे हुए हैं; इससे आपके पूछनेपर ये स्वयं ही शेष वृत्तान्त वर्णन करेंगे।

३० अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर नारद मुनिसे यह वचन बोले, हे भगवन्! मैं उस सुवर्णष्ठीवीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त आपके मुखसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

नारद मुनि युधिष्ठिरके पूछने पर सुवर्णष्ठीवीको उत्पत्ति आदि सम्पूर्ण वृत्तान्तको वर्णन करनेमें प्रवृत्त होकर बोले, महाराज! महात्मा कृष्णने तुम्हारे समीप जो कुछ वर्णन किया, वह सब सत्य है, शेष वृत्तान्त मैं कहता हूं, तुम सुनो। किसी समय में और मेरे भानजे महामुनि पर्व्वत ऋषि अर्थात् हम दोनोंने थोड़े समयतक निवास करनेके वास्ते विजयी-श्रेष्ठ राजा सृञ्जयके समीप गमन किया; वह यथारीतिके कार्य्योंसे हम दोनोंकी सेवामें नियुक्त हुए। हम लोग उनके राजमन्दिरमें वास करके खाने पीनेकी समस्त वस्तुओंसे सम्मानित होकर वहां पर निवास करने लगे। इसी भांति वर्षाकाल बीतने पर जब हम लोगोंके गमन करनेका समय उपस्थित हुआ, तब पर्व्वत ऋषि मुझे सम्बोधन करके उस समयके अनुसार मुझसे यह वचन बोले, "हे ब्रह्मन्! हम लोगोंने इतने दिनोंतक इस राजाके घरमें परम सुखसे निवास किया है इस समय कैसे प्रत्युपकारसे इसका कल्याण होसकता है; इस विषयका विचारकरो।" शुभ दर्शन पर्व्वत ऋषिके मुखसे ऐसा वचन सुनके मैंने कहा, "हे भागिनेय! तुम सब विषयोंके पूर्ण करनेमें समर्थ हो, इससे ऐसा कहना तुम्हें योग्य ही है, तुम राजाको इच्छानुसार वर देकर कृतार्थ करो। अथवा यदि तुम्हारी इच्छा होवे तो राजा सृञ्जय हम दोनोंके तप प्रभावसे सिद्धि प्राप्त करें!

तिसके अनन्तर पर्व्वत ऋषि विजयी श्रेष्ठ राजा सृञ्जयसे यह वचन बोले, हे राजन्! तुम्हारी निष्कपट सेवासे हम लोग बहुत प्रसन्न हुए हैं, इससे आज्ञा देता हूं, कि तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो उसे इसही समय विशेष समालोचना करके देखो, यह कहनेका यही अभिप्राय है, कि देवताओंकी हिंसामें प्रवृत्त न होनेसे मनुष्योंका कदापि नाश नहीं होता, इससे तुम इस विषयमें सावधान होकर इच्छानुसार वर मांगो; क्यों कि तुम मेरे समीप वर ग्रहण करनेके योग्य पात्र हो।

सृञ्जय बोले, यदि आप दोनों मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं, तब मुझे समस्त वस्तु प्राप्त हुई हैं; यही मेरे वास्ते परम लाभ तथा महत् फल समझिये। राजा सृञ्जयका ऐसा वचन सुनके पर्व्वत ऋषि बोले, हे राजन्! जो सङ्कल्प बहुत दिनोंसे तुम्हारे अन्तःकरणमें विराजमान

है, उस ही चिर-संकल्पित वरको तुम इस समय हम लोगोंके समीप मांगो।

राजा सृञ्जय बोले, हे महर्षि! हमारी यह इच्छा है, कि महासौभाग्य युक्त, आयुष्मान, वीर्य्यवान दृढ़व्रती, वीर और देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न होवे। उनके ऐसे वचनको सुनके पर्व्वत ऋषि बोले, महाराज! तुमने जो वर मांगा, वह तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छा पूरी होगी; इसके अतिरिक्त तुम्हारे पुत्रके मलमूत्रसे सुवर्ण उत्पन्न होगा, इससे वह सुवर्णष्ठीवी नामसे विख्यात होगा। परन्तु तुमने मन ही मन देवराज इन्द्रके पराभवकी इच्छाकी थी; इससे तुम्हारा पुत्र दीर्घजीवी नहीं होगा। जो हो, तुम इन्द्रके समान तेजस्वी पुत्रकी सदा सर्व्वदा देवराज इन्द्रसे रक्षा करना। राजा सृञ्जय पर्व्वतऋषिके मुखसे ऐसा वचन सुनतेही अत्यन्त भय भीत होकर उनसे बोले, "हे भगवन्! ऐसा अनिष्ट न होवे, आपके तपप्रभावसे मेरा पुत्र दीर्घायु हो," इसी भांति विनययुक्त वचनोंसे उन्हें प्रसन्न करनेके निमित्त यत्न करने लगे, परन्तु पर्व्वतऋषिने इन्द्रके कल्याणकी इच्छा करके राजा सृञ्जयके वचनका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब मैंने राजा सृञ्जयको अत्यन्तही दीनभावसे युक्त देखकर कहा। महाराज! तुम आपदग्रस्त होनेपर मुझे स्मरण करना; तो उस ही समय तुम मेरा दर्शन पाओगे और तुम्हारा वह प्रियपुत्र यदि यमलोकमें भी गया होगा, तौभी मैं उसे ज्योंका त्यों तुम्हारे समीप लाके उपस्थित करूंगा; इससे अब इस विषयके वास्ते शोक मत करो। राजा सृञ्जयसे ऐसा वचन कहके भानजे पर्व्वतऋषि और मैं,—दोनोंने ही अपने अभिलषित स्थानपर गमन किया; सृञ्जय भी अपने राजभवनमें गये। कुछ दिनके अनन्तर राजऋषि सृञ्जयके अग्निके समान तेजस्वी महापराक्रमी एक पुत्र उत्पन्न हुआ, और वह बालक तालाबमें स्थित बड़े पद्मकी भांति क्रमसे बढ़ने लगा। परन्तु पर्व्वतऋषिके वरप्रभावसे उस बालकके निष्ठी वनसे प्रकृत रूपसे सुवर्ण उत्पन्न होने लगा; इसही कारण उसका नाम भी सुवर्णष्ठीवी हुआ।

नारद मुनि बोले, हे कुरुसत्तम युधिष्ठिर! तिसके अनन्तर यह लोकविस्मयकर समाचार चारों ओर फैल गया और बलि तथा वृत्रासुरके नाश करनेवाले भगवान इन्द्रने भी सुना, कि पर्व्वतऋषिके वर प्रभावसे राजा सृञ्जयके एक अद्भुत पुत्र उत्पन्न हुआ है; उससे उन्होंने अपनी पराजयके भयसे डरके बृहस्पतिके निकट सब वृत्तान्त प्रकाश किया; फिर देवतोंके गुरु बृहस्पतिकी सम्मतिके अनुसार उस राजपुत्रका छिद्र खोजने लगे और मूर्त्तिमान दिव्य अस्त्र वज्रको सम्बोधन करके बोले, हे वज्र! पर्व्वतऋषिके वरप्रभावसे राजा सृञ्जयके एक पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह युवा अवस्था प्राप्त होनेसे अवश्य ही मुझे पराजित करेगा; इससे तुम बाघका रूप धरके उसका वध करो ऐसा कहके उन्होंने उस बालकके मारनेकी इच्छासे वज्र चलाया। तब शत्रुओंके जीतनेवाला वज्र इन्द्रकी ऐसी आज्ञा सुनकर गुप्त रीतिसे उस राजपुत्रका छिद्र खोजता हुआ उसके पीछे घूमने लगा। इधर राजा सृञ्जय देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी पुत्रको पाके प्रसन्न चित्तसे थोड़ी सेनाके सहित उस राजकुमारकी रक्षाके वास्ते सर्व्वदा अन्तःपुरमें निवास करने लगे। इसी भांति वह बालक क्रमसे पांच वर्षकी अवस्थाका होगया, परन्तु वह थोड़ी अवस्थाका होकर भी गजराजके समान पराक्रमी हुआ था। उस ही समय एक दिन उस राजपुत्रने खेलनेके वास्ते केवल दासीके साथ गङ्गातीरके निकट निर्ज्जन वनके बीच गमन किया। वहां पहुंचते ही सहसा महाबली पराक्रमी एक शेरको लड़केके सम्मुख आते

देखकर वह बालक भयसे कांपने लगा, और उसके अनन्तर उस व्याघ्रके हस्तगत होके पिसके तथा प्राणरहित होके पृथ्वीमें गिर पड़ा उसे देखकर दासी चिल्लाके रोने लगी। इधर इन्द्रकी मायाप्रभावसे व्याघ्ररूपी वज्र उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होगया। अनन्तर रोती हुई दासीका अत्यन्त आरत शब्द सुनके राजा सृञ्जय स्वयं उस ही ओर दौड़े और वहां पहुंचके देखा, कि "शोभारहित चलनेमें असमर्थ चन्द्रमाके समान राजपुत्र प्राणरहित होके पृथ्वीमें गिरा हुआ है; और किसी हिंसक पशुने उसके गलेका रुधिर पीया है।" उस समय राजा सृञ्जय अत्यन्त दुःखित होकर उस रुधिर लिपटे शरीरसे युक्त मरे हुए पुत्रको गोदमें उठाके आरत स्वरसे विलाप करने लगे। तिसके अनन्तर उस राजकुमारकी माता भी पुत्रकी विपद्-वार्त्ता सुनकर अत्यन्त ही शोकके सहित रोदन करती हुई जिस स्थानमें राजा सृञ्जय विलाप कर रहे थे, वहांपर उपस्थित हुईं। राजा सृञ्जयने बहुत देरतक रोदन करनेके अनन्तर एकाग्रचित्त होकर मुझे स्मरण किया, मैं उसे जानके उस ही समय शोकसे व्याकुल राजाके पास उपस्थित हुआ। अनन्तर चण भर पहिले यदुवीर कृष्णने जो तुम्हारे समीप वर्णन किया; वही सब प्राचीन राज-ऋषियोंका इतिहास उनके समीप वर्णन किया; तिसके अनन्तर इन्द्रकी सम्मतिसे उनके पुत्रको भी फिर जिला दिया। हे राजन्! इससे यह निश्चय जान रखो, कि जो होनहार है, वह अवश्य होता है, किसी प्रकार उसमें अन्यथा नहीं होसकता। जो हो, अनन्त पराक्रमी महायशस्वी राजपुत्र सुवर्णष्ठिवीने फिर जीवित होकर पिता माताको प्रसन्न किया; और कुछ समयके अनन्तर राजा सृञ्जयके परलोक गमन करने पर महाबली अत्यन्त तेजस्वी राजपुत्रने पिताकी राजगद्दी पर बैठके ग्यारह सौ वर्ष पर्य्यन्त निर्विघ्नताके सहित राज्य शासन किया। इसके दिनमें उन्होंने बहुतसी दक्षिणासे युक्त अनेक यज्ञोंके अनुष्ठानसे देवता और पितरोंको तृप्त कर बहुतसे पुत्रोंको उत्पन्न करके कुलको बढ़ाया था। इसी भांति बहुत दिनतक अतुल ऐश्वर्य्य भोगके वह भी अन्त समयमें परलोकको गये। हे महाराज युधिष्ठिर! इससे महातपस्वी व्यासदेव और श्रीकृष्णने तुम्हें जैसा उपदेश किया है, तुम उस ही भांति पिता पितामहसे प्राप्त हुए राज्यभारको ग्रहण करो और लोकोंका पवित्र करनेवाले महा यज्ञोंका अनुष्ठान करके देवताओंको तृप्त करनेके वास्ते यत्न करो; ऐसा होनेसे तुम शरीर त्यागनेके अनन्तर अपने अभिलषित लोकमें गमन कर सकोगे।

३१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कि सम्पूर्ण धर्म्म तत्वके जाननेवाले महा तपस्वी श्री कृष्णचन्द्र द्वैपायन ऋषि राजा युधिष्ठिरको शोकसे आरत और मौनभावसे स्थित देखकर बोले, हे राजीवलोचन धर्म्मराज! राजाओंको प्रजा पालन करना ही एक मात्र धर्म्म है; और सदा धर्म्म करनेवाले मनुष्योंका धर्म्म ही प्रमाण-स्वरूप है; इससे तुम पिता पितामहसे रक्षित उस ही राजधर्म्मको पालन करो।

हे भरतकुल तिलक! तपस्या केवल ब्राह्मणोंका ही धर्म्म है, ऐसी विधि वेदमें दृढ़ रूपसे निश्चित है; वह नित्य धर्म्म ब्राह्मणोंका मूल स्वरूप है; परन्तु समस्त धर्म्मोंके रक्षक क्षत्रिय हैं। क्यों कि तपस्यामें निष्ठावान ब्राह्मण लोग विघ्नोंसे विना रक्षित हुए किसी भांति भी धर्म्मका अनुष्ठान करनेमें समर्थ नहीं हो सके। यदि कोई पुरुष विषय लोभके वशमें होकर राजशासन उल्लङ्घन करे, तो उस लोकयात्रामें

विघ्न डालनेवाले पुरुषको दण्ड देना राजाका कर्त्तव्य है। सेवक, पुत्र वा तपस्वी आदि कोई पुरुष क्यों न हों, यदि मोहके वशमें होकर प्रमाण प्रमाणको अप्रमाण करनेमें प्रवृत्त होवें, तो जिस उपायसे होसके उन पापी पुरुषोंका शासन अथवा उनका बध करना उचित है; इससे अन्यथा वरण करनेसे राजाको पापमें लिप्त होना पड़ता है। किसी दुष्ट पुरुषको धर्म्म लिप्त करते देखके यदि राजा उस दुष्टको दण्ड देके धर्म्मको रक्षा न करे, तो धर्म्म लुप्त होनेका सब पाप राजाको ही लगता है। हे युधिष्ठिर! तुमने धर्म्म लोपक दुर्य्योधन आदि दुष्ट राजाओंको मारके यथार्थ रूपसे चत्रिय धर्म्मकी रक्षा की है, तब किस कारण तुम व्यर्थ शोक करते हो? धर्म्म पूर्व्वक प्रजापालन, दान और दुष्टोंका दमन करना, ये ही राजाओंके प्रकृत धर्म्म हैं।

युधिष्ठिर व्यासदेवके वचनोंको सुनके बोले, हे तपोधन! आप धर्म्मज्ञ पुरुषोंमें अग्रणी हैं तथा धर्म्मके सम्पूर्ण तत्व आपको गुप्त भावसे विदित हैं, इससे आपके उपदेश युक्त वचनोंका मैं कुछ भो संशय नहीं करता हूं, परन्तु मैंने जो राज्यके वास्ते भीष्म-द्रोणाचार्य्य आदि कई एक अवध्य पुरुषोंका बध किया है, वही दुष्कर्म्म मेरे हृदयको भस्म किये डालता है।

श्री वेदव्यास मुनि बोले, हे राजेन्द्र! युद्धभूमिमें जो सब वीर मारे गये, उनका बध करनेवाला ईश्वर, जीव स्वभाव, अथवा उनके किये हुए कर्म्मोंके फल हैं? यदि कहो कि जीव ईश्वरकी प्रेरणासे शुभा-शुभ कर्म्मोंमें प्रवृत्त होता है, तो तुम्हें शोक करना उचित नहीं है; क्योंकि उस शुभाशुभ कर्म्मोंके फलको देनेवाला कर्त्ता ईश्वर ही है, वही फल भोगेगा। उसका दृष्टान्त देखो, कि यदि कोई पुरुष बनमें एक वृक्ष काटे, तो वृक्ष काटनेका पाप उस काटनेवालेको ही लगेगा; कुल्हाड़ेको पाप नहीं लग सकता। यदि कहो, कि कुल्हाड़ा अचेतन अर्थात् जड़ वस्तु है, इसही कारण पापभागी नहीं हो सकता; परन्तु जीव चैतन्य है, इसही कारण नियोज्यकर्त्ता होनेसे वह शुभाशुभ कर्म्मोंका अवश्य फलभागी होगा। तो वृक्ष काटनेवालेको पाप न लगकर कुल्हाड़ा बनानेवालेको भी तो पाप लग सकता है?

हे कुन्तीनन्दन! कभी ऐसा विचार मत करो, कि उस नियोज्यकर्त्ता कुल्हाड़ा बनानेवालेको भी वृक्ष काटनेवालेके पाप-फलमें लिप्त होना पड़ेगा! क्योंकि एक पुरुषने वृक्ष काटा और दूसरेको उस पापका भागी होना पड़ेगा, यह सिद्धान्त कदापि युक्ति-पूरित नहीं हो सकता। इससे तुम भी सब कर्म्मोंके फलको प्रयोजन-कर्त्ता ईश्वर होको समर्पण करो। यदि कहो, जीवही शुभाशुभ कर्म्मोंका कर्त्ता है, उसे प्रेरणा करनेवाला कोई भी नहीं है; ऐसा माननेसे जगन्नियन्ता कोई भी नहीं स्वीकार किया जा सकता; ऐसा होनेसे तुम्हें किसको भय है! तुमने शुभ अथवा अशुभ जो कुछ कर्म्म किये हैं, वेही उत्तम हैं।

हे राजन्! इस समय मैं जो कहता हूं, उसे विशेष रूपसे निश्चय करो। वृक्ष काटनेवालेका पाप कदापि नियोज्यकर्त्ता कुल्हाड़ा बनानेवालेको नहीं लग सकता यह तुम निश्चय समझ रक्खो, कि कोई भी दैवका अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं हो सकता, अर्थात् सब कोई दैवके वशमें होके शुभाशुभ कार्य्योंमें प्रवृत्त होते हैं। यदि तुम स्वभावकोही कर्त्ता समझते हो, तो भूत और भविष्यत् किसी कालमें भी तुम्हारे साथ पापका सम्बन्ध नहीं होसकता। हे युधिष्ठिर! यदि तुम्हें सब लोगोंके धर्म्माधर्म्मकी मीमांसा करनेकी इच्छा हो, तो शास्त्रसे ही इसका निर्णय होसकता; क्योंकि धर्म्माधर्म्म शास्त्रमूलक हैं। इससे उस शास्त्रमें ही जब राजाका दण्ड धारण कर्त्तव्यका

विधि वर्णित है; तब तुम्हें इतना शोकका कौनसा विषय है? हे राजशार्दूल! यदि तुम यह समझते हो, कि शास्त्रका मत ऐसा ही है और सब लोग शास्त्र विधि अनुसार कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं,-इसे स्वीकार करता हूं; परन्तु शुभ और अशुभ कर्म्मोंके फल स्वयं ही जीवके सम्बन्धमें आप ही आके उपस्थित होते हैं, और उन कर्म्मोंके फल भी जीवको प्राप्त होते हैं; तो मैं जो कुछ कहता हूं, उसे निश्चय करो। पापसे अशुभ कर्म्म करनेकी प्रवृत्ति होती है इससे तुम असत् फलदायक सम्पूर्ण कर्म्मोंको सब भांतिसे त्याग कर अब शोक चिन्तासे रहित हो जाओ। हे राजन्! तुमने यथार्थ रीतिसे निज धर्म्म पालन किया है, इससे अब तुम्हें लोकनिन्दित आत्महत्या करनेमें प्रवृत्त होना उचित नहीं है। और देखिये इस लोकमें पापकर्म्मोंके प्रायश्चित्तकी विधि है; परन्तु प्रायश्चित्त जीवित अवस्थामें ही सहजमें किया जा सकता है; शरीर नष्ट होनेपर किस प्रकार प्रायश्चित्त होसकेगा? हे युधिष्ठिर! शरीरकी रक्षा करनेसे तुम अनायास ही प्रायश्चित्तके अनुष्ठान करनेमें समर्थ होसकोगे, और यदि तुम बिना प्रायश्चित्त किये ही शरीर त्याग करोगे; तो परलोकमें तुम्हें अत्यन्त ही पश्चाताप करना पड़ेगा।

३२ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर वेदव्यास मुनिसे यह वचन बोले, हे पितामह! हे तपोधन! मैंने राज्यलोभसे पुत्र, पौत्र, भ्राता, चचा, पितामह, गुरु, ससुर, मामा, भानजे स्वजन, सुहृद मित्र सम्बन्धी आदि तथा दूसरे बहुतेरे क्षत्रियोंका नाश किया है। और भी देखिये, कैसे दुःखका विषय है, कि जो सब राजा दोनों ओरकी सहायता करनेके वास्ते कुरुक्षेत्रमें आके उपस्थित हुए थे, उनके बीच एक भी पुरुष जीते जी घर न जासके, सब कोई रणभूमिमें मरकर यमलोकवासी हुए। हे महर्षि! आप केवल मुझे ही इन सब लोगोंके नाशकी जड़ समझिये। जो लोग सदासर्व्वदा धर्म्म और यज्ञके अनुष्ठानमें रत रहते थे, वैसे धर्म्मात्मा राजा और स्वजन-बान्धवोंको नाश करके इस पुरुषहीन पृथ्वीके राज्यको ग्रहण करनेमें मुझे कौनसा सुख मिलेगा? उन सम्पूर्ण श्रीमान् राजाओंसे रहित पृथ्वीकी दुर्दशाको बारम्बार विचारके मेरा हृदय अब भी रातदिन भस्म हुआ जाता है। विशेष करके भयङ्कर स्वजनहत्या और दोनों ओरकी सेनाके अनगिनत पुरुषोंको मृत्युके मुखमें पतित होते देखकर मेरा चित्त किसी प्रकार भी शान्त नहीं होता है। हाय! इस कुरुक्षेत्रके युद्धमें जिनके पति, पुत्र और भाई मारे गये हैं; उन स्वजनहीन दीन बाराङ्गना स्त्रियोंकी इस समय कैसी दशा होगी; उसे मैं नहीं कह सकता हूं। वे सब स्त्रियें तनक्षीण और दीनभावसे युक्त होकर "क्रूर पाण्डवोंने वृष्णिवंशियोंके सङ्ग मिलके हमारे पति, पुत्र आदि आत्मीय पुरुषोंका वध किया है," ऐसे वचनोंको कहके हम लोगोंकी निन्दा करती हुई पृथ्वीमें गिरेंगी। वे सब स्त्रियें पिता भ्राता, पति और पुत्रोंके मुख न देखकर स्नेह-बन्धनसे युक्त होके शोकित तथा अत्यन्त दुःखित होकर प्राणत्यागके यमलोकमें गमन करेंगी; और धर्म्मकी जैसी सूक्ष्म गति है, उससे हम लोगोंको ही स्त्री वधरूपी पापमें लिप्त होना होगा; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हमने जब राज्यलोभसे आत्मीय पुरुषोंका नाश करके बहुतसा पाप किया है, तब हमको सिर नीचा करके महाघोर नरकमें गमन करना पड़ेगा; इसमें कौन सन्देह कर सकता है? इससे हे ऋषिसत्तम पितामह! आप सब आश्रमोंके विशेष लक्षण मेरे समीप वर्णन कीजिये।

आपके उपदेशके अनुसार मैं कठिन तपस्या करके शरीर त्याग करूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीवेदव्यास मुनि धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरके ऐसे वचनको सुनकर निज-बुद्धि अनुसार समालोचना करके उनसे बोले, हे राजन्! तुम क्षत्रिय धर्म्मको स्मरण करके अपने हृदयके शोकको दूर करो। क्यों कि वे सम्पूर्ण क्षत्रिय पुरुष निजधर्म्मके अनुसार युद्ध भूमिमें मारे गये हैं। वे सब कोई इस पृथ्वीपर महत् यश और परम सौभाग्यकी अभिलाषासे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए थे; परन्तु समय पूर्ण होनेसे ही वे लोग कालके वशमें होके प्राण-रहित होगये। तुम, भीमसेन, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेव, तुम लोग कोई भी उन लोगोंके मारनेवाले नहीं हो। पर्य्यायक्रमसे धर्म्मपूर्व्वक कालने ही उन लोगोंका प्राणहरण किया है। उस कालका कोई माता, पिता, भ्राता तथा अनुग्रहका पात्र नहीं है। जो सम्पूर्ण प्रजाके किये हुए कर्म्मोंका साक्षी है, उस ही कालके प्रभावसे युद्धमें प्रवृत्त हुए क्षत्रिय पुरुष मृत्युको प्राप्त हुए हैं, तब जो काल एक प्राणीको अन्य प्राणीके द्वारा नष्ट करता है वह केवल निमित्त मात्र समझा जाता है; और ऐसाही उसका नियत कार्य्य है।

हे महाराज! पुण्य पापके साक्षी स्वरूप कालको कर्म्म सूत्रात्मक समझनेसे अर्थात् जीवके किये हुए कर्म्म ही भविष्यमें सुख तथा दुःख रूपसे परिणत होते हैं; दूसरे ईश्वर जीवके किये हुए कर्म्मोंके फलको प्रदान करके शुभाशुभ कर्म्मोंमें लिप्त नहीं होता। हे पाण्डुपुत्र! वे सब क्षत्रिय पुरुष जिन कर्म्मोंसे युद्धमें मारे गये हैं, उन लोगोंके नाशके मूल कारण उनके सम्पूर्ण कर्म्मों और अपने किये हुए तपस्या तथा व्रत आदि विषयोंको विचार-करके देखो। क्यों कि तुम अत्यन्त ही क्षमाशील और अजातशत्रु हो, तोभी पूर्व्व कर्म्मके प्रभावसे देवने स्वयं तुम्हें इस हिंसात्मक युद्ध कर्म्ममें प्रवृत्त कराके अनेक पुरुषोंका नाश कराया है। इस-से रथकी भांति यह जगत् ईश्वरके वशमें होकर कालप्रेरित कर्म्मसे ही प्रवर्त्तित होता है। इस पृथ्वीपर प्राणियोंकी उत्पत्ति और नाशके विष-यको विचार कर देखनेसे हर्ष वा शोक करना निरर्थक होता है। महाराज! तुम अब व्यर्थ शोक मत करो, बल्कि उन दुष्कर्म्मोंके निमित्त प्रायश्चित्तकी जैसी विधि है, उसका अनुष्ठान करना उचित है। पहिले देवासुर युद्धके विष-यमें ऐसा सुना गया है, कि असुर जेठे और देवता लोग उनसे छोटे थे। राजलक्ष्मीके वास्ते देवता और असुरोंमें महाघोर भ्रातृ-विरोध उपस्थित हुआ; बत्तीस वर्ष पर्य्यन्त उन लोगोंमें महाभयङ्कर युद्ध होता रहा, अधिक क्या कहा जावे, समुद्रकी भांति उस समय पृथ्वी रुधिरसे परिपूरित होगई।

तिसके अनन्तर देवता लोगोंने दैत्योंको पराजित करके स्वर्ग लोकके राज्यको प्राप्त किया। उसी समय कितने ही वेद जाननेवाले ब्राह्मण पृथ्वीको पाके अभिमानसे मोहित होकर दैत्योंकी सहायतामें तत्पर होगये। हे भारत! वे अठासी हजार दुष्टात्मा पृथ्वीपर शालावृक नामसे विख्यात थे; वे लोग अपने मूर्खताके कारण देवताओंके हाथसे मारे गये। महाराज! पृथ्वी-मण्डलमें जो लोग धर्म्मको नष्ट करके अधर्म्मकी वृद्धि करते हैं; उन दुष्टोंका इस प्रकार नाश करना चाहिये, जैसे देवताओंने दैत्योंका नाश किया था। यदि एकके नाश होनेसे कुलभरकी आपद दूर होवे, तो अवश्य ही एकका नाश करना उचित है, यदि एक कुलके नष्ट करनेसे राज्य भरके सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा होती हो, तो उस कुल भरका नष्ट करनेसे भी धर्म्म नष्ट नहीं होता। हे राजन्! इसी भांति कोई कोई अधर्म्मके कार्य्य हैं, जो धर्म्म रूपसे परिणत होते हैं,

और कोई कोई धर्म्मकी कार्य्य भी अधर्म्मरूपसे गिने जाते हैं; पण्डित लोग इस विषयको विशेष रूपसे जानते हैं। हे भारत! तुम सब शास्त्रोंके विषयोंको भली भांति जानते हो और देवता तथा पूर्व्व राजऋषियोंके आचरित प्राचीन मार्गके ही अनुगामी हुए हो; इससे अब शोक मत करो। तुम यह निश्चय जान रक्खो, कि तुम्हारे समान धर्म्मात्मा और सदाचारी पुरुष नरकमें कदापि गमन नहीं करते! इससे अब तुम इस समय अपने इन भाइयों और सुहृद पुरुषोंको धीरज धारण कराओ! जो पुरुष मनमें इच्छा करके पाप कर्म्मोंमें प्रवृत्त होते हैं और पाप कर्म्म करके कुछ भी पश्चाताप नहीं करते, वेही पुरुष सम्पूर्ण पापोंके भागी होते हैं, ऐसा वेदमें कहा है। ऐसे पापाचारी पुरुषोंके पापके प्रायश्चित्तकी विधि नहीं है, इससे उन पापियोंका पाप नहीं घट सकता, परन्तु तुम सदा धर्म्म कार्य्योंमें रत रहते हो और पाप कर्म्म करनेके वास्ते मनमें भी इच्छा नहीं करते, केवल दुर्य्योधन आदिके दोषने ही तुम्हें युद्ध करनेमें प्रवृत्त कराया था, और कार्य्य समाप्त करके पश्चाताप भी कर रहे हो, इससे तुम्हें प्रायश्चित्त करनेमें अधिकार है। हे महाराज! अश्वमेध नामक महायज्ञके अनुष्ठान करनेसे ही इसका प्रायश्चित्त कहा गया है, इससे तुम अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करो। भगवान इन्द्रने देवताओंके सङ्ग मिलके बार बार दैत्योंका नाश करते हुए एक एक करके क्रमसे एक सौ अश्वमेध यज्ञोंको पूर्ण किया था इसहीसे वह शतक्रतु नामसे विख्यात हुए और पाप रहित होकर स्वर्गलोक जय और परम सुख प्राप्त कर सब दिशाओंको प्रकाशित करते हुए मरुद्गणोंके सहित स्वर्ग लोकके राज्यपर शोभित हो रहे हैं। देखो देवलोकके राजा शचीपति इन्द्र अप्सराओंके सहित महामहिमासे युक्त होकर किस प्रकार सुख पूर्व्वक स्वर्ग लोकमें विराजमान हैं। इस समय तुमने भी अपने पराक्रमसे सब राजाओंको पराजित किया है, और समस्त पृथ्वीपर भी तुम्हारा अधिकार हुआ है, इससे अब तुम सुहृद पुरुषोंके सङ्ग मिलके राज्य और युद्धमें मरे हुए राजाओंके नगरमें गमन करके उन लोगोंके पुत्र, पौत्र वा भ्राता जो कोई वर्त्तमान हों उन्हें उनके पैतृक राज्यपर अभिषिक्त करो। यदि उन लोगोंके बीच कोई बालक हो, तो भी सदाचार और शान्त वचनसे उन्हें राज्यपद पर प्रतिष्ठित करके सब प्रजाके मनको रञ्जन करते हुए पृथ्वीको पालन करो। जो राज्य एक बारगी राजपुत्रोंसे रहित होगये हैं, वहां पर यदि मृत राजाओंकी कन्या हों, तो उन्हें राज्यपर अभिषिक्त कीजिये; क्यों कि स्त्रियोंके पूर्ण मनोरथ होनेसे ही फिर उनके वंशकी बढ़ती होसकेगी; इसी भांति कार्य्य करनेसे तुम्हारा शोक दूर होगा। महाराज! तुम इसी भांति राज्यके सब प्रजाको सुखी करते हुए असुरोंके नाश करनेवाले इन्द्रकी भांति अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करो। कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिमें जो सब महात्मा क्षत्रियोंकी मृत्यु हुई है, उनके वास्ते शोक करना उचित नहीं है, क्यों कि वे सब वीर योद्धा कालके वशमें मोहित होकर क्षत्रिय धर्म्मके अनुसार युद्धभूमिमें मारे गये हैं। इस समय तुमने क्षत्रियोंके यथार्थ धर्म्म और निष्कण्टक राज्य दोनों ही प्राप्त किया है, इससे निज धर्म्मके अनुसार राज्य शासन करो; ऐसा होनेसे ही परलोकमें तुम्हारा कल्याण होगा।

२२ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे महर्षि पितामह, मनुष्यको कैसा कर्म्म करनेसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है; और किन कार्य्योंके करनेसे वे लोग

इन पापोंसे छूट सकते हैं? आप यह वृत्तान्त मेरे समीप कहिये।

धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुनके महर्षि वेदव्यास मुनि बोले, प्रतिषिद्ध और विहित कर्मोंके करनेवाले तथा जो वृथा कार्य्योंमें प्रवृत्त होते हैं, वे सब ही प्रायश्चित्त करनेके योग्य हैं। ब्रह्मचारी पुरुष यदि सूर्य्यके उदय और अस्त होनेके समय शयन करते रहें तो उन्हें भी पापग्रस्त होना पड़ता है। कुनखी अर्थात् पूर्व्व जन्ममें जो पुरुष सुवर्ण चोरी किये रहते हैं, दूसरे जन्ममें उनके हाथ पांवके नख दूषित हो जाते हैं, इस लोकमें वेही पुरुष कुनखी कहके प्रसिद्ध हैं। पहिले जन्ममें शराब पीनेवाले पुरुषोंके दूसरे जन्ममें दांत काले हो जाते हैं; वे पुरुष श्यावदन्ती नामसे विख्यात होते हैं। जिस पुरुषका छोटा भाई अपना आगे विवाह करता है, वह जेष्ठ-परिवित्ति नामसे प्रसिद्ध होता है! परिवेत्ता अर्थात् जो पुरुष जेठे भाईके रहते हुए पहिले अपना विवाह करता है; जेठी बहिनके रहते छोटी बहिनका व्याह होनेसे उस छोटीके पतिका नाम दिधिषूपति कहके प्रसिद्ध होता है। छोटीका पहिले व्याह होनेसे उसकी जेठी बहिनको जो व्याहता है, वह पुरुष दिधिषूका उपपति कहके विख्यात होता है। अवकीर्णी अर्थात् व्रतभ्रष्ट ब्रह्मचारी, परिनिन्दक, द्विजातियोंके वध करनेवाले, सत्पात्रको वेद विद्या न देनेवाले और कुपात्रको वेद विद्या दान करनेवाले, ग्रामघाती मांस बेचनेवाले, अग्नि त्यागी ब्राह्मण, भृतिभोगी अध्यापक गुरुपत्नी घातक, वंश परम्परासे निन्दित पुरुष, यज्ञके अतिरिक्त वृथा पशुओंकी हिंसा करनेवाले घर जलानेवाले, चोरीसे जीविका निर्व्वाह करनेवाले, गुरुजनोंसे विरुद्धता करनेवाले और नियम उल्लङ्घन करनेवाले, ये सब पापग्रस्त पुरुष ही प्रायश्चित्त करनेके अधिकारी हैं। हे कुन्तीनन्दन! इस समय अकार्य्य अर्थात् लौकिक और वेद विरुद्ध कार्य्योंको तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं, चित्त लगाके सुनो। निज धर्म त्यागके पराये धर्म कार्य्योंका अनुष्ठान करना जो वस्तु मांगने योग्य न हों, उन्हें जांचना, अभक्ष्य वस्तुओंको भक्षण करना, शरणागतको परित्याग करना, सेवकोंका पालन न करना, रस, अर्थात् लवण तथा गुड़ आदि बेचना, पशु पक्षी, आदिका नाश करना सामर्थ्य रहते भी स्त्रीको गर्भधारण न कराना और प्रतिदिन देने योग्य गोग्रास आदि न देना, संकल्पकी हुई वस्तुकी दान न करना, और ब्राह्मणोंके ऊपर अत्याचार इन ऊपर कहे हुए कार्य्योंको धर्म जाननेवाले पुरुषोंने अकार्य्य कहके वर्णन किया है। जो पुत्र पिताके सङ्ग विवाद करते हैं, जो गुरु शय्या गामी हैं। और जो उचित समयपर निज स्त्रीसे सन्तान उत्पन्न नहीं करते वे सब ही प्रायश्चित्त करनेके योग्य हैं। महाराज! जिन कर्म्मोंके करने और जिनके न करनेसे मनुष्योंको प्रायश्चित्त करना पड़ता है, उसे मैंने संक्षेप और विस्तारके सहित तुम्हारे समीप वर्णन किया है, अब पाप कर्म्म करनेपर भी जिन कारणोंसे पापी नहीं होना पड़ता, उसे वर्णन करता हूं, सुनो।

वेद जाननेवाला ब्राह्मण भी यदि शस्त्र ग्रहण करके युद्ध भूमिमें गमन करे; जो युद्ध करनेवाले ब्राह्मणोंका वध करनेपर भी ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगता। हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! मैंने जैसी व्यवस्था कही है, वेदमें भी इस विषयका प्रमाण है। जो वेद प्रमाणसे युक्त और विहित धर्म कहके वर्णित है, वह मैं तुम्हारे समीप कहता हूं। निज वृत्तिसे भ्रष्ट आततायी ब्राह्मणका वध करनेसे मारनेवालेको जो ब्रह्महत्याके पापमें नहीं लिप्त होना पड़ता उसका कारण यही है कि उस आततायीका क्रोधही उसके वध करनेवाले पुरुषके क्रोध

उत्पन्न होनेका मूल है। यदि अज्ञानता और असाध्य व्याधिसे जीवन नष्ट होता होवे, तो उस समयमें वेदवित् ज्ञानी वैद्यके उपदेशके अनुसार सुरापान करनेपर फिर संस्कार कराकर लेनेसे ही सुरापानके पापसे मुक्त हो सकेंगे। हे अरिसूदन ! अभक्ष्य वस्तुओंके भक्षणसे जो पाप होते हैं, विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करनेसे मनुष्य उन सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। गुरुकी आज्ञानुसार गुरुपत्नीके सङ्ग गमन करनेसे मनुष्यको पाप नहीं लगता, उसका प्रमाण यह है, कि उद्दालक मुनिने शिष्यके द्वारा अपनी स्त्रीसे श्वेतकेतु नाम पुत्र उत्पन्न कराया था। आपद काल उपस्थित होनेपर गुरुके निमित्त चोरी कर्म्म करनेसे भी पाप नहीं लगता ; परन्तु वह शिष्य गुरुके हित साधनके सिवा अपनी अभिलाषासे यदि चोरी कर्म्ममें प्रवृत्त न होवे, वह चोरी किया हुआ धन यदि ब्रह्मस्व न हो और चोरी करनेवाला यदि उसे स्वयं भोग करनेकी इच्छा करे, तो उसे पापमें नहीं लिप्त होना पड़ेगा। अपने वा दूसरेके प्राण रक्षाके निमित्त गुरुके वास्ते, विवाह और स्त्रीसे रति करनेके समयमें मिथ्या वचन कहनेसे मनुष्य पापी नहीं होसकता। ब्रह्मचारी पुरुषका वीर्य्य यदि स्वप्नमें स्खलित होजावे, तो फिरसे उपनयनकी विधि नहीं है ; उसके प्रायश्चित्तके वास्ते जलती हुई अग्निमें घृत होम करनेकी विधि है। बड़ा भाई यदि विवाहके पहिले ही पतित वा परिव्राजक होजावे, तो छोटा भाई विवाह कर सकता है ; ऐसा करनेसे परिवित्ति दोषमें नहीं फंसना पड़ता। पराई स्त्री यदि कामसे आरत होके स्वयं आकर रति करनेकी इच्छा करे, तो उसके सङ्ग भोग करनेसे धर्म्म नष्ट नहीं होता। यज्ञके बिना पशु वध करना वा दूसरेको पशुओंके वध करनेमें प्रवृत्त कराना उचित नहीं है, परन्तु यज्ञमें वा अपना पशुओंके वध भय होता है, वह पशुओंके ऊपर कृपा प्रकाशित हुई है, अनुग्रह वेदमें वर्णित है। तीर्थस्थानमें यदि कोई पुरुष अज्ञानताके कारण प्रतिदिन योग्यपात्रको दान न देकर अयोग्य ब्राह्मणोंको दान देवे तो उससे उसे दोष नहीं होता। स्त्रीके दुराचारिणी होनेसे उसके सङ्ग रति और भोजन आदि कर्म्म न करके उसे धिक्कार देकर एकत् स्थानमें रखनेसे स्त्री पुरुष दोनों ही निर्दोष होते हैं, अर्थात् दूषित स्त्रियां धिक्कार प्रदानसे तिरस्कृत होनेसे ही पाप रहित हो सकती हैं, और पुरुष स्त्रीका सङ्ग त्यागनेसे निर्दोष होते हैं। जो पुरुष "इससे देवता सोम तृप्त होकर मनुष्योंके इच्छानुसार अर्थात् अन्न उत्पन्नके योग्य जलवृष्टि करते हैं," इससे सोमरस दोनों लोकोंका उपकारक है,—इस प्रकार सोमरसके तत्त्वको जानते हैं, वे सोमरस बेचनेसे पापी नहीं होते। कार्य्य करनेमें असमर्थ सेवकको परित्याग करनेसे स्वामीको दोषभागी नहीं होना पड़ता ; सब गौओंकी रक्षा करनेके वास्ते सम्पूर्ण वनको भस्म किया जा सकता है। महाराज ! मैंने जिन कर्म्मोंको कथा कही है, यदि ऊपर कहे हुए कारणसे वे सब कार्य्य किये जावें ; तो उन कर्म्मोंके करनेवाले पुरुषोंको पापी नहीं होना पड़ता। अब प्रायश्चित्तके विषयको विस्तारपूर्व्वक वर्णन करूंगा, ध्यान देके सुनो।

३४ अध्याय समाप्त।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, महाराज ! प्रायश्चित्त करनेके अनन्तर यदि मनुष्य फिर पूर्व्व कृत पापाचरणमें प्रवृत्त न होवे, तो तपस्या, यज्ञके अनुष्ठान और गौ तथा सुवर्ण दानसे पापसे मुक्त होसकता है। सेवक न रखके निज कार्य्योंको स्वयं करते हुए भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके एक बार भोजन करे, ब्रह्महत्या होनेमें स्थित हो साष्टाङ्ग पाठि होकर रणभूमिपर भ्रमण

करते हुए असूया-रहित होके निज दोष प्रका-शित करे और रात्रिके समय भूमिपर शयन करे,—इसी भांति नियम पूर्व्वक बारह वर्ष व्यतीत करनेसे ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष ब्रह्म हत्याके पापसे छूट जाता है। अथवा यदि इच्छा हो, तो व्यवस्था देनेवाले पण्डितके मतके अनुसार शस्त्रजीवी धनुर्धारी पुरुषके बाणका निशाना होकर प्राणत्याग करे; अथवा अवा-क्शिरा होके जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके अपने शरीरको भस्म कर देवे, अथवा किसी एक वेदमन्त्रको जपते हुए तीन सौ योजन मार्ग भ्रमण करके किसी तीर्थ स्थानमें उपस्थित होनेसे, वा वेद जाननेवाले ब्राह्मणको अपना सर्व्वस्व दान करनेसे; अथवा उस ब्राह्मणको जीवनके समय पर्य्यन्त अन्न वस्त्र और गृहदान करनेसे भी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होसकता है। परन्तु यदि प्राण सङ्कटके समय गो ब्राह्म णकी रक्षा कर सके, तो उस ही समय ब्रह्मह त्याके पापसे मुक्त हो सकता है। यदि कृच्छ्र-भोजी होसके, अर्थात् पहिले तीन दिन सवेरे फिर तीन दिन सन्ध्याके समय और फिर तीन दिन तक बिना मांगी वस्तुओंका भोजन करना होगा और शेषके तीन दिनमें कुछ भी भोजन न करने पावेगा,—इसीको कृच्छ्र भोजन कहते हैं; इसी भांति नियम पूर्व्वक छः वर्ष बितानेसे पुरुष पापसे रहित हो सकते हैं। यदि प्रत्येक महीनेसे प्रथम सप्ताहमे सवेरे, दूसरे सप्ताहमें अयाचित भोजन करके चौथे, सप्ताहमें अनशन व्रत करे, तो तीन वर्षमें ही ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है। यदि पहिले महीनेमें प्रातःकाल, दूसरेमें सन्ध्याके समय, तीसरेमें बिना मांगा हुआ भोजन करके चौथे महीनेमें उपवास व्रत करे,—तो क्रमसे एक वर्ष तक इसी भांति नियम पूर्व्वक रहनेसे ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष अपने पापसे छूटेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। और यदि महीने भरसे अधिक समय तक कुछ भी भोजन न करके केवल जल पीके प्राण धारण करके रह सके तो, इस प्रकार अनशन व्रत करनेवाला पुरुष शीघ्र ही अपापी पापरहित होता है।

हे महाराज! ब्रह्महत्या वा चाहे किसी प्रकारके पापी क्यों न हों—दक्षिणा युक्त अश्व-मेध यज्ञका अनुष्ठान करके अवभृत अर्थात् यज्ञके शेषमें स्नान करनेसे ही ऊपर कहे हुए सब पापोंसे मुक्त हो सकते हैं। महाराज! ब्रह्म-हत्या आदि अनेक भांतिके पापी जो अश्व-मेध यज्ञ करनेसे पापरहित होसकते हैं, इसका वेदमें प्रमाण है। इसी भांति यदि ब्राह्मणके प्राण रक्षामें प्रवृत्त होकर युद्धमें मारा जाय तौभी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो सकता है, अथवा उत्तम ब्राह्मणको एक लाख गऊ दान करनेसे भी ब्रह्महत्याका पाप छूट जाता है; परन्तु दूध देनेवाली पच्चीस हजार कपिला गऊ दान करे तौभी पापसे छूटेगा; और यदि किसी दरिद्र साधु पुरुषको आहारके अभावमें प्राण संशय उपस्थित हो, तो उस समयमें एक हजार बछड़ोंसे युक्त दुग्धवती गऊ दान करनेसे भी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होसकेगा; परन्तु जितेन्द्रिय ब्राह्मणको केवल सौ काम्बोजदेशीय घोड़े दान करनेसे ही पापरहित होगा। यदि याचकको उसकी अभिलाषा अनुसार वस्तु दान कर सके और दान करके किसीसे समीप प्रकाश न करे; तो एक पुरुषको दान देकर ही ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होसकेगा। एक बार सुरापान करनेसे अनियमसे सुरापान करे, तो इस लोक और परलोकमें आत्माको उत्तीर्ण कर सकेगा; अथवा जलरहित स्थानमें ऊंचे पहाड़के ऊपरसे गिरने, वा जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके अथवा महाप्रस्थान-यात्रा अर्थात् केदारनाथपर गमन करके हिमालयमें अपने प्राणत्याग करनेसे ही सुरापानके पापसे मुक्ति लाभ होसकती है। सुरापान करनेवाला

आङ्गिरस बृहस्पतिसव नाम यज्ञके अनुष्ठानसे भी सुरापानके पापसे छूटके फिर ब्राह्मण-समाजमें मिल सकता है; ऐसा वेदमें वर्णित है। यदि प्रायश्चित्तके अनन्तर फिर सुरापानमें प्रवृत्त न होवे, तो मत्सरहीन होकर भूमिदान करनेसे ही पापरहित होसकेगा। गुरुस्त्री गमन करनेवाला पुरुष जलती हुई लोहयुक्त शिलासे लिपटके प्राणत्याग करे, तो उस पापसे मुक्त होसकता है; अथवा अपना लिङ्ग काटके ऊर्द्धदृष्टि होकर परिव्राजक होनेपर भी गुरुपत्नीगमनके पापसे निस्तार पा सकता है। किसी प्रकारके पाप क्यों न हों, शरीर त्याग करनेसे वे सब छूट जाते हैं, परन्तु जिन सब पापोंका वर्णन किया गया है, यदि स्त्रियां उन पापोंमें लिप्त हों, तो वे एकवर्ष पर्य्यन्त आहार-विहार आदि भोगोंको त्यागके इन्द्रिय संयम करनेसे ही पापरहित होसकती हैं। जो पुरुष महाव्रतके अनुष्ठान अर्थात् एक महीने पर्य्यन्त सब भोजन करनेकी वस्तुओंको और जल पीना भी परित्याग करे, तो वह सब पापोंसे मुक्त हो सकता है; और सर्व्वस्वदान करनेसे भी मुक्ति लाभ कर सकेगा। अथवा गुरुकी प्राणरक्षाके वास्ते युद्धमें मरनेसे भी पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होसकता है। गुरुके समीप मिथ्या व्यवहार वा अप्रिय कार्य्य करनेसे फिर उनके इच्छानुसार प्रिय कार्य्य करनेसे उस पापसे मुक्त होगा। यदि कोई पुरुष ब्रह्मचर्य्य आदि व्रत करनेवालोंका व्रत भङ्ग करे, तो उसे छः महीनेतक गायके चमड़े ओढ़के ब्रह्महत्याके समान व्रतका अनुष्ठान करना होगा, तब वह उस पापसे मुक्त होसकेगा। पराये धन और स्त्री हरनेवाले पुरुषको सात वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य व्रतका अनुष्ठान करना होगा, ऐसा करनेसे उसका पाप छूट सकता है; अथवा जिसकी जैसी वस्तु हरण करे, उसे अनेक भांतिके उपायसे वैसी ही वस्तु प्रदान करनेसे भी पापरहित हो सकता है। परिवित्ता और परिवित्ति ये दोनों ही इन्द्रियसंयम करके बारह दिन प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान करनेसे पवित्र हो सकेंगे। परन्तु परिवित्ति अर्थात् जेष्ठ भ्राता छोटे भाईके विवाहके अनन्तर स्त्रीका पाणिग्रहण करके यथानुष्ठान करे, तो उसे भी छोटे भाईकी भांति बारह दिनतक प्राजापत्य व्रतका अनुष्ठान करके प्रायश्चित्त करना होगा; इसके अन्यथा प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ेगा; और परिवेत्ता अर्थात् छोटे भाईका जेष्ठ भ्राताके प्रायश्चित्त करनेके अनन्तर फिर दो परिग्रह करना होगा, इनके बिना उसकी शुद्धि नहीं होसकेगी; इससे वह श्राद्ध आदि कर्म्मोंसे पितरोंका उद्धार भी न कर सकेगा। परन्तु इन परिवेत्ता आदिकोंकी प्रथम विवाहिता स्त्रियोंको पाप नहीं लगेगा, क्यों कि स्त्रियोंको पुरुष कृत पापोंमें लिप्त नहीं होना पड़ता। अधिक क्या कहें यदि स्त्रियोंसे कोई महापाप भी होजावे, तो अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाले वस्तुओंके भोजनसे चातुर्मास व्रतका अनुष्ठान करनेसे ही वह पापरहित हो सकती हैं, धर्म्म जाननेवाले पुरुषोंने ऐसी ही विधि वर्णन की है। स्त्रियां यदि मन ही मन किसी पापाचरणके अनुष्ठानका सङ्कल्प करें, अथवा बिना जाने किसी पापाचारी पुरुषके सङ्ग व्यभिचारमें प्रवृत्त होवें, तो ऋतुकाल उपस्थित होनेसे वे भस्मसे मले हुए पात्रकी भांति शुद्ध होंगी। भोजन करनेके पात्र ब्राह्मण वा शूद्रोंके जूठे अथवा गौओंके सूंघनेपर पञ्चगव्य, मट्टी, जल, भस्म, खटाई और अग्नि,—इन दश वस्तुओंसे शुद्ध होंगे, ब्राह्मणोंको चतुष्पाद धर्म्मके अनुष्ठान करनेकी विधि है, क्षत्रियोंको त्रिपाद, वैश्यको द्विपाद और शूद्रको केवल एक पाद मात्र धर्म्मके अनुष्ठानकी विधि कही गई है। प्रायश्चित्तके विषयकी भी धर्म्मानुष्ठानके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य आदि वर्णोंके

लाघव और गौरवके सहित विचारना उचित है। तिर्य्यग् योनि अर्थात् पशु पक्षियोंके वध करने तथा नाना भांतिके वृक्ष आदिकोंके काटने पर जन—समाजमें अपने किये हुए कर्मोंको प्रकाशित करते हुए तीन बार वायु पान करके रहनेसे ही पुरुष पाप रहित होंगे। अगम्यागमन करनेसे शरीरमें भस्म लगाके भीगे हुए वस्त्रसे अपने सब शरीरको ढांके धुनीको भस्म रूपी शय्या पर शयन और शतरुद्री पाठ करते हुए छः महीना बितानेसे उस पापसे मुक्त होंगे। परन्तु दृष्टान्त भूत शास्त्रमें कहे हुए हेतु-पूरित वचनोंके साथ वेद विहित वाक्योंको ऐक्यता करके सम्पूर्ण पाप कर्म्मों के प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देनी होगी, अर्थात् वेदमें यदि किसी स्थलमें प्रायश्चित्त आदिके विषयमें अस्पष्ट विधि हो, तो शास्त्रोंमें जिस स्थलमें उस विषयकी स्पष्ट विधि दीख पड़े ; उसे युक्तिसे विचारके उस ही दृष्टान्तके अनुसार अस्पष्ट वेदविधिको व्याख्या करके व्यवस्था देनी चाहिये, ब्राह्मण यदि अज्ञानताके वशमें होकर कोई पापाचरण करें, तो वह राग द्वेष मान और अपमानसे रहित होके गायत्री मन्त्रका जप करें, पाप विशेषमें जितने दिनों तक व्रताचरण करना होगा, उतने दिनों तक प्रतिदिन अनावृत स्थलमें खड़ा रहें, रात्रिके समय कुशा पर शयन करें और दिनमें तीनबार तथा रात्रिके समयमें भी तीन बार तालाबमें गमन करके वस्त्र सहित स्नान करें, स्त्री, शूद्र और पतित पुरुषोंके सङ्ग वार्त्तालाप न करें,—इसी भांति व्रताचरण कर-नेसे समस्त पापोंसे मुक्त होगा। मनुष्य पाप वा पुण्य जो कुछ करते हैं परलोकमें गमन करने पर अग्नि, जल और वायु आदि महा भूतोंके अधिष्ठाता देवता लोग उनके किये हुए सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म्मों के साक्षी रहते हैं ; इससे परलोकमें मनुष्योंको अवश्य ही शुभाशुभ कर्म्मों के फलको भोगना पड़ता है। परन्तु पुरुषोंके किये हुए सत् अथवा असत् कर्म्मोंमेंसे जब जिसकी अधिकता होती है, तब वह कर्म्म एक दूसरेको दबाके कर्त्ताको इस ही लोकमें फल देता है। जैसे सदा पापकर्म्मों के अनु-ष्ठान करनेवाले पुरुषोंके पापकी अधिकता होकर शीघ्रही उसे पापका फल भोगना पड़ता है, वैसेही ज्ञानकी आलोचना, तपस्या और यज्ञानुष्ठानसे पुरुष पापरहित होके इस ही लोकमें शुभ कर्म्मों के फलभागी होते हैं ; इससे सदा पाप कर्म्मों से निवृत्त होके प्रति-दिन दान और शुभ कर्म्मों का अनुष्ठान करना उचित है ; ऐसा करनेसे उस पुरुषको पाप-कर्म्मों में लिप्त नहीं होना पड़ता। हे महा-राज ! जिन जिन पापोंको कथा वर्णित हुई हैं उनके अनुरूप ही प्रायश्चित्तकी विधि कही गई ; अब महा पातकके अतिरिक्त भक्ष्य, अभक्ष्य, पात्र और अपात्र इत्यादि नाना प्रका-रके विषयोंको व्यवस्थाका वर्णन करता हूं, सुनो। यह जो ज्ञान और अज्ञान कृत पापोंको विधि कही गई है, वह बालक और अत्यन्त मूर्ख तथा पशु तुल्य अन्त्यजजातिके निमित्त नहीं है ; उसे श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न हुए बुद्धिमान वा किञ्चित ज्ञानवान पुरुषोंके विषयमें ही सम-झना चाहिये। इसी भांति यदि बुद्धिमान पुरुष किसी पापकर्म्म करनेकी इच्छा करके उसके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होते हैं, तो वे अधिक पापी होंगे, और यदि अज्ञानताके कारण दैवी संयोगसे कदाचित पाप कर्म्म होजावे, तो वह उसको लघुता समझी जाती है, इससे उसका प्रायश्चित्त भी थोड़ा होगा। जैसा पापाचरण होगा, उसके अनुरूप ही प्रायश्चित्त करनेसे वह पाप नष्ट होता है, परन्तु शास्त्रमें कही हुई ये सम्पूर्ण विधि नास्तिक और अश्रद्धावान पुरुषोंके सम्बन्धमें नहीं कही गई हैं; इन्हें श्रद्धावान और आस्तिकोंके विषयमें ही जानना चाहिये ; क्यों कि शास्त्रमें दम्भ और द्वेषयुक्त पुरुषोंके विष-

इसमें कोई भी विधि नहीं देख पड़ती ; कारण शास्त्रमें शिष्टाचार ही धर्म्म करके वर्णित हुआ है ; इससे इस लोक और परलोकमें कल्याण प्राप्तिकी अभिलाषा करनेवाले पुरुषोंको इन्हीं शास्त्रोक्त विधिके अनुसार चलना उचित है। महाराज ! मैंने तुमसे पहिलेही कहा है, कि क्षत्रियधर्म्म अथवा निज प्राण रक्षाके निमित्त महादुष्ट-पुरुषोंका वध करनेसे मारनेवालेको कदापि पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता, इस ही कारण तुम भी दुष्टात्मा कौरवोंका वध करनेसे पापी नहीं हुए। यह सब जानके भी यदि तुम्हारे चित्तकी ग्लानि नहीं दूर होती है, तो शास्त्रविधिके अनुसार प्रायश्चित्त करो, परन्तु जैसे अनार्य्य लोग मनके दुःखको न सहके आत्मघाती होते हैं, वैसे आचरण करनेमें तुम्हें कदापि प्रवृत्त होना उचित नहीं है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजय ! धर्म्मराज युधिष्ठिर तपस्वी वेदव्यास मुनिके मुखसे इन सम्पूर्ण उपदेशयुक्त वचनोंको सुनके क्षणभर चिन्ता करके उनसे कहने लगे।

३५ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे महर्षि पितामह ! द्विजातियोंके निमित्त कौनसे अभक्ष्य और कौनसे भक्ष्य हैं ? दोनोंमें कौनसा दान बड़ा है। और उसके पात्र तथा अपात्र कैसे हैं ? उसे मेरे समीप प्रकाशित करके कहिये !

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, महाराज ! इस विषयमें प्राचीन मनुके सिद्ध तथा ऋषियोंसे एक प्राचीन इतिहास कहा था, उसे सुनो। आदिकालमें किसी समय व्रत करनेवाले ऋषियोंने इकट्ठे होकर प्रजापति विभु भगवान मनुके समीप गमन करके धर्म्म विषयमें कई एक प्रश्न किये, उन्होंने कहा, हे प्रजापति ! हम लोग किस प्रकार पात्रको अन्नदान करें ? पवित्रता किस प्रकार होसकती है, दान, अध्ययन, तपस्या कार्य्य और अकार्य्य क्या है ? इन विषयोंको आप हम लोगोंके समीप वर्णन कीजिये।

ऋषियोंके ऐसे वचन सुनके भगवान स्वयम्भू मनु बोले, हे ऋषि लोगों ! तुम लोग संक्षेप और विस्तारके सहित यथारीतिसे धर्म्मकी कथा सुनो। जिन जिन स्थानोंमें पुण्यशीला नदियां बहती हैं और शास्त्रोंमें जिन देशोंके सम्बन्धमें कोई दोष नहीं वर्णित हुए हैं, बहुतसे साधु पुरुष जिन स्थानोंमें निवास करते हैं, उन स्थानोंमें जप, होम, उपवास, आत्मज्ञानका विचार इत्यादि तपस्याके अनुष्ठानसेही लोगोंको पवित्रता होसकती है। ऊपर कहे हुए स्थानोंमें जप होम आदि शुभ कर्म्मोंके अनुष्ठानसे जिस प्रकार मनुष्योंकी पवित्रताका विषय वर्णित हुआ है, वैसे ही कई एक पापोंके फलको विधिको पृथक् रूपसे वर्णन करनेको सामान्यता समझके केवल सुवर्ण, आज्य प्राशन, स्वर्ण आदि पञ्च रत्नोंसे युक्त जलमें स्नान, देव स्थानोंके दर्शनको यात्रा तथा ब्रह्मगिरि आदि कई एक लोक पावन पर्व्वतोंके दर्शन इत्यादि कई एक वस्तुका ही पण्डितोंने सामान्य रूपसे अशुभ कर्म्मोंको नाश करनेवाली प्रायश्चित्तकी विधि कहके वर्णनकी है, उस विधिके अनुसार कार्य्य करनेसे पुरुष शीघ्र ही पाप कर्म्मोंसे मुक्त हो सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। बहुत दिनोंतक जीवित रहनेकी आशा रहनेपर किसीकी भी अवज्ञा करनी उचित नहीं है ; यदि अज्ञानताके कारण ऐसा कार्य्य होजावे, तो उस दोषको दूर करनेके वास्ते तीन बार तप्तकृच्छ्र व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। बिना दी हुई वस्तुको ग्रहण न करना, दान, अध्ययन, तपस्या, अहिंसा, सत्य व्यवहार, क्षमा और देवताओंकी पूजा इत्यादि कई एकको धर्म्मका लक्षण जानना चाहिये। परन्तु इस प्रकारका

धर्म्म भी देशकालके अनुसार कभी कभी अधर्म्मरूपसे गिना जाता है और पतिग्रह, मिथ्या व्यवहार और हिंसा आदि अधर्म्मके कार्य्य भी अवस्थाविशेष अर्थात् प्राण संशय आदि स्थलोंमें धर्म्मरूपसे माने जाते हैं।

हे कुन्तीनन्दन ! बुद्धिमान पुरुषोंके सम्बन्धमें धर्म्म और अधर्म्म यही दो प्रकारसे कहे गये हैं। वह धर्म्माधर्म्म फिर लौकिक और वैदिक मतके अनुसार शुभाशुभ और प्रवृत्ति निवृत्ति भेदसे दो दो अंशोंमें विभक्त है, उसमें प्रवृत्ति वैदिक और शुभाशुभ लौकिक है। प्रवृत्ति अर्थात् वेदविहित ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके अनुष्ठान,—इनके फल बारबार संसारमें जन्म और मृत्यु हैं और निवृत्ति मार्गका फल तत्वज्ञान तथा ब्रह्म प्राप्ति है। इसी भांतिसे लौकिकमें भी परोपकार आदि शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे जनसमाजके बीच प्रशंसा और धर्म्मलाभ आदि शुभ फल मिलता है, और असत कार्य्य अर्थात् जनसमाजके बीच अत्याचार करनेसे जगत्‌में निन्दा होती और राजदण्ड आदि अशुभ फल मिलते हैं; इससे वैदिक मार्गकी भांति लौकिकमें भी शुभाशुभ कर्म्मोंके फलके अनुसार धर्म्माधर्म्म जानना चाहिये। देव इच्छा, शास्त्रमें कहे हुए कर्म्म, निज प्राणरक्षा, माता पिता, स्वामी आदि तथा पालन करनेवाला,—इनके अनुरोधसे अन्याय कार्य्य करनेसे भी शुभ फल मिलता है। परन्तु इस पृथ्वीके बीच जो अश्वमेध यज्ञ आदि कर्म्मोंके फलकी भांति शीघ्र ही फलित होते हैं; अथवा जो उत्तर कालमें फलित होसकता, कहके सन्देहास्पद होगा, उसे केवल कालानुरोधसे किसी मनुष्यको लक्ष्य करके वैसा अनिष्ट कार्य्य करनेसे कर्त्ताको प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। यदि कोई पुरुष क्रोध वा मोहके वशमें होके निज मनकी सन्तुष्टि वा असन्तुष्टि करनेवाले कार्य्यको करे, तो वह शास्त्रमें कहे हुए प्रमाण और युक्तिके अनुसार शरीरको सुखानेवाले उपवास आदि प्रायश्चित्त करके शुद्ध होगा; अथवा हविष्यान्न भोजन, आत्माको पवित्र करनेवाले मन्त्रोंके जप और तीर्थाटन करनेसे भी उस पापसे मुक्त होसकेगा। राजा यदि अज्ञान और क्रोधके वशमें होकर दण्ड-चलावे, तो एकरात्रि और पुरोहित त्यागनेपर तीन रात्रि उपवास करके पवित्र होसकता है। कोई पुरुष यदि पुत्रादिकी मृत्युसे शोकित होके शस्त्र आदिसे आत्महत्या करनेमें प्रवृत्त होके भी कृतकार्य्य न होसके, तो वह तीन दिन उपवास व्रत करनेसे आत्महत्या-प्रवृत्ति दोषसे मुक्त होगा, शास्त्रमें ऐसी ही विधि वर्णित है। जो लोग सब भांतिसे ब्राह्मणत्वादि जातिधर्म्म, गृहस्थी आदि आश्रमोंके धर्म्म, देशाचार और कुलाचारको त्यागते हैं, उन लोगोंका प्रायश्चित्त करनेका अधिकार नहीं है।

हे ऋषिलोगो ! मैंने जो सब व्यवस्था कही है, उसे वैसे ही समझो ; परन्तु धर्म्मविषयमें कोई संशय उत्पन्न होनेपर दश जन वेद शास्त्रोंके जाननेवाले अथवा धर्म्मशास्त्र जाननेवाले तीन पण्डित जैसी व्यवस्था दें, उसे ही धर्म्म कहके ग्रहण करना होगा। बैल, मिट्टी, विष, मलमूत्रके कीड़े, चींटी आदि द्विजातियोंके निमित्त अभक्ष्य हैं। शल्करहित मछली और कछुएके अतिरिक्त मेढक आदि चार पांववाले जलजन्तुओंका भक्षण भी निषेध है। जलमें तैरनेमें समर्थ बगुले, गरुड़, भास, बाज, कौवे, चकवे, मद्गु, गिद्ध हंस और उल्लू आदि पक्षी भक्षणीय नहीं हैं; इनके अतिरिक्त दांतवाले, मांसभक्षी और चार पांववाले पक्षी भी द्विजातियोंके अभक्ष्य जानो। जिनके दोनों ओर दांत हैं और चार दांतवाले पक्षियोंका मांस भी नहीं खाना चाहिये। मानुषी, हरिनी, ऊंटनी, भेड़ी और गदही आदि पशुओंका दूध ब्राह्मणोंको नहीं पीना चाहिये। नवप्रसूता गौका

दूध भी दशदिनके बिना बीते पीना उचित नहीं है। गौ-बछड़ेका, नवप्रसूता स्त्रीका बनाया हुआ और दश दिनके बिना बीते नवप्रसूता गौके दूध-सेका बना हुआ पायस आदि भोजन करना उचित नहीं है। राजाके अन्न खानेसे तेज, शूद्रके अन्न भोजन करनेसे ब्रह्मवर्चस अर्थात् वेदाध्ययनकी प्रतिभा, स्वर्णकार और अवीरा स्त्रीके अन्न भोजन करनेसे आयु क्षीण होती है। वार्द्धुषिक अर्थात् ब्याज ग्रहण करनेवालोंका अन्न मलरूपी और गणिकाके अन्न खानेसे वीर्यह्रास होता है। जो निजपत्नी आदि दुश्चरित्रवाली स्त्रियोंके उपपतियोंको देखके क्षमा करते हैं और जो पुरुष स्त्रियोंके वशीभूत हैं, उनका अन्न भोजन निषेध है। यज्ञके निमित्त पशु वध होते हो और होम आदिके बिना समाप्त हुए यज्ञ करनेवाले पुरुषका अन्न भोजन न करे। सोम रस बेचनेवाले, सूम, तक्ष, व्यभिचारिणी, चिकित्सा करनेवाले और नगर रक्षकका अन्न भी भक्षणीय नहीं है। इसी भांति परिवित्त, स्तुति करनेवाले और जुआरी पुरुषोंका अन्न भी नहीं ग्रहण करना चाहिये। गणान्न और ग्राम-दूषित पुरुषका भी अन्न ग्रहण करना उचित नहीं है। पर्य्युषित और बायें हाथसे ग्रहण किये हुए भोजनको खाना नहीं चाहिये जो निज आत्मीय पुरुषोंको न देकर अपने ही वास्ते खाने योग्य वस्तुओंको संग्रह करता है, उसका तथा सुरासे स्पर्श हुआ अन्न और जूठा भोजन नहीं करना चाहिये। पिष्टक, ऊखके रस और शाक बिगड़नेसे त्यागके योग्य हैं। सत्तू, अपूप और दहीसे युक्त सत्तू भी बहुत समय बीतने पर खाना उचित नहीं है। दूध युक्त पायस, कृसरान्न अर्थात् तिलयुक्त अन्न, पिष्टक और मांस देवताओंके निमित्त तैयार हुए हों, तो ग्रहण करना उचित नहीं है। हे महाराज ! गृहमेधी ब्राह्मण आदि जो कुछ भक्ष्य और अभक्ष्य वस्तु हैं, उसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया, परन्तु देवता, ऋषि, पितर, अतिथि और प्रात्यहिक गृह देवताकी पूजा अर्चना करके अनिषिद्ध वस्तुओंको भोजन करना उचित है। इसी भांति गृहस्थ मनुष्य प्रव्राजित चारों आश्रमोंकी भांति गृहमें ही पापरहित होके रह सकते हैं, अर्थात् स्त्रीके सहित ऊपर कहे हुए सदाचारसे युक्त होकर गृहस्थ पुरुष गृहस्थाश्रममें ही धर्म लाभ करनेमें समर्थ होंगे। धर्मात्मा पुरुषको यशकी अभिलाषा वा भयके कारण दान करना नहीं चाहिये। और नाचने गानेके व्यवसायी, भांड़, मतवाले उन्मत्त, चोर निन्दक, बहिरे, अङ्गहीन, बदसूरत, बौने, दुर्जन, नीचकुलोंमें उत्पन्न हुए पुरुष, उपकारी और जो लोग ब्रह्मचर्य्य आदि व्रतोंसे हीन हैं, उन्हें दान देना उचित नहीं है। श्रोत्रियके अतिरिक्त वेदज्ञानसे रहित ब्राह्मणको भी दान देना निषेध है, क्योंकि वैसा दान और प्रतिग्रह ग्रहण करना अन्याय कार्य्य कहा गया है, इससे वैसे दान देने और लेनेवाले दोनो ही अनर्थमें फंसते हैं। जैसे खदिर वा शिला ग्रहण करके समुद्र तरनेकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके सब उद्यम निष्फल होते और उन्हें अवश्य ही जलमें डूबना पड़ता है, वैसे ही दाता और ग्रहीता दोनों ही पापरूपी समुद्रमें डूबते हैं। भीगे काष्टकी अग्निकी भांति तपस्या स्वाध्याय और सच्चरित्रतासे हीन ब्राह्मणको तेजरहित जानना चाहिये; इससे ऐसे ब्राह्मणको दानदेना निष्फल है। जैसे कपाल पात्रमें स्थित जल और कुत्तेके चमड़ेमें रखनेसे दूध आधार दोषसे अपवित्र होता है, वैसेही सदाचार रहित ब्राह्मणोंके निकट वेदकी भी प्रतिभा नहीं प्राप्त होती। मन्त्रहीन, व्रत रहित, शास्त्र न जाननेवाले और असूयायुक्त लोगोंको केवल दयाके वशमें होकर दान दिया जा सकता है, अर्थात् दीन, भूखे, आतुर, मन्त्रहीन और व्रतहीन आदि पुरुषोंको दान देनेके समय "यह शिष्टा-

चार वा चर्म है ?,, ऐसा विचारके दान करना उचित नहीं है ; उन्हें बाखादिसे पीड़ित न करके केवल दया युक्त होके दान दिया जा सकता है ; वेदज्ञानसे रहित ब्राह्मणको दान देनेसे वह निष्फल हो जाता है,-ऐसा ही शास्त्रमें कहा गया है ; विशेष करके अपात्रको दान देनेसे दान करनेवालेको पापमें फंसना होता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। काठके बने हुए हाथी, चमड़ेसे बने हुए मृग और वेदज्ञानसे हीन ब्राह्मण ये तीनों नाम मात्रके ही हैं ; इनसे कोई भी कार्य्य पूर्ण नहीं हो सकता। जैसे नपुंसक पुरुषोंसे स्त्रियोंके और बन्ध्या स्त्रीसे पुरुषोंके कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकते ; उसी भांति वेदज्ञानसे हीन ब्राह्मणोंसे भी मनुष्योंके कार्य्य नहीं पूर्ण होते। और पङ्खरहित पक्षी, शस्यहीन धान्य, जलरहित कूएं और मन्त्रज्ञानसे रहित ब्राह्मणोंको एक समान ही जानना चाहिये। अधिक क्या कहा जावे, भस्ममें आहुति देनेकी भांति मूर्ख ब्राह्मणको दान देना सब भांति निष्फल होता है। मूर्ख शत्रुस्वरूप है, क्यों कि वह अपापहारी और देवता पितरोंके उद्देशसे दिये हुए हव्य कव्यका नाशक है, इससे मूर्खका इस लोक और परलोकमें कहीं भी कल्याणकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

श्रीवेदव्यास मुनि बोले, हे भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर! तुमने जो कुछ प्रश्न किये, मैंने संक्षेपसे उन सब प्रश्नोंका उत्तर यथा रीतिसे वर्णन किया है ; यह महत् वृत्तान्त आर्य्योंको अवश्य सुनना चाहिये।

३६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे ऋषि सत्तम भगवन्! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके सब धर्म विशेष करके राजधर्म और आपत्काल उपस्थित होने पर मनुष्योंको जिस प्रकारकी रीति अवलम्बन करनी उचित है और धर्मयुक्त मार्गसे गमन करते हुए जिस प्रकार पृथ्वी जय कर सकूंगा,— इस सम्पूर्ण वृत्तान्तको विस्तार पूर्वक सुननेकी इच्छा करता हूं। भक्ष्याभक्ष्य और उपवास आदि महत् कौतूहलसे युक्त पापसे छूटनेके प्रायश्चित्तकी कथा मेरे चित्तको अत्यन्त ही आनन्दित कर रही है। परन्तु राज्य पालन और धर्म आचरण इन दोनोंका आपसमें बड़ा विरुद्ध भाव है ; इससे एक ही पुरुषके द्वारा ये दोनों आपसमें विरुद्ध भावोंसे युक्त कार्य्य कैसे अनुष्ठित हो सकते हैं ? इस हीकी चिन्ता करके मेरा चित्त बार बार मोहित होता है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज जनमेजय! वेदवादियोंमें अग्रणी श्रीवेदव्यास मुनि धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसे वचनोंको सुनके सम्पूर्ण ज्ञान तत्वके जाननेवाले प्राचीन ऋषि नारद मुनिकी ओर देखकर युधिष्ठिरसे बोले, महाराज! यदि तुम्हें भली भांति सम्पूर्ण धर्म तत्व जाननेकी इच्छा हुई हो, तो तुम कुरुपितामह बूढ़े भीष्मके निकट गमन करो। धर्म रहस्यके विषयमें तुम्हारे चित्तमें जो कुछ सन्देह है, सब धर्मोंके जाननेवाले गङ्गानन्दन भीष्म तुम्हारी शङ्का दूर करनेमें समर्थ होंगे। महाराज! स्वर्ग लोकमें जो त्रिपथ गामिनी होके बहरही हैं, उसही गङ्गादेवीसे जिसकी उत्पत्ति हुई है उस गङ्गानन्दन महात्मा भीष्मने इन्द्र आदि देवताओं और बृहस्पति आदि देवर्षियोंका प्रत्यक्ष दर्शन कर अनेक भांतिसे उनकी पूजा अर्चा करके सब राजनीति विद्या सीखी थी। दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य्य और देवतोंके गुरु बृहस्पति जिन सब शास्त्र और धर्मतत्वोंको जानते हैं, कौरवोंमें श्रेष्ठ भीष्मने उन दोनों महात्माओंसे वह सब विद्या प्राप्त की है। विशेष करके उस महाबाहु भीष्मने व्रत करके भृगुकुलनन्दन परशुराम, शुक्राचार्य्य, च्यवन और महात्मा वशि-

गुके निकट साङ्गोपाङ्ग सब वेदोंको पढ़ा था। पहिले उन्होंने अध्यात्म विद्याके सारतत्त्वका जाननेवाले ब्रह्माके जेठे पुत्र महातेजस्वी सनत्कुमारके समीप सब अध्यात्मविद्या सीखी थी और मार्कण्डेय मुनिके मुखसे समस्त यतिधर्म्म भी श्रवण किया था। इसके अतिरिक्त उस पुरुषश्रेष्ठने इन्द्र और परशुरामजीसे सब अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्या सीखी थी। जिन्होंने मनुष्य लोकमें जन्म लेकर भी इच्छामरण प्राप्त किया है; और अपत्यहीन होनेपर भी जिसके पुण्यका प्रभाव सब लोकोंमें विख्यात हुआ है, अधिक क्या कहा जावे, पवित्रात्मा ऋषि लोग जिसके निकट सभासद होकर विराजमान रहते थे, और ध्यान तथा जानने योग्य वस्तुओंमें जिसे कुछ भी अविदित नहीं है, वही सूक्ष्म धर्म्म अर्थके तत्त्वको जाननेवाले धर्म्मज्ञान विशारद भीष्म तुम्हें धर्म्म उपदेश करेंगे; परन्तु उस महात्माके प्राणत्याग होनेके पहिले ही तुम उनके समीप गमन करो।

इतनी कथा सुनके महाबुद्धिमान दीर्घदर्शी राजा युधिष्ठिर ज्ञानियोंमें अग्रणी सत्यवती पुत्र भगवान वेदव्यास मुनिसे बोले, हे महर्षि! मैंने रोएंको खड़े करनेवाले अत्यन्त बृहत स्वजन-हत्या करके सब लोगोंके समीप पृथ्वीनाशक तथा अपराधी कहके गिना गया हूं, विशेष करके भीष्म पितामह रणभूमिमें सरल भावसे युद्ध कर रहे थे, तौभी मैंने कपट व्यवहारके सहित उनका बध कराया है, इससे अब मैं क्या कहके उनके समीप जाके धर्म्मविषयमें प्रश्न करनेमें समर्थ हूंगा?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजाओंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुनके यदुकुल श्रेष्ठ महाबुद्धिमान श्रीकृष्णचन्द्र चारों वर्णोंको प्रजाके हितकी अभिलाषा करके बोले, महाराज! बीते हुए शोकके विषयमें आपको अब बारबार अत्यन्त शोक प्रकाश करना उचित नहीं है। भगवान वेदव्यास मुनिने जो कुछ वचन कहे, उसके अनुष्ठानमें यत्नवान होइये। जैसे ग्रीष्मकालके अन्तमें जल चाहनेवाले प्राणी जलके निमित्त बादलोंकी उपासना करते हैं, वैसे ही आपके ये महाबलवान भाई और ब्राह्मणलोग आपकी उपासना कर रहे हैं, यह देखिये, युद्धमें मरनेसे बचे हुए राजा और कुरु-जाङ्गलवासी राष्ट्रकी चारों वर्णकी सभामें एकत्रित हैं। इससे आप इन लोगों महात्मा ब्राह्मणों, हम सब कोई सुहृद मित्रों, द्रौपदीके अनुरोध और महातेजस्वी वेदव्यास मुनिकी आज्ञानुसार इस प्रियकार्य्यका अनुष्ठान कीजिये, हे शत्रुनाशन! आप यदि भीष्म पितामहके निकट उपदेश ग्रहण करेंगे, तो जगत्का कल्याण होगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुरुषसिंह महाबुद्धिमान राजीवलोचन युधिष्ठिर श्रीकृष्णके वचनको सुनके सबके हितकी इच्छा करके उठे, उन्होंने खद श्रीकृष्ण, अर्जुन महर्षि वेदव्यास और देवस्थान आदि ऋषियोंके विनीत वचनोंसे प्रबोधित होकर धीरज धरके अपना मानसिक दुःख सन्ताप परित्याग किया। पाण्डुपुत्र महायशस्वी राजा युधिष्ठिर वेदवाक्य तथा वेदोंके अर्थ विचारवाले ग्रन्थ तथा मीमांसा और नीति-शास्त्रके जाननेवाले थे; इससे उन्होंने वेद-शास्त्रके सब वचनोंको निश्चय करके अपने चित्तको शान्त किया; और नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भांति ऋषियों और भाइयोंसे घिरके अन्धराज धृतराष्ट्रको आगे करके हस्तिनापुर गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। धर्म्म जाननेवाले कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिरने राज नगरीमें प्रवेश करनेकी इच्छा करके पहिले देवता और सहस्रों ब्राह्मणोंकी पूजा की। उस समय आज्ञा पाते ही उस ही स्थलमें शुभ लक्षणोंसे युक्त पाण्डुर वर्ण सोलह बैल जुते हुए उत्तम २ कम्बल और अजिनयुक्त एक सफेद रथ वहां

लाया गया अनन्तर पवित्र वेदमन्त्रोंसे वह रथ पूजित हुआ। तब राजा युधिष्ठिर इस प्रकार उस रथपर चढ़े, जैसे भगवान चन्द्रमा अपने अमृतमय रथपर चढ़ते हैं। रथपर चढ़नेके समय बन्दीजन चारों ओरसे राजा युधिष्ठिरकी स्तुति करने लगे। महापराक्रमी भीमसेनने उस रथके सारथी होके घोड़ोंकी बागडोर ग्रहणकी और अर्जुन मणि रत्नोंसे भूषित श्वेतछत्र ग्रहण करके राजा युधिष्ठिरके पीछे खड़े हुए।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! उस रथके ऊपर मोतियोंकी माला शोभित जब उस श्वेतछत्रको ग्रहण करके महात्मा अर्जुनने धर्म्मराज युधिष्ठिरके सिरपर धारण किया, तब उस समय बोध हुआ, मानो आकाश मण्डलमें तारापुञ्जसे युक्त एक श्वेत मेघ उदित हुआ है, अनन्तर माद्रीपुत्र महावीर नकुल सहदेव चन्द्रकिरणके समान प्रकाशमान अनेक भांतिकी मणिरत्नोंसे भूषित दो सफेद चवंर ग्रहण करके दोनों ओर खड़े होकर डुलाने लगे। जिस समय उन पांचो भाइयोंने अनेक भांतिके आभूषणोंसे भूषित होकर रथपर चढ़के हस्तिनापुरकी ओर गमन किया, उस समय वह रथ सब प्राणियोंको पञ्चभूत मय देहकी भांति बोध होने लगा। अनन्तर युयुत्सु मनके समान वेगगामी घोड़ोंके रथपर चढ़कर महाराज युधिष्ठिरके अनुगामी हुए, और श्रीकृष्ण सात्यकिके सहित शैब्य और सुग्रीव आदि घोड़ोंसे युक्त सुवर्णमय सफेद रथपर चढ़के कौरवोंके पीछे पीछे गमन करने लगे। अन्धे धृतराष्ट्र गान्धारीके सहित पालकीमें चढ़के धर्म्मराज युधिष्ठिरके आगे आगे गमन करने लगे। तिसके पीछे कुन्ती द्रौपदी और अन्य कौरवोंकी स्त्रियां नाना भांतिकी सवारियोंमें बैठके विदुरके सङ्ग चलीं।

अनन्तर भली भांति वस्त्र और भूषणोंसे भूषित रथी, गजपति, घुड़सवार आदि सेना उनके पीछे पीछे गमन करने लगी। उस समय वैतालिक और सूत, मागध, सुललित भाषामें स्तुति पाठ करते हुए राजाओंके संग हस्तिनापुरकी ओर गमन करने लगे। महाराज! राजा युधिष्ठिर इस ही भांति जब चतुरंगिनी सेना और स्वजनोंमें घिरकर गमन करने लगे, उस समय सब मार्गमें बहुत भीड़ इकट्ठी होगई और वे सब लोग आनन्दित और हर्षित होके आपसमें वार्त्तालाप करते थे; उससे उस समय में महाकोलाहल सुनाई देता था। पृथापुत्र राजा युधिष्ठिर नगरमें आवेंगे, इस समाचारको सुनके नगरवासियोंने पहिलेसे ही नगरको विधिपूर्व्वक सज्जित कर रखा था। उस समय नगरके बीच मार्गोंमें फूलोंसे सब भूमि इस प्रकार सजाई गई थी, कि सब मार्ग पुष्पमय बोध होते थे, उस समय सब राजमार्ग धूपदीपसे युक्त और ध्वजा पताकासे परिपूरित थे; राजनगरीमें रहनेवाले कर्म्मचारियोंने फूल माला तथा प्रियंग आदि सुगन्धित वस्तुओंसे गृहोंको सज्जित कर रखा था। नगरके दरवाजे तथा समस्त पुरवासियोंके द्वारपर जलयुक्त धातुके नवीन कलश दीख पड़ते थे; और जगह जगह सुन्दर अङ्गोंसे युक्त महासुन्दरी मनकी हरनेवाली कन्यायें खड़ी की गई थीं। पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने सुहृद मित्रोंके सहित पुरवासियोंके मङ्गलजनक वचन सुनते हुए ऊपर कहे हुए शोभासे शोभित और मङ्गल लक्षणोंसे युक्त नगरके भीतर प्रवेश किया।

३७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पृथापुत्रोंको नगरमें प्रवेश करते सुनकर अनगिनत पुरवासी उनके दर्शनकी लालसासे इकट्ठे हुए। उस समय राजमार्ग और चौतरे इस प्रकार शोभित हुए

थे, जैसे चन्द्रमाको देखके समुद्र उमड़ता है। राजमार्गके दोनों ओर नाना भांतिके अलङ्कारोंसे शोभित बड़ी२ अटारियां स्त्रियोंके समूहसे परिपूर्ण होकर इस प्रकार बोध होती थीं, मानो उनके भारसे हिल रही हैं। वे सब स्त्रियां लज्जासे युक्त तथा मृदुस्वरसे द्रौपदीको कहती थीं,—हे पाञ्चाली! हे कल्याणि! महर्षियोंकी उपासना करनेवाली गौतमीकी भांति तुम सदा सर्व्वदा पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंकी उपासना करती हो, तुम्हारे व्रताचरण आदि सब कर्म्म अमोघ हैं; इससे तुम धन्य हो! ऐसा बचन कहके युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्ज्जुन, नकुल और सहदेवकी भी प्रशंसा करने लगीं। उन लोगोंके उस प्रीति और प्रेमसे पूर्ण प्रशंसासूचक आपसकी वार्त्तालापसे वे सब अटारियां परिपूरित हो रही थीं। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने राजमार्गको अतिक्रम करके अनेक अलङ्कारोंसे भूषित राजपुरीमें प्रवेश किया। उस समय सब मनुष्य तथा पुरवासी लोग उनके सम्मुख उपस्थित होकर कहने लगे, हे शत्रुनाशन! हे राजेन्द्र! भाग्यसे ही आपने विजय लाभ करके फिर राज्य प्राप्त किया है; यह सब आपके धर्म्मप्रभावसे ही हुआ है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, इस समय आप हम लोगोंके राजा होकर देवराज इन्द्रकी भांति प्रजाको पालन करते हुए एक सौ वर्ष पर्य्यन्त राज्य भोग कीजिये, इसी प्रकार कानोंका सुख देनेवाले बचन सब कोई कहने लगे। श्रीमान् धर्म्मराज युधिष्ठिर राजनगरीके बीच प्रजाओंके मङ्गलमय बचनोंसे पूजित होके और ब्राह्मणोंके आशीर्व्वादको सुनते तथा पुरवासी और राजसेवकोंके जय शब्दसे सत्कृत होते हुए राजभवनकी बाहिरी कक्षामें प्रवेश करनेके अनन्तर रथसे उतरे और भीतर प्रवेश करके अनेक भांतिकी मणि रत्न और सुगन्धित पुष्पमालासे शोभित मन्दिरमें प्रतिष्ठित देवमूर्त्तियोंके दर्शन करके धूप दीप, फलपुष्प नैवेद्यसे उनकी पूजा की। तिसके अनन्तर मांगलिक वस्तुओंको हाथमें ग्रहण किये हुए कितने ही महात्मा ब्राह्मणोंका दर्शन किया। उस समय महायशस्वी राजा युधिष्ठिर आशीर्व्वाद देनेवाले ब्राह्मणोंके बीचमें घिरके इस प्रकार शोभित हुए, जैसे तारापुञ्जके बीचमें चन्द्रमा शोभित होता है अनन्तर उन्होंने गुरु धौम्य और जेठे पिता धृतराष्ट्रको सत्कृत कर ब्राह्मणोंके बीचमें गमन करके उन लोगोंसे कहने लगे, कि आप लोगोंकी क्या इच्छा है, आपकी क्या अभिलाषा है? इसी भांति प्रत्येक ब्राह्मणोंसे प्रश्न करते हुए बहुत सा सुवर्ण, रत्न, वस्तु, मनोहर मोदक और गऊ दान कर हर एक ब्राह्मणको सन्तुष्ट करके उनकी पूजा की। उस समय सम्पूर्ण दर्शक तथा पुरवासी लोग उन वेदज्ञ ब्राह्मणोंके पदपदाक्षरोंसे युक्त मनोहर आशीर्व्वाद बचनोंका एकबारगी हंसनिनादकी भांति सुनने लगे। महाराज! सुहृदमित्रोंके आनन्दको बढ़ानेवाले उन पुण्यात्मा ब्राह्मणोंका अशीर्व्वाद शब्द एकबारगी इस प्रकार समुत्थित होकर ऐसा बोध हुआ, कि उस शब्दसे आकाशमण्डल गूंज उठा। उस समय अनेक पुरुषोंके जयजयकार, शङ्ख और नगाड़ोंके शब्द, मिलके तुमुल शब्द सुनाई देने लगा। कुछ समयके अनन्तर जब पुरवासी और ब्राह्मणोंका शब्द बन्द होकर सन्नाटा छागया, तब उस समय दुर्य्योधनका मित्र चार्व्वाक राक्षस मायाप्रभावसे रुद्राक्षकी माला, शिखा और त्रिदण्ड धारण कर भिक्षुक ब्राह्मणका वेष बनाके उस स्थानमें आके उपस्थित हुआ। वह दुष्ट महात्मा पाण्डवोंके अनिष्टकी अभिलाषा करके लज्जा और भयरहित होकर राजाओंकी मण्डली तथा ब्राह्मणोंके बीचमें गमन करके किसीसे भी कुछ वार्त्तालाप न करके एकबारगी राजा युधिष्ठिरके समीप आके उनसे बोला,

महाराज! ये सब ब्राह्मण लोग जो मेरे ऊपर धिक्कार शब्दका प्रयोग कर रहे हैं, वह केवल आरोपित वचन मात्र है; प्रत्युत वे आपको कह रहे हैं, कि "तुम ज्ञाति हत्या करनेवाले, दुष्ट राजा हो, इससे तुम्हें धिक्कार है!" हे कुन्तीनन्दन! स्वजनोंका वध करके तुम्हें जो कुछ प्राप्त हुआ है, उसका कुछ भी प्रयोजन नहीं है; विशेष करके गुरुहत्या करने पर जीनेसे मरना ही उत्तम है। ब्राह्मण लोग उस दुष्ट राक्षसके वचनको सुनके अत्यन्त दुखित होके चिल्लाने लगे, उन ब्राह्मणोंने और स्वयं धर्म्मराजने भी लज्जासे अत्यन्त व्याकुल होकर कुछ समय तक शिर नीचा करके मौनावलम्बन किया। अनन्तर युधिष्ठिर बोले, हे ब्राह्मण लोगो! मैं विनयपूर्व्वक आप लोगोंसे प्रार्थना करता हूं, कि आप लोग मेरे ऊपर प्रसन्न होइये; मैं स्वयं सुख भोगके वास्ते राज्यग्रहणकी अभिलाषा नहीं करता हूं, परन्तु चिरकालसे दुःखित अपने इन भाइयोंके वास्ते राज्यग्रहण करता हूं; इससे आप लोग अब मेरे विषयमें धिक्कार प्रदान न कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, ब्राह्मण लोग राजा युधिष्ठिरकी कातरता युक्त वचन सुनके बोले, महाराज! हम लोगोंने ये सब वचन नहीं कहे हैं, वरन अब भी कहते हैं, कि आपकी श्री बढ़े। उन वेद जाननेवाले तपस्वी महात्मा ब्राह्मणोंने धर्म्मराज युधिष्ठिरसे ऐसा वचन कहके उस कपट वेषवाले ब्राह्मणके विषयको जाननेकी कोशिश की, और ध्यानसे क्षणमात्रमें सब जान लिया; अर्थात् उसे चार्व्वाक राक्षस समझा। तब वे लोग युधिष्ठिरको सम्बोधन करके बोले, महाराज! हम लोगोंने कोई विरुद्ध वचन नहीं कहा, इससे आपका मानसिक शोक और दुःख दूर होवे, आप भाइयोंके सहित बहुत दिनों तक जीवित रहके परम सुखके सहित राज्य भोग कीजिये। इस दुष्टात्माको हमने ध्यानसे पहचान लिया है, यह दुर्य्योधनका मित्र चार्व्वाक नामका राक्षस है; दुर्य्योधनके हितकी अभिलाषासे परिव्राजक वेषसे आपके निकट आके तुम्हारे अनिष्टकी इच्छासे ऐसा वचन कह रहा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! उन सब पवित्रात्मा ब्राह्मणोंने राजा युधिष्ठिरसे ऐसा वचन कहते हुए अत्यन्त क्रोधित होकर उस पापाचारी राक्षसकी अनेक भांतिसे निन्दा करके हुङ्कारसे ही उसे भस्म कर दिया। तब चार्व्वाक राक्षस उस समय ब्राह्मणोंके तेज प्रभावसे इस प्रकार भस्म होगया, जैसे इन्द्रके वज्र-प्रभावसे नवीन अंकुरोंसे युक्त वृक्ष भस्म होजाते हैं। जब ब्राह्मणोंने इस प्रकार राक्षसका नाश किया, तब धर्म्मराज युधिष्ठिरने सुहृद मित्रोंके सहित अत्यन्त आनन्दित होके उन महात्मा ब्राह्मणोंकी विधि पूर्व्वक पूजा की और ब्राह्मणोंने भी राजा युधिष्ठिरको प्रसन्न करके अपने अपने स्थानोंपर गमन किया।

३८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सर्व्वदर्शी देवकीनन्दन जनार्द्दन कृष्ण भाइयोंके सहित बैठे हुए धर्म्मराजसे बोले, महाराज! इस पृथ्वीमण्डलके बीच ब्राह्मणोंकी ही सब भांतिसे पूजा करनी हम लोगोंको उचित है, क्योंकि ब्राह्मणोंके समीप सदा सर्व्वदा विनीत भावसे रहनेसे वे लोग प्रसन्न होके विनयी भक्तोंकी मङ्गलकामना सिद्ध करते हैं। जो दुष्टात्मा अभिमानसे मतवाले होके ब्राह्मणोंकी अवज्ञा करते हैं, वे उस ही समय उनके अव्यर्थ वचनकी अग्नि सदृश शापरूपी अग्निमें भस्म होजाते हैं; इस ही कारण ब्राह्मण लोग इस जगतके बीच वाक्यवज्र और भूदेव कहके प्रसिद्ध हैं। महाराज! मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूं, सुनिये।

सतयुगमें चार्व्वाक राक्षसने बदरिकाश्रममें स्थित होके महाघोर तपस्या करके ब्रह्माको प्रसन्न किया था। जब पितामह ब्रह्मा वर देनेके वास्ते उसके समीप उपस्थित हुए उस समय उसने यह वर मांगा था, कि "किसी प्राणीसे भी मुझे भय उत्पन्न न होवे,"—जगत्पति ब्रह्माने उसकी प्रार्थना सुनके उसे वरदान किया, कि, "किसी प्राणीसे भी तुम्हें भय नहीं होगा, परन्तु ब्राह्मणोंकी अवमान ना करनेसे उस ही समय तुम्हारी मृत्यु होगी।" वह पापी राक्षस ब्रह्माके समीप वर पाके अत्यन्त पराक्रमी तीव्र कर्म्म करनेवाला और महाबलवान होके इस जगत्‌के सब प्राणियोंको दुःखित करनेमें प्रवृत्त हुआ। देवताओंने क्रमसे चार्व्वाक राक्षसके उपद्रवसे व्याकुल तथा दुःखित हो ब्रह्माके निकट गमन कर उसके बधके निमित्त अनुरोध किया। उस समय अव्ययदेव ब्रह्माने उन देवताओंसे कहा, हे देवतो! शीघ्र ही उस दुराचारी राक्षसकी जिस भांति मृत्यु होगी, मैंने वह उपाय स्थिर कर रक्खा है, सुनो। मनुष्य लोकमें राजा दुर्य्योधन चार्व्वाक राक्षसका मित्र होगा उस ही मित्रता स्नेहसे बद्ध होकर वह ब्राह्मणोंका अपमान करेगा; उससे वाक्य बल सम्पत्तिसे युक्त ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होके उस पापी चार्व्वाकको शापरूपी अग्निसे भस्म कर देंगे। उस समय देवता लोग ब्रह्माका ऐसा बचन सुनके निश्चिन्त होके अपने स्थानोंपर गये। हे राजेन्द्र! इस ही कारणसे वह दुष्टात्मा चार्व्वाक राक्षस आज ब्राह्मणोंके तेजप्रभावसे भस्म होगया, इससे आप उसके वास्ते कुछ भी शोक न कीजिये और अपने मृत स्वजनोंके वास्ते भी अब आप चित्तको ग्लानियुक्त न कीजिये; क्यों कि वे वीरोंमें मुख्य महात्मा क्षत्रिय पुरुष युद्धमें मरके स्वर्गलोकमें गये हैं; इससे आप इस समय शत्रुजय, प्रजापालन और ब्राह्मणोंकी पूजा आदि अपने कर्त्तव्य कर्म्मोंके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होजाइये।

३९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्म्मपत्र राजा युधिष्ठिरने श्रीकृष्णके बचनको सुनके मानसिक चिन्ता तथा दुःखको दूर किया और पूर्व्व ओर मुख करके सुवर्णके आसनपर बैठे। अनन्तर कृष्ण और सात्यकी राजा युधिष्ठिरके सम्मुखमें ही प्रकाशमान स्वर्णासन पर बैठ गये। महात्मा भीमसेन और अर्ज्जुन राजा युधिष्ठिरको बीचमें करके उनके बगलमें ही मणिरत्नोंसे जटित सुन्दर पीठासनोंपर बैठे; पाण्डवोंकी माता कुन्तीदेवी नकुल सहदेवको सङ्ग लेकर सुवर्ण भूषित हाथीदांतके सफेद आसनपर बैठीं। राजा दुर्य्योधनके पुरोहित सुधर्म्मा, पाण्डवपुरोहित धौम्य मुनि, राजा धृतराष्ट्र और विदुर आदि सब कोई अग्निके समान प्रकाशमान आसनोंपर पृथक् पृथक् बैठ गये। यशस्विनी गान्धारी, सञ्जय और युयुत्सु राजा धृतराष्ट्रके समीपमें ही बैठे। तिसके अनन्तर धर्म्मात्मा राजा युधिष्ठिरने सफेद पुष्प, भूमि, सोना, चांदी, मणि, अक्षत और सब भांतिकी उत्तम वस्तुओंसे अर्च्चित देवता पीठ आदि स्पर्श किया। उस ही समय सब प्रजा तथा पुरवासियोंने अनेक भांतिके मणि, रत्न मृत्तिका, सुवर्ण और अनेक भांतिकी माङ्गलिक वस्तुओंको ग्रहण करके पुरोहितके सङ्ग आके राजदर्शन किया। तिसके अनन्तर सोना, चांदी और काष्ठमय पृथ्वीकी मूर्त्ति, पूर्ण घड़े, फूल, आखा कुश, दूध, दही आदि वस्तु और पीपल पलाश, बेलक, आम तथा उदुम्बर आदि काष्ठोंके बने हुए श्रुवे सुवर्ण भूषित शङ्ख, और मधु, घृत आदि सम्पूर्ण माङ्गलिक वस्तु उस स्थलमें लाके रक्खी गईं। अनन्तर पाण्डवोंके पुरोहित बुद्धिमान धौम्य

मुनिने श्रीकृष्णकी सम्मतिसे पूर्व्व और उत्तर भागमें क्रमसे नीची करके सब शुभ लक्षणोंसे युक्त सुन्दर वेदी तैयार करके उसके निकटमें ही जलती हुई अग्निके समान दृढ़ चरण अथात् पायासे युक्त ऊपरके हिस्सेमें व्याघ्र चर्म्मसे भूषित प्रज्वलित सर्व्वभद्र नाम आसन पर राजा युधिष्ठिर और द्रौपदीको बैठाकर विहित मन्त्रोंको उच्चारण करते हुए आगमें आहुति देनेमें प्रवृत्त हुए। होमकार्य्य समाप्त होनेपर श्रीकृष्णने उठके लोकपूजित शङ्ख ग्रहण करके कुन्तीनन्दन पृथ्वीनाथ युधिष्ठिरको अभिषिक्त किया। अनन्तर कृष्णकी आज्ञासे राजा धृतराष्ट्र और सब प्रजा जल लेके राजा युधिष्ठिरके ऊपर अभिषेचन करनेमें प्रवृत्त हुई; परन्तु धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिर भाइयोंके सहित पाञ्चजन्य शङ्खके जलसे अभिषिक्त होकर अत्यन्त दर्शनीय हुए। उसही समय ढोल नगाड़े आदि बाजा बजने लगी।

तिसके अनन्तर धर्म्मराज युधिष्ठिरने प्रजाके दिये हुए उपहार आदि ग्रहण करके बहुतसा धन देकर उन लोगोंको सत्कृत किया, और वेद पढ़नेवाले श्रुति तथा शीलसे युक्त स्वस्ति-वाचक ब्राह्मणोंको एक एक हजार स्वर्णमुद्रा दान किया। ब्राह्मण लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रीतिपूर्व्वक हंसकी भांति मधुर शब्दसे जय हो; जय हो; स्वस्ति स्वस्ति;—हे महाबाहो! भाग्यसे ही तुम्हारी विजय हुई है, हे महा तेजस्विन्! तुमने प्रारब्धहीसे पराक्रम द्वारा क्षत्रिय धर्म्म लाभ किया है; प्रारब्धसे ही गाण्डीव धनुर्धारी अर्ज्जुन, भीम, नकुल सहदेव और तुम शत्रुओंको पराजित करके वैसे भयङ्कर संग्रामसे मुक्त हुए हो; इस समय अब जो कुछ कर्त्तव्य कर्म्म करना बाकी है, उसके अनुष्ठानमें शीघ्र प्रवृत्त हो जाओ। इसी भांति आशीर्व्वाद युक्त वचन कहते हुए सब कोई राजा युधिष्ठि-रकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगी। धर्म्मराज युधिष्ठिरने उन साधुओंसे इस प्रकार पूजित होकर सुहृदोंके सहित बहुत बड़ेभारी राज्य भारको ग्रहण किया।

४० अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर प्रजा और ब्राह्मणोंके देश-कालके अनुसार सब वचन सुनके बोले, हे ब्राह्मण लोगो! पाण्डुपत्र धन्य है, क्योंकि चाहे सत्य हो, चाहे मिथ्याही हो, आप लोग उप-स्थित होके उनके गुणोंको वर्णन कर रहे हैं। विशेष करके आप लोग जब मत्सरताहीन होके हम लोगोंको गुण-सम्पन्न कहते हैं, तब यह बोध होता है कि हम निश्चय ही आप लोगोंके कृपापात्र है। देखिये, ये जो हमारे जेठे पिता महाराज धृतराष्ट्र है, वह हम लोगोंके पास देवता स्वरूप हैं, इससे आप लोग यदि मेरे प्रियकार्य्य तथा कल्याणके अभिलाषी हैं, तो इनके प्रियकार्य्योंके करनेमें नियुक्त रहि-येगा। अधिक क्या कहें, मैं जो इस प्रकार स्वजनोंको मारके भी अवतक जीवन धारण कर रहा हूं, वह केवल आलस रहित होके इनको सेवा टहलके निमित्त ही समझियेगा। मैं यदि आप लोगों और सुहृद पुरुषोंका कृपा पात्र होऊं, तो आप लोग धृतराष्ट्रके सङ्ग पहि-लेकी ही भांति व्यवहार कीजिये। ये हमारे, आपके और जगत्के स्वामी है, यह सब पृथ्वी और पाण्डव लोग इनके अधीन हैं। मैंने जो कुछ कहा, आप लोग मेरे उस वचनको स्मरण रखियेगा।

राजा युधिष्ठिरने इसी भांति ब्राह्मणोंके समीप धृतराष्ट्रको "राजा" कहके सबको विदित करके ब्राह्मणोंको निज निज स्थानोंपर जानेके वास्ते विदा किया। तिसके अनन्तर उन्होंने पुरवासी तथा जनपदवासी सब प्रजाको विदा कर राजकार्य्यमें प्रवृत्त होके प्रीति पूर्व्वक

भीमसेनको युवराज किया। मन्त्र निश्चय, शत्रुओंके सङ्ग सन्धि स्थापन, युद्धके निमित्त यात्रा, शत्रुता करके निवास, दोनों ओर सन्धि करना और किला आदिक वा किसीका आश्रय ग्रहण करना इत्यादि राज्य-रक्षाके विषयमें ऊपर कहे हुए छः उपायोंके विचारके निमित्त बुद्धिमान विदुरको नियुक्त किया; कर्त्तव्याकर्त्तव्य विषयों और आय व्ययके विचारके निमित्त सब गुणोंसे युक्त वृद्ध सञ्जयको नियत किया। सेनाका परिमाण, उन्हें अन्न और वेतन देने तथा सेनाके सब कार्य्योंको देखनेके निमित्त नकुलको नियुक्त किया और दुष्टोंके दमन तथा शत्रु राज्य आक्रमणका भार अर्ज्जुनको सौंपा। प्रात्यहिक ब्राह्मणों और देव कार्य्योंका भार निज पुरोहित धौम्य मुनिको सौंपा! केवल सहदेवको सर्व्वदा अपने समीपमें रहनेके निमित्त आज्ञा दी, क्योंकि धर्म्मराज हर समय सहदेवसे रक्षित होना कर्त्तव्य कार्य्य समझते थे। पृथ्वीनाथ युधिष्ठिरने इसके अतिरिक्त जो कार्य्य जिस पुरुषके योग्य समझा अत्यन्त प्रीतिके सहित उसे उस ही कार्य्य पर नियुक्त कर दिया।

तिसके अनन्तर धर्म्मराज धर्म्मात्मा शत्रुनाशन राजा युधिष्ठिर महाबुद्धिमान् विदुर और युयुत्सुसे बोले,—हमारे जेठे पिता राजा धृतराष्ट्रको जब जिस कार्य्यकी आवश्यकता होगी, उस ही समय आप लोग स्वयं उठके आलस रहित होकर उन कार्य्योंको पूरा कीजियेगा। और नगर तथा जनपदवासी प्रजाके सम्बन्धमें जो कुछ कार्य्य उपस्थित होगा, उसे महाराज धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर अपने अपने कार्य्यभारके अनुसार पूर्ण कीजियेगा।

४१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, उदार बुद्धिसे युक्त राजा युधिष्ठिरने कुरुक्षेत्रके युद्धमें मरे हुए स्वजनोंका फिर पृथक् रूपसे श्राद्ध कराया और अन्धे राजा महायशस्वी धृतराष्ट्रने भी अपने पुत्रोंके श्राद्धमें अन्न, रत्न और गौ आदिक सब वस्तु इच्छानुसार ब्राह्मणोंको दान किया; विशेष करके धर्म्मपुत्र युधिष्ठिरने द्रौपदीके सहित एकत्रित होके महात्मा द्रोणाचार्य्य, कर्ण, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, हिडिम्बापुत्र घटोत्कच, द्रौपदीके पांचो पुत्र और परम हितैषी राजा विराट आदि मृत सुहृद मित्रोंके श्राद्धमें हर एकके नामसे एक एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराके उन्हें धन रत्न, वस्त्र और गज आदि दान किया। इसके अतिरिक्त जिन राजाओंके पुत्रादि तथा इष्टमित्रोंमें किसीको जीवित नहीं देखा, उनके श्राद्ध करनेके अनन्तर हर एकके नामसे एक एक धर्म्मशाला, तालाब, कूआं आदिक खुदवाके उनके वंशधर पुत्र पौत्रोंके करने योग्य कार्य्यको पूर्ण किया। वह इसी भांति आत्मीय और मृत सुहृद पुरुषोंके श्राद्ध आदि, कार्य्य समाप्त करके उनके ऋण तथा लोकनिन्दासे रहित होके कृतार्थ हुए, और धर्म्म पूर्व्वक प्रजा पालन करते हुए पहिलेकी भांति राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी विदुर आदि पूजनीय कौरवों और मुख्य मुख्य पदोंपर प्रतिष्ठित सेवकोंको अत्यन्त सम्मानके सहित प्रतिपालन करने लगे। जो सब स्त्रियां स्वामी और पुत्ररहित होकर वहां पर निवास करती थीं, कुरुराज युधिष्ठिर कृपापूर्व्वक अत्यन्त सम्मानके सहित उनका भरण पोषण करने लगे। अनन्तर उन्होंने कृपाके वशमें होकर अन्धे, लूले, लङ्गड़े और दीन दुःखियोंको घर, वस्त्र और भोजनकी सामग्री प्रदान करके कृपा प्रकाशित की। इसी भांति राजा युधिष्ठिर पृथ्वी विजय करके शत्रुओंके निकट अऋणी हुए, और निष्कण्टक तथा सुखी होकर राज्य-भोगमें प्रवृत्त हुए।

४२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्मराज युधिष्ठिर फिर राज्य पाकर तथा राज्यपद पर अभिषिक्त होके हाथ जोड़के शुद्धभावसे पुण्डरीकाक्ष दाशार्ह कृष्णसे बोले। हे मधुनाशन! हे यदुकुल सिंह कृष्ण! हमने तुम्हारे ही बल, बुद्धि, नीति और पराक्रमके प्रभाव तथा तुम्हारीही प्रसन्नतासे पिता पितामहसे प्राप्त हुए राज्यको फिर पाया है। हे पुण्डरीकाक्ष! तुम्हें बार-म्बार प्रणाम है। सब शास्त्र तुम्हें अद्वितीय पुरुष सात्वत पुरुषोंकी गति स्वरूप कहके वर्णन करते हैं। द्विज लोग यत्नपूर्व्वक तुम्हारे विविध नामोंका उच्चारण करते हुए तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं। तुम ही पुरुषोत्तम, विष्णु, जिष्णु, कृष्ण वैकुण्ठ, विश्वात्मा और जगतके उत्पन्न करनेवाले हो; इससे हे विश्व-कर्म्मन्! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हींने सप्तधा-अदितिके गर्भसे जन्म ग्रहण किया है और पुराणोंमें तुम ही प्रश्निगर्भ कहके विख्यात हो पण्डित लोग तुम्हें त्रियुग कहके वर्णन करते हैं। तुमही शुचिश्रवा अर्थात् पुण्यकीर्त्ति, हृषीकेश, घृतार्चिः (यज्ञेश्वर) हंस, त्रिनेत्र, शम्भु, विभु और दामोदर नामसे वर्णित होते हो। तुम वाराह, अग्नि, सूर्य्य, वृष भध्वज, गरुडध्वज, अनीकि-साह (शत्रु सेना विमर्दी) पुरुष (जीव) शिपिविष्ट (सर्व्वान्तरव्यापी) उरुक्रम, वरिष्ठ, उग्रसेनानी, देवसेनानी, सत्य, राजसनि (अन्नप्रद) हो। तुम स्वयं अच्युत और शत्रुओंके नाश करनेवाले हो। तुम संस्कृति (ब्राह्मण रूप) और विकृति (अनुलोम प्रतिलोम जाति रूप) हो। तुम श्रेष्ठ, उद्दवत्मा, अद्रि, वृषदर्भ और वृषाकपि हो। तुम ही सिन्धु, विधर्म्म (निर्गुण) त्रिक-कुत, त्रिधामा, त्रिदिवाच्युत (अवतीर्ण मूर्त्ति) हो। तुम ही सम्राट्, विराट, स्वराट, सुरराज, भवकारणविभू, भू, (सबकी रूप) अभिभू (अशरीर) कृष्ण, कृष्णवर्त्मा, स्विष्टकृत् (अभि-लाष पूर्ण करनेवाले,) भिषजावर्त्त (दोनों अश्विनीकुमारोंके पिता सूर्य्य) हो, तुम ही कपिल, वामन, यज्ञ, ध्रुव, गरुड़ और यज्ञसेन नामसे विख्यात हो। तुम ही शिखण्डी, नहुष, बभ्रु (महेश्वर) दिवस्पृक्, पुनर्व्वसु नाम नक्षत्र सुबभ्रु, (अत्यन्त पीतवर्ण) उक्थ यज्ञ, सुषेण, दुन्दुभि, गभस्तिनेमि, श्रीपद्म, पुष्कर, पुष्पधारण ऋभु, विभु और सर्व्वसूक्ष्म हो, वेदमें तुम्हारे ही चरित्रोंके विषय गाये जाते हैं। तुम अम्भो-निधि, ब्रह्मा, पवित्र धाम, धामवित् हो; श्रुति तुम्हारे ही नामको हिरण्यगर्भ कहके तुम्हारे महात्म्यका वर्णन करती है। तुम ही स्वाहा, स्वधा और केशव हो; तुम ही इस जगतके कारण और प्रलयस्वरूप हो; हे कृष्ण! पहिले ही तुम इसको सृष्टि करते हो। हे विश्वयोनि! हे शार्ङ्गपाणि! हे खड्गपाणि! चक्रपाणि! यह संसार तुम्हारे वशमें स्थित है, इससे तुम्हें नम-स्कार है।

यदुकुल शिरोमणि कमल नेत्र कृष्णने इसी भांति सभाके बीच पाण्डवामें जेठे राजा युधि-ष्ठिरके स्तुतियुक्त वचनोंसे सत्कृत तथा पूजित होके अत्यन्त प्रीतिके सहित उचित वचनोंसे उन्हें भी आनन्दित किया।

४३ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर धर्म्मराज युधिष्ठिरने सभामें स्थित पुरुषोंको विदा किया, उन लोगोंने अपने गृहोंकी ओर गमन किया। तब वह महापराक्रमी, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवको धीरज देके आदर पूर्व्वक यह वचन बोले, हे भरतश्रेष्ठ! तुम लोग महासंग्राममें शत्रुओंके अस्त्रोंसे क्षत-विक्षत शरीरसे युक्त होकर थक गये हो, विशेष करके तुम लोगोंने राजपुत्र होकर भी मेरे वास्ते बहुत दिनोंतक वनवासकर क्रोध और शोकसे दुःखित होके साधारण पुरुषोंकी भांति अनेक क्लेश सहे; इससे

आज रात्रिको अपनी इच्छानुसार विजय-सुख अनुभव करो। अब तुम लोगोंकी बुद्धि प्रकृतिस्थ और तुम्हारी थकावट दूर हो, तब तुम लोग प्रातःकाल फिर आके मेरे निकट उपस्थित होना। धर्मराज युधिष्ठिरने भाइयोंका ऐसी आज्ञा देकर राजा धृतराष्ट्र की अनुमतिसे अनेक मणि रत्नोंसे शोभित, दास दासियोंसे युक्त दुर्य्योधनका घर भीमसेनको समर्पण किया; उन्होंने इन्द्रके वैजन्तपुरी प्रवेश करने की भांति उस गृहके भीतर प्रवेश किया। अनन्तर प्रासादमाला शोभित सुवर्णके तोरणोंसे युक्त दुर्य्योधनके भवन समान ही अनेक धन-धान्य और दास दासियोंसे पूरा दुःशासनका गृह महाबाहु अर्ज्जुनको समर्पण किया। तिसके अनन्तर बनवास क्लेशसे दुःखित नकुलको मणि रत्नोंसे युक्त कुबेर गृहके समान दुःशासनके गृहसे भी श्रेष्ठ दुर्म्मर्षणके गृहको अत्यन्त प्रीतिके सहित प्रदान किया। प्रिय कार्य्योंके करनेवाले सहदेव सुवर्ण भूषित, पद्मपत्रनयनाख्ली और उत्तम शय्या तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे भूषित दुर्मुखका उत्तम गृह पाके कैलासधाममें वासस्थान पाये हुए कुबेरकी भांति आनन्दित हुए। विदुर, सञ्जय, युयुत्सु, राजपुरोहित धौम्य और सुधर्म्मा आदिने अपने अपने गृहोंमें गमन किया। जैसे शार्द्दूल पर्व्वतकी कन्दरामें प्रवेश करता है, वैसे ही पुरुषसिंह श्रीकृष्णने सात्यकिके सहित अर्ज्जुनके गृहमें प्रवेश किया। उन सभोंने उन गृहोंमें अन्न आदिक खाने पीनेकी वस्तुओंसे तृप्त होकर परम सुखसे रात्रि बिताई और भोरके समय फिर सब कोई स्नान आदिसे निवृत्त होके राजाके समीप सभामें उपस्थित हुए।

४४ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे विप्रर्षि! महाबाहु धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने राज्य पानेके अनन्तर जो कुछ कार्य्य किये और त्रिलोक गुरु भगवान कृष्णने उस समय जो कुछ कार्य्य किया हो; उसे आप मेरे समीप वर्णन कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! कृष्णके सहित पाण्डवोंने जो कुछ कार्य्य किये, मैं वह सब वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनिये। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने राज्य पानेके अनन्तर चारों वर्णकी प्रजाको निज निज धर्म्ममें स्थापित कर, एक हजार महात्मा स्नातक ब्राह्मणोंको एक एक सहस्र स्वर्णमुद्रा दान करके फिर अनुजीवी सेवकों और उस समय वहांपर इकट्ठे हुए अतिथियोंको तृप्त किया; अधिक क्या कहा जावे, उन्होंने कृपण और विरुद्ध मतावलम्बी पुरुषोंकी भी अभिलाषा पूरी करनेमें त्रुटि नहीं की। महायशस्वी धर्म्मराज युधिष्ठिरने निज पुरोहित धौम्य मुनिको दश हजार गऊ, और सोना, चांदीसे युक्त अनेक भांतिके मणिरत्न तथा वस्त्र आदि प्रदान करके कृपाचार्य्यको पहिलेकी भांति अपना गुरु नियत किया; परन्तु विदुर और धृतराष्ट्र पुत्र युयुत्सुको विशेष रूपसे सम्मानित किया। दान देनेवाले पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपने आश्रित सब पुरुषोंको ही भोजन, पान, शयन, आसन और वस्त्र आदिसे सन्तोषित किया। उन्होंने नगरनिवासियोंको प्रसन्न करके प्राप्त हुए राज्यमें शान्ति स्थापित किया, और धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा विदुरको सब राज्यभार सौंपके निश्चिन्त होकर सुखपूर्व्वक निवास करने लगे। अनन्तर सवेरा होनेपर राजा युधिष्ठिरने हाथ जोड़के महात्मा कृष्णके समीप गमन किया। उन्होंने वहां जाके देखा, कि दिव्य आभूषणोंसे भूषित, पीताम्बरधारी, नीलमणिके समान तेजसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्र सुवर्णजड़ित मणिके समान प्रकाशमान शरीरसे प्रज्वलित होके सुवर्ण-मणि भूषित बृहत् शय्याके ऊपर बैठे हैं; उनका वक्षस्थल कौस्तुभ मणिसे इस

प्रकार शोभित होरहा था, जैसे उदय हुए सूर्य्यके सहित उदयाचल पर्व्वत शोभित होता है। महाराज! तीनों लोकके बीच ऐसी कोई भी वस्तु नहीं दीख पड़ती, जिससे श्रीकृष्णचन्द्रके उस समयके शोभाकी उपमा होसके। उस समय धर्म्मात्मा युधिष्ठिर पुरुषविग्रह महात्मा विष्णुके समीप पहुंचके हंसकर मधुर वचनसे कहने लगे। हे पुरुषोत्तम! हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! सुखपूर्व्वक रात्रि बीती है न? इस समय तुम्हारी बुद्धि पहिलेकी भांति स्थिर और प्रसन्न तो है? हे त्रिविक्रम भगवान! तुम्हारी कृपासे ही हम लोगोंने फिर राज्य पाया तथा सब पृथ्वी भी हमारे वशमें हुई है; तुम्हारे प्रसादसे ही हम लोग क्षत्रिय धर्म्मसे भ्रष्ट नहीं हुए, तुम्हारी कृपासे ही हमारी युद्धमें विजय हुई और उत्तम यश प्राप्त हुआ है। शत्रुनाशन युधिष्ठिर इसी भांति स्तुति कर रहे थे, तोभी श्रीकृष्ण भगवानने कुछ भी उत्तर नहीं दिया; क्यों कि उस समय वह ध्यानमें प्रवृत्त थे।

४५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे अमित पराक्रमी! आज मैं यह कैसा आश्चर्य देख रहा हूं, तुम ध्यानमें प्रवृत्त हुए हो? हे देव! तुम तुरीय ध्यानपथ (जाग्रत स्वप्न और सुषुप्तिसे अतीत स्वरूप अवस्था) अवलम्बन करके स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरोंसे अपक्रान्ति होकर स्थित होरहे हो, उसे देखके मेरा मन विस्मित होता है। देख रहा हूं कि तुमने प्राण आदि पञ्च कर्म्म निर्व्वाहक शरीरस्थ प्राणवायुको निरोध किया (रोका) है; हे गोविन्द! तुमने सब इन्द्रियोंको प्रसन्न करके मनके बीच स्थापित किया है और वाक्य तथा मनको बुद्धिमें लीन किया है। शब्द आदि पञ्च-विषय अपने अपने आधारके आसरे स्थित हैं। तुम्हारे शरीरके सब रोएं और मन बुद्धि स्थिर भावसे स्थित हैं, इससे तुम काष्ठ वा शिलाकी भांति चेष्टारहित होरहे हो। हे भगवन! जैसे दीपशिखा वायुरहित स्थानमें स्थिरताके सहित जलती रहती है, अथवा जैसे पत्थर एक ही स्थलमें पड़ा रहता है, वैसे ही तुम भी आज चेष्टा रहितके समान दीख पड़ते हो। हे देव! यदि यह गोपनीय न होवे और मैं सुननेका पात्र होऊं, तो यह प्रार्थना है, कि आप मुझ शरणागतके इस संशयको दूर कीजिये। हे धार्म्मिकप्रवर! हे पुरुषोत्तम! तुम चर, अचर कर्त्ता और अकर्त्ता हो। तुम अनादि और मृत्यु से रहित हो, और तुम ही आदि पुरुष हो। मैं तुम्हारा शरणागत भक्त शिर झुकाके तुम्हें प्रणाम करता हूं, कि आप इस ध्यानके यथार्थ कारणको मेरे समीप प्रकाशित कीजिये; उस समय इन्द्रके भ्राता श्रीकृष्ण भगवान् मन बुद्धि और इन्द्रियोंको पहिलेकी भांति निज निज स्थलोंमें स्थापित करके हंसकर धर्म्मराज युधिष्ठिरसे बोले, महाराज! शान्त होनेवाली अग्निकी भांति तेजस्वी शरशय्यापर स्थित पुरुषसिंह भीष्म मेरा ध्यान कर रहे हैं, उसी कारण मैं भी उनके ध्यानमे प्रवृत्त था। जिन्होंने स्वयम्बरके बीच अपने तेजके प्रभावसे सब राजाओंको पराजित करके तीनों कन्याओंको हरण किया, जिसके वज्र समान धनुषटङ्कार और तलत्राणके शब्दको इन्द्र भी नहीं सह सकते थे; जिन्होंने तेईस दिनोंतक भृगुकुल शिरोमणि परशुरामके सङ्ग युद्ध किया था; परशुराम जिसे किसी प्रकार पराजित करनेमें समर्थ नहीं हुए; जिसे गङ्गादेवीने निज-गर्भमें धारण किया और वशिष्ठ मुनिने अपना शिष्य बनाया था, जिस महातेजस्वीने बुद्धि-प्रभावसे सब दिव्य अस्त्रोंकी विद्या और सांगोपांग चारों वेदोंको पढ़ा था। हे महाराज!

वही परशुरामके प्रिय शिष्य सब विद्याके आधार स्वरूप भीष्म मन और सब इन्द्रियोंको संयम करके एकाग्रचित्तसे मेरे शरणागत हुए हैं; इसी कारण मैं भी उनके ध्यानमें प्रवृत्त हुआ था। उस धर्म्मात्मा भीष्मकी भूत-भविष्य और वर्त्तमान कालके सब विषयोंका ज्ञाता समझियेगा। महाराज! पुरुषशार्दूल भीष्म जब अपने कर्म्मके प्रभावसे शरीरको त्याग कर स्वर्ग लोकमें गमन करेंगे, तब यही पृथ्वी चन्द्रमासे हीन होकर रात्रिके समान बोध होगी; इससे आप महापराक्रमी गङ्गानन्दन भीष्मके समीप उपस्थित होके धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, यज्ञादिक और चारों आश्रमोंके धर्म्म तथा निखिल राजधर्म्म और इसके अतिरिक्त जो कुछ पूछनेकी इच्छा हो, वह सब पूछिये। महाराज! कौरवकुल धुरन्धर भीष्मके परलोक गमन करनेके अनन्तर पृथ्वीसे सब ज्ञान शास्त्र एकबारगी लुप्त हो जायेंगे, इसी कारण मैं आपको उन महात्माके समीप जानेके वास्ते कहता हूं।

धर्म्म जाननेवाले युधिष्ठिर श्रीकृष्णचन्द्रके सारगर्भ उत्तम वचन सुनके धीमे स्वरसे बोले, हे कृष्ण! आपने भीष्मके प्रभाव विषयक जो कुछ वचन कहे उसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है, मैंने भीष्मके प्रारब्ध और प्रभावकी कथा पहिले महात्मा ब्राह्मणोंके मुखसे अनेक बार सुनी है, विशेष करके सब लोगोंके कर्त्ता होकर जब तुम भी उनकी प्रशंसा कर रहे हो; तब उसमें सन्देह ही क्या है। हे मधुसूदन! यदि मेरे ऊपर आपकी अत्यन्त कृपा प्रकाशित करनेकी इच्छा हुई हो, तो तुम स्वयं हमको अपने सङ्ग भीष्मके समीप ले चलो। हे यदुनन्दन! कुरुकुल शिरोमणि भीष्म सूर्य्यके उत्तरायण होने पर शरीर त्याग करेंगे, इससे उन्हें दर्शन देना आपका कर्त्तव्य है। हे भगवन्! तुम आदि देव, क्षर; अक्षर ब्रह्ममय और परमनिधि हो, इस आसन्नमृत्युके समय पितामह एकबार तुम्हारा दर्शन करें, यही मेरी इच्छा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, मधुसूदन कृष्णने धर्म्मराज युधिष्ठिरके वचनको सुनके समीपमें ही स्थित सात्यकिसे कहा तुम शीघ्र ही मेरे रथको सज्जित करो; इतना वचन सुनते ही सात्यकि उसी समय वहांसे उठके दारुक सारथीके निकट जाके यह वचन बोले, तुम शीघ्र ही श्रीकृष्णके रथको सज्जित करो। अनन्तर दारुकने सात्यकिके वचनको सुनते ही सुवर्ण-भूषित बहुतसे मरकत, चन्द्रकान्त, सूर्य्यकान्त मणिमय सुवर्ण भूषित चक्र-सहित सूर्य्य किरणके समान प्रकाशमान शीघ्रगामी, मध्यभागमें अनेक भांतिके मणि रत्न सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित, शत्रुओंको दुःखित करनेवाले, मनके समान वेगपूर्व्वक गमन करनेवाले शैव्य और सुग्रीव आदि घोड़ोंसे युक्त अनेक भांतिकी पताका और गरुड़ ध्वजासे शोभित उत्तम रथको सज्जित करके हाथ जोड़के श्रीकृष्णचन्द्रसे निवेदन किया।

४६ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे ऋषिवर! पितामह भीष्मदेवने शरशय्या पर स्थित होके किस प्रकार योग अवलम्बन करके शरीर त्याग किया था, आप उसे मेरे समीप वर्णन कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! तुम पवित्र और एकाग्र चित्त होकर भीष्मके शरीर त्यागनेके विषयको श्रवण करो। जब सूर्य्य दक्षिणायन मार्गसे उत्तरायण गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। तभी भीष्म पितामहने स्थिर होके अपना चित्त, आत्मामें लगाया। महाराज! उस समय भीष्मदेव महात्मा ब्राह्मणोंके बीचमें स्थित और अनेक बाणोंसे परिपूरित शरीरसे इस प्रकार शोभित हुए, जैसे किरण-

धारी भगवान सूर्य्य शोभित होते हैं। उस समय वेद जाननेवाले व्यासदेव, देवर्षि नारद महात्मा देवस्थान, वात्स्य, अश्मक, सुमन्त, जैमिनि महात्मा पैल शाण्डिल्य, देवरात, धीमान् मैत्र, असित वशिष्ठ, महात्मा कौशिक हारीत, लोमश, बुद्धिमान अत्रिय, बृहस्पति, शुक्राचार्य्य, महामुनि च्यवन, सनत्कुमार, कपिल वाल्मीक, तुम्बुरु, कुरु, मौद्गल्य भृगुनन्दन परशुराम, महामुनि तृण विन्दु, पिप्पलाद, वायु, सम्वर्त्त पुलह, कठ, काश्यप, पुलस्त्य, क्रतु, दक्ष, पराशर, मरीचि, अङ्गिरा, काश्य, गौतमकुलमें उत्पन्न हुए महामुनि, गालव, धौम्य, विभाण्ड, माण्डव्य धौम्र कृष्णानुभौतिक, महर्षि उलूक, महामुनि मारकण्डेय, भास्करी, पूरण, कृष्ण, परम धार्मिक सूत,—ये सम्पूर्ण ऋषि तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुतेरे श्रद्धा दम और शमसे युक्त महा तपस्वी महात्मा मुनियोंसे घिरकर पुरुषसिंह भीष्म इस प्रकार शोभित हुए, जैसे नक्षत्रोंके बीच भगवान चन्द्रमाकी शोभा दीख पड़ती है। अनन्तर वह पवित्र भावसे हाथ जोड़के कर्म्म, मन और वचनसे एकाग्रचित्त होकर श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करने लगे; और हृष्ट-पुष्ट स्वरसे मधुसूदन कृष्णकी स्तुति करने लगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! बोलनेवालोंमें मुख्य परम धर्म्मात्मा भीष्मने जिस प्रकार हाथ जोड़के पद्मनाभ योगीश्वर विष्णु, जिष्णु, जगत्पति श्रीकृष्ण भगवानकी स्तुतिकी थी। मैं उसे वर्णन करता हूं, आप सुनिये।

भीष्म बोले, हे पुरोषत्तम! तुम पवित्र और शुचिपद हो, तुम पारमेष्टपद, प्रजापति और आत्मस्वरूप हो, इससे मैं अब तुम्हारेमें चित्त समर्पण करके एकान्त भावसे तुम्हारी उपासनाका अभिलाषी होकर जो कुछ कहनेकी इच्छा करता हूं, आप उस संक्षेप और विस्तार युक्त मेरे कहे हुए वचनोंके दोषोंको त्यागके मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये। आदि अन्त रहित परब्रह्मके स्वरूपको ठीक सब लोकोंके रचनेवाले भगवान विधाता नारायण हरि ही जानते है; इनके अतिरिक्त देवता वा ऋषि कोई भी उनके रूपको नहीं जान सकते। नारायणकी कृपासे ही देव गन्धर्व, यक्ष, राक्षस सर्प, सिद्ध और देवऋषि लोग उस सनातन परमेश्वरको परम अव्यय मानते हैं; परन्तु कोई भी यह नहीं जानते कि "ये कौन हैं, कहांसे किस प्रकार ये भगवान हुए है!" जिस अविनाशी ब्रह्ममें जगत्के सम्पूर्ण प्राणी प्रलय कालके समय इस प्रकार लीन होजाते है, जैसे धागेमें मालाकी मणियें गुथी रहती हैं; यह जगत् जिस विश्वाङ्ग जगत कर्त्ता नित्यपुरुषके रूपमें स्थित है, ऋषि लोग जिसे सहस्रशीर्षा, सहस्राक्ष, सहस्र चरण सहस्र बाहु, सहस्र मुकुट, सहस्र शरीरोंसे प्रकाशमान, जगदाधार नारायण देव, सब सूक्ष्म वस्तुओंसे सूक्ष्म, स्थूलसे भी स्थूल, गुरु पदार्थोंसे भी गुरुतर और उत्तम वस्तुओंसे भी श्रेष्ठ कहके वर्णन करते हैं। जो वाक्, अनुवाक् निषत्, उपनिषत् और सत्य स्वरूप है; जिसकी सामवेदके बीच सत्य और सत्यकर्म्मा आदि नामोंसे स्तुति होती है। साधक लोग ब्रह्म, जीव, मन, अहंकार इन चारों अध्यात्मतत्वोंके वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चार परमगुह्य दिव्य नामोंका उच्चारण करके सदा बुद्धिसे अभिव्यक्त और भक्तोंके ईश्वर जानके जिनकी पूजा अर्चा किया करते है; तथा जिसकी प्रीतिके निमित्त स्वधर्म्मरूपी तपस्याका अनुष्ठान करते है; जिसकी कृपासे आचरित तपका प्रभाव चित्तमें आके उपस्थित होता है; मैं उस चैतन्य स्वरूप, सर्व्वज्ञ, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्व्वेश्वर भगवानका शरणागत हुआ हूं। दो अरणिकी अग्निकी भांति जो भगवान पृथ्वी, ब्राह्मण, वेद और यज्ञ रक्षाके निमित्त वसुदेव देवकीसे उत्पन्न हुए हैं;

और योगी लोग एकाग्रचित्त होकर सब वासना त्यागके एक मात्र मोक्षपदके निमित्त जिसकी उपासना करते हुए निज आत्मामें ही जिस स्वरूपका दर्शन करते हैं, मैं उसही निर्मल ज्योतिस्वरूप सर्व्वेश्वर गोविन्द कृष्णकी शरण हूं। जो निज तेज प्रभावसे सूर्य्य, कर्मसे वायु और इन्द्रको अतिक्रम करके विद्यमान है; मैं उसही बुद्धि तथा मन आदि इन्द्रियोंसे अतीत परमात्माकी शरण हूं, जो पुराणोंमें पुरुष, युगादिकोंमें ब्रह्म और प्रलय समयमें सङ्कर्षण नामसे वर्णित हैं, मैं उसी उपास्य देवकी उपासनामें प्रवृत्त हुआ हूं। जो एक होकर भी अनेक रूप दीख पड़ते हैं, और कर्म्म योगी पुरुष अनन्य भक्तिसे युक्त होकर जिसकी उपासना करते रहते हैं, मैं उसी सर्व्व कामप्रद भगवानकी शरण हूं ज्ञानी लोग जिसे जगतकोष कहते हैं, यह सब प्रजा जिसके रूपमें स्थित है और जलमें तैरने वाले हंस तथा कारण्डव आदि पक्षियोंकी भांति सब प्राणी जिसकी चैतन्य सत्तासे चेष्टमान होते है, देवता और ऋषि लोग भी जिसके स्वरूपको नहीं जान सकते; मैंने उसी आदि अन्त, मध्य अवस्था और सत् असत्से रहित सत्य स्वरूप, एकाक्षर परब्रह्म परमेश्वरका आसरा ग्रहण किया है। देवता, असुर, सिद्ध, गन्धर्व्व, सर्प और ऋषि लोग सदा स्थिरभावसे जिसकी उपासना किया करते है; जो भव रोगके छुड़ानेमें परम वैद्यस्वरूप है; मैं उसी अनादि अविनाशी, नेत्र आदि इन्द्रियोंके अगोचर सर्व्वकारण, सनातन, रमात्म स्वरूप सर्व्व, शक्तिमान नारायण हरिके शरणागत हुआ हूं। वेद जिसकी जगत्कर्त्ता, स्थावर जङ्गमात्मक जगत्के पालक, सर्व्वाध्यक्ष, अक्षर और परमाधार करके वर्णन करते हैं; जिन्होंने एक होकर भी दैत्योंको नाश करनेके वास्ते अदिति गर्भसे बारह अंशोंमें विभक्त होकर अवतार लिया था; उस हिरण्यवर्ण सूर्य्यमूर्त्ति परमात्माको नमस्कार करता हूं। जो अज्ञानान्धकारसे अतीत स्वयं ज्योतिस्वरूप तथा सब स्थानोंमें पूर्ण हैं; जिसे जाननेसे ही साधक जन्म जरा मृत्युसे छूटकर परम पद पाते हैं, उस ज्ञेयरूप परमात्माको नमस्कार है। जो अमृतसे शुक्ल पक्षमें देवतों और कृष्णपक्षमें पितरोंको तृप्त करता है और जगत्में द्विजराज नामसे प्रसिद्ध है; उस सोममूर्त्ति परमात्माको नमस्कार है। ऋषिलोग जिसे उक्थके बीच बहत्च और अग्निहोत्र आदिक महायज्ञोंमें अध्वर्य्यु नामसे वर्णन करके सामगान करते हैं; उस वेदात्मक पुरुषको नमस्कार है। ऋक्, यजु और साम ये तीनों वेद ही जिसके धाम है, जो जव, दधियुक्त सत्तू, परिवाप, पुरोडाश और दूध यही पञ्च हविरात्मक है जो वेदके बीच गायत्री आदि सात छन्दोंसे विस्तृत हुआ है, उस यज्ञात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो "आश्रावय" आदि सप्त दश अक्षरोंसे अग्निमे होम होता है, उस होमात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो वेद पुरुष और यजु नामसे विख्यात है, गायत्री आदिक छन्द ही जिसके शाखाके अवयव हैं, ऋक्, यजु और साम इन तीनों वेदोंसे युक्त यज्ञ ही जिसका मस्तक है और वृहत रथान्तर ही जिसकी प्रीतिस्वरूप है; उस स्तोत्रात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो सर्व्वज्ञ पुरुष प्रजापति आदिकोंके सहस्र वर्ष यज्ञ करनेके अनन्तर यज्ञसे हिरण्यपक्ष युक्त हंसरूपसे उत्पन्न हुए थे; उस हंसरूपी परमात्माको नमस्कार है। वैदिक पद ही जिसके अङ्ग, सन्धि आदिक अंगुली स्वर और व्यञ्जन ही जिसके भूषण हैं, तथा वेदके बीच जो दिव्य अक्षर करके वर्णित हुआ हैं; उस वागाधिष्ठात्री परम देवताको नमस्कार है। जिन्होने तीनो लोकोंके हितकी अभिलाषासे यज्ञमें बाराहमूर्त्ति धारण करके रसातलमें गई हुई पृथ्वीका उद्धार किया था, उस वीर्य्यात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो योगनिद्रा

अवलम्बन करके सहस्र फणोंसे युक्त नाग भूषित शय्यापर शयन करते हैं; उस निद्रात्मक पुरुषको नमस्कार है। जो वाक् आदि इन्द्रियोंको जीतकर मोक्षके कारण वेदमें कहे हुए उपायसे साधुओंको संसारके दुःखोंसे छुड़ाके मुक्त करता है; उस सत्यात्माको नमस्कार है। हर एक पृथक् पृथक् धर्म्म अवलम्बन करनेवाले पुरुष इच्छानुसार विविध फलोंको अभिलाषासे जिसकी पूजा किया करते हैं, उस धर्म्मात्माको नमस्कार है। जिससे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति होती हैं और जो सबके शरीरमें स्थित काममय देह अर्थात् मनके उन्मादजनक है; उस कामात्मा पुरुषको नमस्कार है। महर्षि लोगोंने जिस अव्यक्त पुरुषको देहके बीच स्थित क्षेत्रज्ञ कहके निश्चय किया है; उस क्षेत्रात्माको नमस्कार है। चैतन्य और नित्य स्वरूपसे स्थित रहनेपर भी सांख्यवादी जिसे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्था, एकादश इन्द्रिय और पञ्च महाभूत आदि सोलह गुणोंसे युक्त, उदारतनु, सबह सङ्ख्यात्मक कहके वर्णन करते हैं; उस संख्यात्मा पुरुषको नमस्कार है। जितेन्द्रीयोगी पुरुष निद्रा और श्वासवायुको जीतके जिस ज्योतिरूपका हृदयमें दर्शन करते हैं; उस योगात्माको नमस्कार है। पाप पुण्यसे पर, शान्त सन्न्यासी लोग आवागमनसे छूटकर जिसे पाते हैं, उस मोक्षात्माको नमस्कार है। जो दिव्य परिमाणसे सहस्र युगोंके अन्तमें जलती हुई शिखासे युक्त अग्निरूपसे सब भूतोंको भक्षण करता है, उस घोरात्माको प्रणाम है। जो सब वस्तुओंको भक्ष और जगत्‌को एक समुद्रमय करके एक मात्र बालक रूपसे निद्रित होता है; उस मायात्मक पुरुषको प्रणाम है। पुष्कर-लोचन अजेय नाभीस्थलसे जो कमल उत्पन्न होता है, जिससे जगत् प्रतिष्ठित हुआ है, उस पद्मात्माको प्रणाम है। समुद्रके समान चार भांतिके काम जिसके प्रभावसे नष्ट होते हैं, उस अनगिनत सिर और असंख्य योगात्मक पुरुषको नमस्कार है। जिसके केशोंमें सम्पूर्ण बादलोंके समूह, अङ्गसन्धियोंमें नदियां और हृदयमें चार समुद्र स्थित हैं, उस जलमय पुरुषको प्रणाम है। जिससे प्राणियोंकी उत्पत्ति और मृत्यु रूपी विकार उत्पन्न होता है, और महाप्रलयके समय जिसमें सम्पूर्ण जगत्‌के प्राणी लीन होते हैं, उस कारणात्माको नमस्कार है। जो प्राणियोंकी निद्रित अवस्थामें भी जागता रहता है; और कर्त्ता न होनेपर भी स्वप्नावस्थामें कर्त्ताकी भांति बोध होता है; परन्तु यथार्थमें वह प्राणियोंके किये हुए शुभाशुभ कर्म्मोंका द्रष्टामात्र है; उस साक्षीस्वरूप चैतन्य पुरुषको नमस्कार है। जो किसी कार्य्यमें शोकित नहीं होता और धर्म्म-कार्य्यके निमित्त उद्यत रहता है, उस सर्व्वत्र पूर्ण वैकुण्ठरूपी कार्य्यात्मक पुरुषको प्रणाम है। जिसने क्रुद्ध होकर इक्कीस बार युद्धभूमिमें धर्म्म-मर्य्यादा उलङ्घन करनेवाले क्षत्रियोंका नाश किया था, उस क्रूरात्माको प्रणाम है। जो प्राण आदि पांच अंशोंमें विभक्त होके शरीरस्थ वायुरूपसे प्राणियोंको चैतन्य करता है; उस वायुमय पुरुषको प्रणाम है। जो युग युगमें योगमायासे मत्स्य, कूर्म्म, वराह आदि रूपोंको धारण करके अवतार लेता है और महीना, ऋतु, अयन तथा वर्ष आदि रूपसे उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कार्य्योंको पूर्ण करता है, उस कालरूपी पुरुषको नमस्कार है। ब्राह्मण जिसके मुख, क्षत्रिय जिसकी दोनों भुजा, वैश्य जिसके उरुस्थल और शूद्र जिसके दोनों चरणोंके आसरेसे प्रकट होके स्थित हैं, उस वर्णात्मा पुरुषको प्रणाम है। स्वर्ग जिसका सिर, अग्नि, मुख, आकाश नाभी, सूर्य्य नेत्र, दिशा कान और पृथ्वी जिसका चरण है, उस सम्पूर्ण लोकमय पुरुषको प्रणाम है। जो कालसे भिन्न सम्पूर्ण यज्ञोंके अधिष्ठात्री देव

हिरण्यगर्भसे भी श्रेष्ठ हैं, जो स्वयं अनादि और अनन्तका आदि पुरुष है; उस विश्वात्माको नमस्कार है। राग द्वेषसे युक्त अज्ञानी लोग शब्द स्पर्श आदि विषयोंमें वर्त्तमान श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका अनादर करके, जिसे विषय-गोप्ता समझते हैं; उस गोप्तृस्वरूपी परमात्माको नमस्कार है। जो अन्न, पान और इन्धनस्वरूपसे शारीरिक रस और बलको बढ़ाता है, तथा जो सब प्राणियोंको धारण कर रहा है; उस प्राणमय पुरुषको नमस्कार है। जो प्राणियोंके प्राणधारणके निमित्त चारों प्रकारके अन्नोंको भोजन करता है, और शरीरके भीतर प्रवेश करके उन भोजन किये हुए चारों भांतिके अन्नोंको परिपाक करता है; उस पाकात्मक पुरुषको नमस्कार है। जिसके जटा और नेत्र पिंगलवर्ण और दांत तथा नख जिसके शस्त्र हैं; उस दुर्जय दैत्यनाशक नृसिंह रूपधारी परमात्माको नमस्कार है। जिसे देवता दानव, यक्ष गन्धर्व आदि कोई भी यथार्थ रूपसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं, उस सूक्ष्मात्माको प्रणाम है। जो सर्व्वशक्तिमान सर्व्वव्यापक भगवान रसातलमें प्रवेश करके सम्पूर्ण जगत्को धारण कर रहे हैं; उस वीर्य्यात्माको नमस्कार है। जो सृष्टिरक्षाके वास्ते जगत्के सब प्राणियोंको स्नेह पाशसे मोहित कर रहा है; उस मोहात्मा परम पुरुषको प्रणाम है। योगी लोग ज्ञान साधनसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पांचों विषयोंसे ज्ञानको पृथक् करके पवित्र ज्ञान भावसे आत्म स्वरूप जानके जिसे प्राप्त करते हैं उस ज्ञानस्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जिसके ज्ञानरूपी नेत्र सर्व्व-वर्त्तमान हैं, जो अगोचर स्वरूप है; और जिसमें ये सम्पूर्ण विषय स्थित रहते हैं; उस दिव्यात्माको नमस्कार है। जो सदा जटा और दण्डधारी है, लम्बोदर शरीर युक्त कमण्डलु ही जिसका तूणीर है; उस ब्रह्मात्माको नमस्कार है। जो सदा शरीरमें खाक लगाये हुए शूल धारण करके विराजमान रहता है; उस त्रिदशनाथ, त्रिनेत्र अर्द्धलिंग रुद्रात्माको नमस्कार है। अर्द्धचन्द्र जिसके माथेका भूषण और सर्प जिसके यज्ञोपवीत हैं, उस शूल और पिनाकधारी उग्रात्माको नमस्कार है। जो सब प्राणियोंका आत्मस्वरूप है, जो अहंकारको नाश करनेवाला है; उस क्रोध, मोह और द्रोहसे रहित शान्तात्माको नमस्कार है। यह संसार जिसके प्रभावसे स्थित है, जिससे जगत्की उत्पत्ति होती है, जो सब स्थानोंमें विराजमान है, जो स्वयं विश्वरूप और सब प्राणियोंका आत्मा स्वरूप हैं; उस नित्यस्वरूप सर्व्वमय परम पुरुषको प्रणाम है।

हे विश्वकर्म्मन्! हे जगत्के उत्पन्न करनेवाले! तुम पञ्च भूतोंसे पृथक् और नित्य मुक्ति स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम तीनों लोकों सब दिशाओं और तीनों कालोंमें समभावसे विद्यमान हो, तुम ही सर्व्वमय और निधिस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। हे भगवन! हे विष्णु! तुम इस जगत्को उत्पन्न करनेवाले और अव्यय स्वरूप हो? इससे तुम्हें प्रणाम है। हे हृषीकेश! तुम जगत्कर्त्ता, संहर्त्ता और अपराजेय हो; इससे तुम्हें प्रणाम है। हे भगवन! यद्यपि मैं तुम्हारे वर्त्तमान आदि त्रिकालस्थित दिव्यभावके दर्शनमें समर्थ नहीं हूं, तथापि तुम्हारा जो सनातन स्वरूप है, उसे तत्वभावसे दर्शन कर रहा हूं। तुम्हारे मस्तकसे द्युलोक, चरणसे भूलोक और तुम्हारे पराक्रमसे तीनों लोक व्याप्त हैं; तुम्हीं साक्षात् सनातन पुरुष हो। सम्पूर्ण दिशा तुम्हारी भुजा, सूर्य्य तुम्हारे नेत्र और पापरहित प्रजापति ही तुम्हारे वीर्य्य स्वरूप हैं; तुम महातेजमय वायुरूपसे ऊपरके सप्तर्षियोंको रोकके स्थित हो।

अलसी पुष्पके समान रूपवाले पीताम्बर-

धारी प्रद्युम्न गोविन्दको जो प्रणाम करते हैं, उन लोगोंको कुछ भी भय उपस्थित नहीं होता। दश अश्वमेध यज्ञोंके समाप्तिमें अवभृत स्नान करनेसे जितना फल प्राप्त होता है, वह श्रीकृष्ण भगवानके एक बारके प्रणाम की समानता भी नहीं कर सकता। क्योंकि उन दश अश्वमेध यज्ञोंके करनेवाले पुरुषोंको फिर जन्म लेना होता है, परन्तु कृष्णको प्रणाम करनेवालोंको जन्म मरण रूपी दुःखोंको नहीं भोगना पड़ता। कृष्ण ही जिसके व्रत है, और सोते, उठते जो लोग श्रीकृष्णका स्मरण करते हैं, तथा यागपूर्व्वक उनके ध्यानमें रत होते हैं, वे इस प्रकार उनके स्वरूपमे लीन होजाते हैं, जैसे मन्त्रसे युक्त घृत अग्निमें प्रवेश करता है। जो नरक भयके छोड़ानेवाले और संसार सागरसे पार करनेके निमित्त नौका स्वरूप हैं, उस विष्णु भगवानको बार बार प्रणाम है। जो गऊ ब्राह्मण और सब जगत्के हितकारी हैं, उस जगत् त्राणकर्त्ता ब्रह्मण्यदेव कृष्ण भगवानको बारम्बार प्रणाम है। "हरि"—इन दो अक्षरोंसे युक्त नाम प्राणियोंको कठिन मार्गोंसे भी पार करता है, यह संसार सागरके तरनेका उपाय और शोक दुःखको नाश करनेवाला है। जब कि सत्य विष्णुमय जगत् विष्णुमय और सब वस्तु विष्णुमय हैं तब मेरा चित्त भी विष्णुमय होके पापरहित होवे। हे पुण्डरीकाक्ष! हे सुरसत्तम! यह भक्त अभिलषित गति पानेकी इच्छासे सब भांतिसे एकमात्र तुम्हारा ही शरणागत हुआ है, इस समय जिसमें मङ्गल हो; आप उसी का विचार कीजिये

हे जनार्द्दन! तुम विद्या और तपस्याके कारणस्वरूप विष्णु हो, आप मेरे स्तुति वचनरूपी यज्ञसे पूजित होके तृप्त तथा प्रसन्न हूजिये; वेद, तपस्या और देवता इत्यादि जो कुछ वस्तु है, वह सबही नित्य-नारायण रूप है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुकुल शिरोमणि भीष्मने इतना वचन कहके उनमें चित्त लगाके श्रीकृष्णको प्रणाम किया। तब उस समय श्रीकृष्ण भगवानने योगप्रभावसे भीष्मके शरीरके भीतर प्रवेश कर उन्हें भक्ति और त्रिकाल दर्शन ज्ञान प्रदान करके फिर निज शरीरमें आगमन किया। महाबुद्धिमान भीष्मके वचन समाप्त होनेपर मुख्य मुख्य ब्रह्मवादी ब्राह्मण लोगोंने वचनसे उनकी पूजाकी। अनन्तर वे लोग पुरुषोत्तम कृष्णकी स्तुति करके मृदु स्वरसे बार बार भीष्मकी प्रशंसा करने लगे।

इधर पुरुष श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्र योगबलसे भीष्मकी भक्तिके विषयका जानके अत्यन्त आनन्दके सहित सहसा उठके रथपर चढ़े। यदुवीर सात्यकि कृष्णके रथपर चढ़के उनके सङ्ग गमन करनेमें प्रवृत्त हुए। महात्मा युधिष्ठिर और अर्ज्जुन एक रथपर और भीमसेन तथा माद्रीपुत्र नकुल सहदेव एक दूसरे रथपर चढ़के गमन करने लगे। पुरुषश्रेष्ठ शत्रुनाशन कृपाचार्य्य, युयुत्सु और सूतकुलमे उत्पन्न हुए सञ्जयने एक बहुत बड़े रथपर चढ़के रथ शब्दसे पृथ्वीको कंपाते हुए प्रस्थान किया। मधुसूदन पुरुषसिंह कृष्णने गमन करनेके समय मार्गमे कितने ही ब्राह्मणोंके अनेक भांतिके स्तुतियुक्त वचनको सुनके तथा कितने ही पुरुषोंको विनीतभावसे स्थित देखकर आनन्दके सहित उन लोगोंको प्रसन्न किया।

४७ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! इसी भांति श्रीकृष्णचन्द्र, भाइयोंके सहित राजा युधिष्ठिर और कृपाचार्य्य आदि सब कोई शीघ्रगामी घोड़ों और ध्वजा पताकाओंसे युक्त नगरके समान रथोंपर चढ़के कुरुक्षेत्रको ओर गमन करने लगे। युधिष्ठिर आदि महारथी लोग जहांपर महात्मा क्षत्रियोंने युद्धमें प्राण-

त्याग किया था; उस प्रेत-राक्षसोंसे सेवित, यमराजके स्थान तथा श्मशानभूमिके समान कुरुक्षेत्रमें पहुंचके किसी किसी स्थानमें ढेरके ढेर केश, मज्जा और हड्डी आदिक तथा कहीं कहीं मरे हुए हाथी घोड़ोंके शरीर, और हड्डियोंको पर्व्वतके समूहके समान देखने लगे; और कहीं वर्म्म और टूटे शस्त्रोंके समूह तथा कहींपर सहस्रों चिता दीख पड़ती थीं; और कहींपर शङ्खके समान मनुष्योंके सिरकी सफेद खोपड़ियोंको देखते हुए शीघ्रताके सहित आगे गमन करने लगे। मार्गमें जाते हुए यदुनन्दन कृष्णने युधिष्ठिरसे जमदग्निपुत्र परशुरामके पराक्रमका विषय वर्णन करना आरम्भ किया।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे महाराज! भृगुनन्दन परशुरामने जिस स्थानपर युद्धमें क्षत्रियोंके रुधिरसे पांच तालाबोंको भरके पितरोंका तर्पण किया था। ये वेही पांचो रामह्रद दूरसे दीख पड़ते हैं। महात्मा परशुराम इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करके अब इस क्रूर कर्म्मसे विरक्त हुए हैं।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे यदुकुलश्रेष्ठ! हे अमित पराक्रमी! तुमने जो परशुरामजीके इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेकी कथा कही; उससे मुझे अत्यन्त ही संशय उत्पन्न हुआ है। यदि परशुरामने अपने शस्त्ररूपी अग्निमें सब क्षत्रिय बीज ही भस्म कर दिया, तो फिर किस प्रकार उनकी उत्पत्ति हुई? और करोड़ों क्षत्रियोंने महाघोर रण युद्धमें मरके अपने मृत शरीरोंसे पृथ्वीको परिपूरित किया, महात्मा परशुराम भगवानने अकेले ही किस प्रकार क्षत्रियकुलका नाश किया; और फिर किस भांति उनकी वृद्धि हुई? हे कृष्ण! भृगुनन्दन परशुरामने कुरुक्षेत्रके बीच किस कारणसे क्षत्रियकुलका नाश किया? हे वार्ष्णेय! हे गरुड़ध्वज! तुम मेरे इन सब संशयोंको दूर करो; तुम्हारा वचन मैं वेदसे भी श्रेष्ठ समझता हूं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर सर्व्वशक्तिमान गदा पद्मधारी भगवान कृष्णने जिस प्रकार पृथ्वी क्षत्रियोंके मृत शरीरोंसे परिपूर्ण हुई थी, उस वृत्तान्तको महाबलवान धर्म्मराज युधिष्ठिरके समीप यथार्थ रूपसे वर्णन करनेमें प्रवृत्त हुए।

४८ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! मैंने महर्षियोंके मुखसे भृगुनन्दन परशुरामके जन्म और उनके पराक्रम विषयक कथाको जिस भांति सुनी है; वह सब वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनो। जन महात्मा परशुरामजीने जिस प्रकार करोड़ों क्षत्रियोंका वध किया था और ये सब क्षत्रिय जिस भांति फिर राजवंशमें उत्पन्न हुए अर्थात् जो लोग उस समय भारतयुद्धमें मरे थे, उनकी पुनरुत्पत्तिका वृत्तान्त भी कहूंगा। पहिले समयमें जन्हु नाम एक राजा थे; अज नाम उनके एक पुत्र हुआ; अजके पुत्र बलाकाश्व और बलाकाश्वके कुशिक नाम एक धर्म्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ। कुछ कालके अनन्तर इन्द्रके समान पराक्रमी महात्मा कुशिकने विचारा, कि मेरे सब प्राणियोंसे अजेय त्रिलोकेश्वरके समान एक पुत्र उत्पन्न हो,—ऐसी इच्छा करके महाराज महात्मा कुशिक तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए। सहस्र नेत्रवाले भगवान इन्द्रने महात्मा कुशिकको कठोर तपस्या देखकर तथा उन्हें अभिलषित पुत्र लाभके यथार्थ अधिकारी समझके स्वयं ही उनका पुत्र होना स्वीकार किया। महाराज! देवोंके राजा भगवान इन्द्र महात्मा कुशिकके पुत्ररूपसे जन्म लेकर गाधि नामसे विख्यात हुए। कुछ समयके अनन्तर महात्मा गाधिके सत्यवती नाम

को एक कन्या उत्पन्न हुई। उस कन्याको उन्होंने भृगुनन्दन महात्मा ऋचीकको प्रदान किया। महात्मा ऋचीकने निज भार्य्याके शुद्ध व्यवहारसे अत्यन्त प्रसन्न होकर उसके और गाधिराजके पुत्र उत्पन्न होनेके वास्ते यत्नसे दो चरु उत्पन्न किये। अनन्तर अपनी स्त्रीको समीप बुलाके उससे बोले, हे कल्याणी! इन दोनों चरुओंको ग्रहण करो। इसमेंसे यह चरु अपनी माताको देना और इस चरुको तुम भक्षण करना। ऐसा होनेसे तुम्हारी माताके सब शस्त्रधारी प्राणियोंसे अजेय, क्षत्रियोंमें अग्रगण्य अत्यन्त तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न होगा; वह पुत्र पृथ्वीके सब क्षत्रियोंको दमन करनेवाला होगा। और इस दूसरे चरुके प्रभावसे तुम्हारे भी धृतिमान शान्तस्वभाववाला महा तपस्वी एक पुत्र उत्पन्न होगा।

भृगुनन्दन ऋचीकने भार्य्यासे इतनी कथा कहके तपस्या करनेके वास्ते वनके बीच गमन किया। उसी समय गाधिराज तीर्थयात्रा करते हुए स्त्री सहित महात्मा ऋचीकके आश्रममें उपस्थित हुए। उन दोनोंको निज आश्रममें आया हुआ देखके ऋचीक-पत्नी सत्यवतीने दोनों चरुओंको लेकर हर्ष पूर्व्वक माताके समीप गमन करके दोनों ही भाग उसके हाथमें देकर स्वामीके कहे हुए सब वृत्तान्तको वर्णन किया। गाधिराजकी स्त्रीने भ्रमसे अपना चरु कन्याको देकर उसके चरुको आप भक्षण किया। अनन्तर सत्यवतीने क्षत्रियोंको नाश करनेवाला, अग्निके समान प्रकाशमान अत्यन्त तेजस्वी एक पुत्र गर्भमें धारण किया। उस समय भृगुशार्दूल भगवान ऋचीक वहांपर आके उपस्थित हुए और योग प्रभावसे निज-भार्य्या देवरूपिणी सत्यवतीके गर्भस्थ पुत्रको देखके उससे कहने लगे,—हे भद्रे! चरु अदल बदल होनेके कारण तुम अपनी मातासे ठगी गई; इस कारण तुम्हारा पुत्र क्रूर स्वभाव और क्रूरकर्म्मोंका करनेवाला होगा और तुम्हारी माताके गर्भसे अत्यन्त तपस्वी ब्रह्मनिष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा। इसका कारण यह है कि तुम्हारा चरु ब्रह्मतेजसे परिपूर्ण था, और तुम्हारी माताके चरुमें सम्पूर्ण क्षत्रिय तेज परिपूरित था; परन्तु उसके उलट फेर होनेसे पुत्रभी तुम दोनोंके विपरीत होंगे अर्थात् तुम्हारे गर्भसे क्षत्रिय और तुम्हारी माताके गर्भसे ब्राह्मण लक्षण युक्त पुत्र उत्पन्न होगा। तब सत्यवती स्वामीके मुखसे ऐसा वचन सुनके पृथ्वीमें गिर पड़ी और कांपती हुई विनय पूर्व्वक उनसे यह वचन बोली। हे भगवन् "तुम्हारे ब्राह्मणाधम पुत्र उत्पन्न होगा।" आप मेरे विषयमें ऐसा वचन न प्रयोग करिये, क्यों कि आप तपके प्रभावसे सब विषयोंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं।

ऋचीक मुनि बोले, हे भद्रे! तुम यह मत समझो, कि मैंने पहिलेसे ही तुम्हारे वास्ते ऐसा सङ्कल्प किया था; केवल चरु बदलनेसे ही तुम्हारे गर्भसे कठोर कर्म्म करनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा।

सत्यवती बोली, हे भगवन्! उत्तम पुत्र उत्पन्न होनेकी बात ही क्या है! आप इच्छा करनेसे तीनों लोकोंको फिरसे उत्पन्न कर सकते हैं; इससे कृपा करके मेरे गर्भसे एक शम परायण शान्त स्वभाव युक्त पुत्र उत्पन्न करिये।

ऋचीक मुनि बोले, हे कल्याणि! यज्ञकी अग्निसे चरु प्राप्त करनेकी बात तो बहुत दूर है, मैंने कभी परिहासके मिससे भी मिथ्या वचन नहीं कहा है। विशेष करके तुम्हारे पिताके कुलमें जो शम परायण ब्राह्मण पुत्र उत्पन्न होंगे अपने सब कुलको ब्राह्मण धर्म्मावलम्बी करेगा; उसे मैंने पहिलेसे ही तपस्याके प्रभावसे जान लिया था।

सत्यवती बोली, हे भगवन् आपने जो कभी भी मिथ्या वचन नहीं कहे, इसे मैं स्वीकार

करती हूं परन्तु पुत्र और पौत्रमें कुछ भी विशेष अनन्तर नहीं है ; इससे आपकी कृपासे मेरा पौत्र क्षत्रियधर्म्म युक्त क्रूर-कर्म्मोंका करनेवाला और मेरा पुत्र शमपरायण ब्रह्म-निष्ठ होवे।

महात्मा ऋचीक मुनि बोले, हे वरवर्णिनि ! पुत्र और पौत्रमें जो विशेष अनन्तर नहीं है, मैं इस वचनको स्वीकार करता हूं ; इससे तुमने जैसी अभिलाषाकी है, वैसा ही होगा।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज ! समय पूरा होने पर ऋचीकपत्नी सत्यवतीके जमदग्नि नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह पुत्र तपस्यामें रत इन्द्रिय जीतनेवाला और शान्त प्रकृतिवाला हुआ था, इधर कुशिकपुत्र महात्मा गाधिराजके भी ब्राह्मण लक्षण युक्त विश्वामित्र नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो कुछ दिनोंके अनन्तर क्रमसे ब्रह्मत्व प्राप्त करके सम्पूर्ण पृथ्वीके बीच ब्रह्मर्षि कहके विख्यात हुए थे।

तिसके अनन्तर ऋचीक-पुत्र तपस्वी जमदग्निके एक महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। युवा अवस्था प्राप्त होनेपर वह अग्निके समान अत्यन्त तेजस्वी होकर धनुर्व्वेद आदि सब विद्या पढ़के क्षत्रियनाशक राम नामसे सम्पूर्ण पृथ्वीके बीच विख्यात हुए, उन्होंने गन्धमादन पर्व्वत पर जाके कठिन तपस्यासे महादेवको प्रसन्न करके तीक्ष्ण धारसे युक्त परशु और दूसरे सब अस्त्र शस्त्रोंको प्राप्त किया; और जलती हुई अग्निके समान तीक्ष्ण धारवाले प्रचण्ड फरसेसे ही वह सब लोकोंके बीच अद्वितीय वीर योद्धा कहके विख्यात हुए। उस समय हैहय देशमें कृतवीर्य्यपुत्र सहस्रबाहु अर्ज्जुन नाम एक महाबली राजा थे। उस धर्म्मात्मा महातेजस्वी अर्ज्जुनने महर्षि दत्तात्रेयकी कृपासे निज अस्त्र और बाहु बलके प्रभावसे सब पृथ्वी जय करके चक्रवर्त्ती राज्य प्राप्त किया और अश्वमेध यज्ञमें पर्व्वत वन और सात दीपवाली पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान की। किसी समयमें अग्निदेवने भूखे होकर तृण काष्ठ आदि वस्तुओंको भस्म करनेकी अभिलाषासे राजा सहस्रबाहु अर्ज्जुनके समीप आके प्रार्थना की, उन्होंने अग्निदेवको वन पर्व्वतोंके सहित ग्राम नगर और राज्य समर्पण किया ; उससे अग्नि भगवानने अत्यन्त प्रसन्न होकर महातेजस्वी पुरुषेन्द्र कार्त्तवीर्य्य अर्ज्जुनके प्रभावसे उनके बाणके अग्रभागसे प्रकट होके पर्व्वतोंके सहित सम्पूर्ण वनस्पतियोंको भस्म कर दिया। अग्निने हैहयराजकी सहायता पाके तथा वायुके प्रभावसे बढ़के निर्ज्जन स्थानमें स्थित महातेजस्वी महात्मा महर्षि वशिष्ठ मुनिके मनोहर आश्रम पर्य्यन्तको भी भस्म कर दिया। महाराज ! इसी प्रकार कार्त्तवीर्य्य अर्ज्जुनके प्रभावसे निज आश्रमको भस्म हुआ देखकर महातेजस्वी वशिष्ठ मुनिने उसे शाप दिया। हे अर्ज्जुन ! तुमने जो मेरे इस वन और आश्रमको भस्म किया है, इस अपराधके कारण परशुराम तुम्हारे सब शाखाको काटेंगे। महात्मा वशिष्ठ मुनिके शाप देनेपर भी महापराक्रमी शमपरायण, ब्रह्मनिष्ठ, शरणागत पालक, दानी महातेजस्वी बलवान सहस्रबाहु अर्ज्जुनने उनके शापकी कुछ भी पर्व्वाह न की। परन्तु, राजा सहस्रबाहु अर्ज्जुनके बलवान पुत्र ही उनके वधके कारण होगये, अर्थात् वे लोग शाप प्रभावसे अभिमानमें मत्त होकर दुष्टताके सहित परशुरामकी अनुपस्थितिमें महर्षि जमदग्निके होमकी गऊके बछड़े हर ले गये। परन्तु यह कार्य्य हैहयराजकी अजानकारीमें हुआ था, तौभी महात्मा जमदग्नि मुनिके सङ्ग उनका महाघोर विरोध उपस्थित हुआ। उसी समय परशुराम युद्धमें प्रवृत्त होकर सहस्रबाहु अर्ज्जुनकी सब भुजाओंको काटके राजभवनके भीतर स्थित अपनी गौओंके बछड़ोंको लेकर अपनी कुटीपर लौट आये।

तिसके अनन्तर किसी समय यशस्वी परशु-राम कुश और काष्ठ आदिके निमित्त वनमें गये थे, उसी समयमें सहस्रबाहु अर्जुनके मूर्ख पुत्रोंने उनकी अवज्ञा की, और सबने एकत्रित होके महात्मा जमदग्नि ऋषिके आश्रममें गमन करके भालेसे उनका सिर काट डाला। भृगु-कुलसिंह महातेजस्वी परशुराम पिताके वधसे अत्यन्त कुपित हुए और क्रोधसे व्याकुल होकर उन्होंने प्रतिज्ञा करके अस्त्र ग्रहण किया, कि "मैं इस सम्पूर्ण पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करूंगा।"—अनन्तर महात्मा परशुरामने अपना पराक्रम प्रकाशित करके युद्धमें कार्त्त-वीर्य अर्जुनके पुत्र और पौत्रोंको शीघ्र ही मार डाला। महाराज! अनन्तर भृगुनन्दन परशु-रामने क्रुद्ध होके युद्धमें हैहयवंशीय सहस्रों क्षत्रियोंका वध करके उनके रुधिरसे पृथ्वीको कीचड़मय कर दिया। तिसके अनन्तर महात्मा परशुराम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे सूनी करके अत्यन्त कृपायुक्त होकर वनमें चले गये, वनमें तपस्या करते हुए पर-शुरामको कई हजार वर्ष बीत गये। तब विश्वामित्र-पौत्र रैभ्यके पुत्र महातपस्वी परा-वसु जनसमाजके बीच परशुरामकी निन्दा करके उनसे यह वचन बोले, हे राम! स्वर्गसे पतित हुए ययाति राजाके निमित्त जो यज्ञ हुआ था, और उस यज्ञमें जो प्रतर्द्दन आदि राजा आके एकत्रित थे, वे क्या क्षत्रिय नहीं हैं? तुमने जो जनसमाजके बीच पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करनेकी प्रतिज्ञा करके अपनी बड़ाई की थी; तुम्हारी वह सब प्रतिज्ञा मिथ्या हुई! क्यों कि इस समय पृथ्वी फिर असंगिनत क्षत्रियोंसे परिपूर्ण है; हम लोगोंने समझ लिया, कि तुम इन सब वीरोंके भयसे ही इस पर्व्वतपर आके निवास कर रहे हो। महाराज! क्रुद्ध स्वभाव वाले भगवान परशुरामने परावसुके ऐसे निन्दायुक्त वचनोंको सुनके अपना अपमान समझकर फिर अस्त्र ग्रहण किया। जो क्षत्रिय पहिली बारके युद्धमें किसी भांति जीवित बच गये थे, उन्हीं महाबलवान क्षत्रियोंसे ही क्षत्रिय वंश बढ़ा, और धीरे धीरे वेही सब क्षत्रिय सन्तान सारी पृथ्वीके राजा होगये थे। भृगुनन्दन परशु-रामने फिर शीघ्र ही युद्धभूमिमें उपस्थित होके बालकों तथा पुत्र पौत्रोंके सहित सब क्षत्रियोंको मारडाला।

तिसके अनन्तर जो बालक गर्भमें थे, उन्ही सब क्षत्रियपुत्रोंसे पृथ्वी फिर परिपूरित होगई, परशुरामजीने इस वृत्तान्तको सुनते ही फिर आके उनका वध किया। महाराज! इसी भांति जब जब क्षत्रियोंके पुत्र गर्भसे उत्पन्न होके बढ़ते थे, तब तब परशुराम वनसे आके उनका संहार करते थे, परन्तु उस समय बहुतसे क्षत्रियोंकी स्त्रियोंने अति कौशलके सहित अपने गर्भकी रक्षा की थी। इधर महातेजस्वी भग-वान परशुरामने क्रमसे इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करके अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया और दक्षिणामें कश्यप मुनिको सारी पृथ्वी दान कर दी। महर्षि कश्यपने क्षत्रिय बालकोंकी रक्षाकरनेकी अभिलाषासे हाथमें स्रुवा लेकर पृथ्वीका दान ग्रहण करके परशु-रामसे कहा, हे राम! इस समय यह पृथ्वी मेरी हुई है, अब इस पृथ्वीपर वास करना तुम्हें उचित नहीं है, तुम शीघ्रही दक्षिण समु-द्रके तीर गमन करो। इधर समुद्रने महात्मा परशुरामके निमित्त पृथ्वी सीमाको त्यागके अपने उदरमें शूर्पारक नाम स्थान बना रक्खा। महर्षि कश्यप परशुरामसे सब पृथ्वी दान लेकर ब्राह्मणोंको समर्पण करके निज स्थानमें चले गये। महाराज जब पृथ्वी राजासे रहित हो गई, तब बलवान पुरुष निर्बल पुरुषोंको दुःख देने लगे, शूद्र, वैश्य आदिक इच्छानुसार ब्राह्म-णोंकी स्त्रियोंसे अधर्म करने लगे, अधिक क्या

कहा जाये, उस समय डाकुओंके उपद्रवसे किसी को भी अपने धन पर अधिकार तथा प्रभुता न रही। इसी भांति समयकी गति विपरीत होनेपर पृथ्वी धर्म्म-पालक क्षत्रियोंसे यथारीति न रक्षित होनेके कारण दुष्टोंके भारसे अत्यन्त दुःखित होके पातालमें जानेके निमित्त उद्यत हुई। महातपस्वी कश्यप मुनिने पृथ्वीको पातालमें गमन करनेके वास्ते उद्यत देखकर उसे उरु पर धारण किया, पृथ्वी कश्यप मुनिके उरु पर धारण होनेके कारण उर्व्वी नामसे विख्यात हुई। अनन्तर पृथ्वीने अपनी रक्षाके वास्ते महात्मा कश्यपको प्रसन्न करके धर्म्मात्मा राजाकी प्रार्थना की। पृथ्वी बोली, हे ब्रह्मन्! कितनी ही स्त्रियोंसे क्षत्रिय सन्तान उत्पन्न होके मुझसे रक्षित होकर गुप्तरीतिसे निवास कर रहे हैं, मैं तुम्हारे समीप उनके कुल और गोत्रका वर्णन करती हूं आप सुनके मेरी रक्षाका उपाय करिये। कितने ही हैहयवंशीय धर्म्मात्मा क्षत्रिय जीवित है, पुरुवंशीय विदूरथ पुत्र ऋक्षवान पर्व्वत पर रीछोंसे रक्षित होकर वहां पर निवास कर रहा है। सौदास राजपुत्र जिसकी पराशर मुनिने कृपा करके रक्षाकी है; वह भी जीवित है; परन्तु उसके संस्कार आदि सब कर्म्म शूद्रजातिकी भांति किये गये है; इसीसे अब वह सर्व्व-कर्म्मा नामसे विख्यात है। शिबि-पुत्र महातेजस्वी गोपति वनके बीच गौवोंके दूधसे प्रतिपालित होकर जीवित है। प्रतर्द्दन-पुत्र महाबलवान वत्स गौवोंके समूहमें बछड़ोंके साथ मिलके गौवोंका दूध पीके प्राण धारण करता है। गङ्गाके किनारे गौतम-वंशीय किसी ब्राह्मणने कृपा करके दधिवाहन-पौत्र दिविरथका पुत्रकी रक्षा की है। महर्षि भूरि-भूतिने महातेजस्वी वृहद्रथका संस्कार आदि कर्म्म किया है, वह भाग्यवान बालक गृध्रकूट पर्व्वत पर गोलाङ्गूलोंसे रक्षित होकर प्राण धारण करता और इन्द्रके समान पराक्रमी कितने ही मरुत्तवंशी क्षत्रिय भी जीवित हैं; समुद्रने उन लोगोंकी रक्षा की है। हे ब्रह्मन्! ये सब क्षत्रिय पुरुष आके दुष्ट डाकुओंसे मेरी रक्षा करें। हे विप्र! मैंने जिन क्षत्रियोंका वृत्तान्त कहा है, वे सब प्राणभयसे अलग कहे हुए स्थानोंमें गुप्त रीतिसे निवास कर रहे हैं; इसके अतिरिक्त कितनेही बढ़ई और सोनारोंके घरोंमें भेष बदलके बहुतसे क्षत्रिय पुरुष विद्यमान हैं। यदि वे सब श्रेष्ठ कुलोंमें उत्पन्न हुए क्षत्रिय पुरुष आके मेरी रक्षा करें, तो मैं अवश्य ही स्थिरताके सहित स्थित होऊंगी। देखिये, इन क्षत्रियोंके पिता, पितामह आदि सब पुरुष मेरे ही निमित्त कठिन कर्म्मोंके करनेवाले परशुरामके हाथसे मारे गये हैं; इससे मैं अवश्य ही उनके कुलमें उत्पन्न हुए तथा मरनेसे बचे हुए वीर धुरीण पुत्र पौत्रोंको अपना स्वामी स्वीकार करके उन मृत राजाओंके ऋणसे मुक्त होऊंगी। हे महर्षि! अधिक क्या कहूं, मैंने जो कुछ वचन कहा यदि वैसा ही हो, तो मैं स्थिरताके सहित निवास कर सकती हूं; परन्तु मर्य्यादारहित दुष्ट पुरुषों तथा डाकुओंसे रक्षित होना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं करूंगी; इससे आप शीघ्रताके सहित उन राजपुरुषोंको राज्यपद पर प्रतिष्ठित करनेका उपाय करिये।

श्रीकृष्ण बोले, महाराज! तिसके अनन्तर महात्मा कश्यप मुनिने पृथ्वीके वचनको सुनके उन बलवीर्य्यसे युक्त सब क्षत्रिय पुत्रोंको लाके राज्यपदपर अभिषिक्त किया। जिन राजाओंके पुत्र पौत्र आदि जीवित थे, इसी भांति उन लोगोंका वंश फिर राजपदपर प्रतिष्ठित हुआ। हे राजेन्द्र! तुमने मुझसे जो कुछ प्रश्न किये, मैंने वह सब वृत्तान्त यथारीतिसे तुम्हारे समीप वर्णन किया।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन् जनमेजय! इसी भांति यदुकुल श्रेष्ठ महात्मा श्रीकृष्ण-

चन्द्र धार्म्मिक पुरुषोंमें अग्रणी राजा युधिष्ठिरसे प्राचीन कथा कहते हुए सूर्य्य किरण समान प्रकाशमान रथसे सब दिशाओं प्रकाशित करते तथा वायुके समान वेगगामी रथपर चढ़े हुए गमन करने लगे।

४९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर धर्म्मराज युधिष्ठिर भृगुकुल शिरोमणि परशुरामजीके अद्भुत कर्म्मोंको सुनके अत्यन्त ही विस्मित हुए और जनार्द्दन कृष्णसे बोले, हे वृष्णिनन्दन कृष्ण! मैं इन्द्रके समान अत्यन्त परा क्रमी परशुरामके पराक्रमकी कथा सुनके अत्यन्त ही आश्चर्य्य युक्त हुआ हूं, क्योंकि उन्होंने क्रुद्ध होकर अकेले ही सब पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर दिया था। यह भी अत्यन्त ही आश्चर्य्यका विषय है, कि मरनेसे बचे हुए क्षत्रि यसन्तानोंने परशुरामके भयसे व्याकुल होकर गऊ, गोलाङ्गूल ऋक्ष, बन्दर और समुद्रके आसरेसे अपनी प्राणरक्षा की थी। अहा! इस जीव लोकको धन्य है और इस पृथ्वीके मनु ष्योंको भी धन्य है। क्यों कि ब्राह्मणोंमें अग्र गण्य महर्षि कश्यपने इस प्रकार धर्म्म कार्य्य किया है, अर्थात् कृपा करके राजपुत्रोंकी रक्षा करके पृथ्वीको धर्म्मपूर्व्वक रक्षित किया है। महाराज! श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिर इसी भांति वार्त्तालाप करते हुए चलते चलते सात्यकि आदि वीरोंके सहित उस स्थानपर जा पहुंचे, जहां गङ्गानन्दन भीष्म शरशय्यापर शयन कर रहे थे। उन लोगोंने वहांपर पहुंचके देखा, कि बहती हुई नदीके किनारे परम पवित्र स्थानमें शरशय्यापर स्थित महात्मा भीष्म मानो अपने तेजसे सन्ध्या कालके सूर्य्य समान प्रकाशित हो रहे हैं।

अनन्तर श्रीकृष्ण भगवान, कृपाचार्य्य और भीम-अर्ज्जुन आदि पुरुषश्रेष्ठ और भगवान इन्द्रकी उपासना करनेवाले देवताओं भांति मुनियोंसे पूजित भीष्मको दूरसे ही देखके सब कोई रथसे उतरे, और सब इन्द्रियों तथा चञ्चल चित्तको संयम करके पहिले मुख्य मुख्य मुनियों तथा व्यास आदिक ऋषियोंको प्रणाम करके फिर गङ्गानन्दन भीष्म की उपासना करनेमें प्रवृत्त हुए। तिसके अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ यादव और कौरव लोग महातपस्वी गङ्गानन्दन भीष्मका दर्शन करके उनके चारोंओर बैठ गये, तब यदुनन्दन कृष्ण शान्त होती हुई अग्निकी भांति भीष्मको क्रमशः शान्त भावसे देखकर किञ्चित् दीन चित्तसे बोले,—हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ! इस समय आपका चित्त पहिलेकी भांति प्रसन्न तो है? आपकी बुद्धि व्याकुल तो नहीं हुई है? बाणोंके चोटकी पीड़ासे आपका शरीर पीड़ित तो नहीं है, क्योंकि मानसिक दुःखोंसे भी शारीरिक क्लेश प्रबल होते हैं। मैं जानता हूं, कि आप निजपिता महाराज शान्तनुके वर-प्रभावसे इच्छानुयायी मृत्यु प्राप्त करनेमें समर्थ हुए हैं। अधिक क्या कहूं, आपने जिस प्रकार पिताको सन्तुष्ट करके इच्छामरण वर प्राप्त किया है; वैसा पितृसन्तोष रूपी कारण हम लोगोंमें विद्यमान नहीं है। तथापि जब कि मनुष्य शरीरमें एक कांटेके गड़जानेसे भी शरीरको क्लेश होता है तब अनगिनत बाणोंकी चोटसे जो आपके शरीरमें पीड़ा होगी इसमें क्या आश्चर्य्य है? परन्तु इसमें अवश्य ही स्वीकार करूंगा, कि ऊपर कहे हुए सुख दुःख साधारण पुरुषोंको ही आक्रमण कर सकते हैं; आप ऐसे पुरुषोंको क्लेश आदिक कदापि मोहित तथा दुःखित नहीं कर सकते, क्योंकि आप प्राणियोंकी उत्पत्ति और लय आदि सम्पूर्ण तत्वोंका देवताओंको भी उपदेश करनेमें समर्थ हैं। हे भरतर्षभ! आप इस पृथ्वीके बीच सम्पूर्ण ज्ञानी पुरुषोंमें अग्रगण्य हैं। अधिक क्या कहूं, भूत, वर्त्तमान और भविष्य

इन तीनों कालोंके जो कुछ जानने योग्य विषय है, आप उन सब वृत्तान्तोंको जानते हैं। हे महाबुद्धिमान! धर्मके फलोंकी प्राप्ति और प्राणियोंका संहार यह सब आपको विदित है; क्योंकि आप धर्मात्मा और धर्मके आधार स्वरूप हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! दार-परित्याग रूपी प्रतिज्ञाके पहिले भी जब कि आप वैसे समृद्धियुक्त राज्यके बीच सहस्रों स्त्रियोंके बीच घिरे रहते थे, उस समय भी मैंने आपको रोगरहित शरीरसे युक्त ऊर्द्ध रेता ब्रह्मचारी पुरुषके समान देखता था। धर्मपरायण सत्यनिष्ठ महाबली पराक्रमी शान्तनुपुत्र भीष्मके अतिरिक्त तीनों लोकके बीच दूसरे ऐसे किसी प्राणीका भी प्रभाव नहीं सुना गया, जो शरशय्यापर शयन करके तपके प्रभावसे मृत्युको इच्छानुसार निवारण कर रखे? भरतकुल शिरोमणि! सत्य, तपस्या, दान युद्ध, यज्ञ, धनुर्वेद, वेद और शरणागतको पालन करनेवाला आपके समान दूसरा कोई भी पुरुष नहीं है; और अनृशंसता, पवित्र स्वभाव, इन्द्रिय-संयम, सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत रहनेवाला और युद्धमें अद्वितीय रथी हो आपके समान इस पृथ्वीपर दूसरा कौन है? आप जो अकेले ही युद्धमें देवता, गन्धर्व, असुर, यक्ष और राक्षसोंको पराजित करनेमें समर्थ हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। वसु अंशसे जन्म ग्रहण करनेसे यद्यपि ब्राह्मण लोग आपको गणना नवम वसुमें करते हैं, तौभी निज गुणोंके प्रभावसे आप सब वसुओंसे भी श्रेष्ठ होकर इन्द्रकी समानताको पहुंचे हैं। हे पुरुष सत्तम! आप निज पराक्रमके प्रभावसे देवलोकमें भी विख्यात हुए हैं, आपके ज्ञान और सामर्थ्यके विषय आदि सुझसे कुछ भी छिपे हुए नहीं हैं। हे पुरुषेन्द्र! इस पृथ्वीपर आपके समान गुणशाली कोई पुरुष विद्यमान है, ऐसा न कहीं देखा गया और न कहींपर सुननेमें ही आया। हे पुरुषोत्तम! आप सब गुणोंमें देवताओंसे भी श्रेष्ठ हुए हैं और निज तपस्याके प्रभावसे चराचर प्राणियोंको नयी सृष्टि भी करनेमें समर्थ हैं। ऐसे समयमें आप जो उत्तम गुणोंके प्रभावसे अपने गमन करने योग्य उत्तम लोकको प्राप्त करेंगे; उसमें सन्देह ही क्या है। इससे आप इस समय निज उपदेशसे स्वजन-नाश शोकसे व्याकुल पाण्डवोंमें जेठे महाराज युधिष्ठिरका शोक दूर करिये। क्योंकि चारों वर्ण; चारों आश्रम, चारों विद्या, चातुर्होत्र, वेद, सांख्य, योग और शिष्टाचार आदि जो कुछ धर्म हैं, वे सब आपको विदित हैं; अधिक क्या कहा जावे, जो चातुर्वर्णोंके विरुद्ध नहीं हैं, उन सब धर्मके गूढ़ तात्पर्य अर्थोंको व्याख्याके सहित आप जानते हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिलोमजात वर्ण धर्म, जातिधर्म, देशधर्म और कुलधर्म आदि जो सब लक्षण वेदशास्त्रोंमें वर्णित हैं, वे सब भी आपसे अविदित नहीं हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! अर्थ सहित निखिल धर्मशास्त्र और पुराण आदिकोंके सब तात्पर्य आपके मनमें विशेष करके इस संसारके बीच जिन विषयोंके अर्थोंमें संशय है; उसे छेदन करनेवाला आपके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष होसकता है? इससे आप अपने ज्ञानप्रभावसे धर्मराज युधिष्ठिरके मन उत्पन्न हुए शोकको दूर कीजिये, क्योंकि आपके समान ज्ञान वृद्ध पुरुषोंका जन्म केवल शोकादिकोंसे मोहित मनुष्योंके चित्तमें शान्ति स्थापित करानेके वास्ते होता है।

५० अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! कुरुकुल शिरोमणि भीष्म बुद्धिमान कृष्णके वचनको सुनके कुछ बदन झुकाके हाथ जोड़के उनसे बोले, हे भगवन्! तुम ही इस जगत्‌की

उत्पत्ति और प्रलय करनेवाले हो; इससे तुम्हें नमस्कार है। हे कृष्ण! हे विश्वकर्मन्! तुम्हीं इस जगत्‌की आत्मा हो, तुमसे ही यह संसार उत्पन्न हुआ है। हे हृषीकेश! तुम सम्पूर्ण लोकोंमें अजेय हो, तुम्ही सृष्टिकर्त्ता और संहर्त्ता हो। तुम, ही अपवर्ग अर्थात् नित्य मुक्त स्वरूप हो, तुम पञ्च महाभूतों और शब्द, स्पर्श, रूप रस गन्ध आदि पांचों गुणोंसे पृथक् हो। तुम स्वर्ग, मर्त्यलोक और पाताल इन तीनों लोकों और तीनों कालोंमें विद्यमान हो; तथापि इनसे भिन्न समझे जाते हो! इससे तुम्हें नमस्कार है। हे योगीश्वर! तुम सबके आश्रय स्वरूप हो, इसे तुम्हें प्रणाम है। हे पुरुषोत्तम! तुमने प्रसन्न होकर मेरे गुणोंका वर्णन किया है, उससेमुझे दिव्य-नेत्र प्राप्त हुआ है; जिसके प्रभावसे मैं त्रिलोक स्थित दिव्य भाव और आपके सनातन रूपका दर्शन करनेमें समर्थ हुआ हूं। तुम अत्यन्त तेजस्वी वायुरूपसे सप्तछिद्रोंको निरोध करके सबके हृदयमें स्थित हो। तुम्हारे शिरसे आकाश और चरणसे पृथ्वी व्याप्त है, दिशा तुम्हारी भुजा, सूर्य नेत्र और इन्द्र तुम्हारे पराक्रमके प्रभावसे प्रतिष्ठित हैं। हे अच्युत! तुम्हारा शरीर अतसीपुष्पके समान है, वह पीतवस्त्रोंसे युक्त होकर इस प्रकार शोभित होरहा है, जैसे आकाशमण्डलमें बिजलीसे युक्त बादलोंकी शोभा होती है! हे देवोंमें श्रेष्ठ! हे पुण्डरीकाक्ष! मैं तुम्हारा शरणागत भक्त हूं, मैं उत्तम गति पानेकी अभिलाषासे तुमसे प्रार्थना कर रहा हूं; इससे जिस प्रकार मेरा कल्याण होवे, आप उसीका विधान करिये।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे कुरुनाथ! तुम जो कपटरहित होकर मेरी भक्तिमें तत्पर रहते हो, उसी कारण तुमने मेरी दिव्य मूर्त्तिका दर्शन किया है! भक्तिरहित, कपटी भक्त और शान्ति रहित पुरुष मेरी दिव्य मूर्त्तिका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होसकते; परन्तु तुम मेरे अनन्य ही भक्त और विनय सम्पन्न हो। विशेष करके तुम तपस्या, दया और दान आदि कर्मोंमें सदासर्व्वदा रत रहते हो; तुम्हारा स्वभाव अत्यन्त निर्म्मल है; तुम निज तपस्याके प्रभावसे मेरी दिव्य मूर्त्ति दर्शनके योग्यपात्र हो। हे भीष्म! जिस स्थानमें गमन करनेसे जीवोंकी पुनरावृत्ति नहीं होती, तुम्हें उसी स्थानमें मैं भेजूंगा परन्तु इस समय अभी तीस दिवस तुम्हारे जीवनका समय बाकी है; कार्य्योंको कर सकते हैं, आप तीस ही दिनोंमें उससे अधिक कर्त्तव्य कर्म्मोंका अनुष्ठान करके उसे पूर्ण करनेमें समर्थ होंगे। इसके अनन्तर शरीर त्यागके अपने अभिलषित स्थानमें गमन कीजियेगा। यह देखिये, जलती हुई अग्निके समान वसु और देवता लोग विमानोंपर चढ़के अलक्षित भावसे सूर्य्यके उत्तरायण कालकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे कुरुश्रेष्ठ। तत्त्वज्ञानी पुरुष जिस लोकमें जाके फिर मर्त्यलोकमें नहीं आते; भगवान सूर्य्यके उत्तरायण होनेपर तुम शरीर त्यागनेके उपरान्त उस ही स्थानमें गमन करोगे। हे भीष्म! जब तुम इस लोकसे गमन करोगे, तब उस समय ज्ञान लुप्त प्राय होजायगा, इसी कारणसे ये सब कोई धर्म्म-जिज्ञासु होकर तुम्हारे समीप आके उपस्थित हुए हैं, उससे स्वजन-नाशरूपी शोकसे दुःखित सत्यवादी युधिष्ठिरको आप धर्म्म, अर्थ और समाधि, तथा योगयुक्त सत्य वचनोंका उपदेश करके इनका शोक दूर करिये।

५१ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर शान्तनुपुत्र भीष्मने श्रीकृष्णचन्द्रके धर्म्म अर्थ-युक्त लोक हितकर वचनको सुनके हाथ जोड़के उन्हें उत्तर दिया, हे जगन्नाथ! तुम साक्षात्

शिवस्वरूप अव्यय पुरुष नारायण हो; तुम्हारे वचनोंको सुनके मेरा हृदय आनन्दसे पुलकित होरहा है। जब कि हर एक विषयोंमें कहने योग्य जो कुछ वचन हैं, वे सब पहिलेसे ही तुम्हारे वचनरूपी वेदोंमें विद्यमान हैं; तब मैं तुम्हारे सम्मुख किस कथाका उपदेश करनेमें समर्थ होसकता हूं इस लोक और परलोकमें कल्याणकी अभिलाषा करके बुद्धिमान पुरुष जो कुछ कर्म्म करते हैं, और इस संसारमें जो कुछ करने योग्य कार्य्य हैं, वह सब तुमसे ही प्रकट हुए हैं; इससे जो पुरुष देवराज इन्द्रके समीप देवलोकका भी वृत्तान्त कहनेमें समर्थ है। वही पुरुष तुम्हारे सम्मुख धर्म्म अर्थ, काम और मोक्षके यथार्थ वृत्तान्तको कह सकेगा। हे मधुसूदन! मेरा शरीर बाणोंकी चोटसे अत्यन्त पीड़ित है, उससे मेरा चित्त व्याकुल होरहा है, मेरा सम्पूर्ण शरीर शिथिल होरहा है, मेरी बुद्धि चञ्चल है। हे गोविन्द! विष तथा अग्निके समान बाणोंकी चोटसे मेरे सब अङ्ग अत्यन्त ही पीड़ित होरहे है, इसी कारण मेरी बुद्धि इस प्रकार प्रतिभा-रहित होरही है, कि वचन कहनेमें प्रवृत्ति नहीं होती हैं। मेरा शरीर धीरे धीरे बलहीन हुआ जाता है, प्राण शरीरसे बाहर हुआ चाहता है और मेरे मर्म्मस्थल इस प्रकार पीड़ित होरहे हैं, कि उससे बारम्बार मेरा चित्त भ्रमित होता है। जब कि निर्ब्बलताके कारण मेरे मुखसे वचन भी बार बार नहीं बाहर होते हैं; तब मैं धर्म्म उपदेश करनेका किस प्रकार उत्साह कर सकता हूं? हे दाशार्ह कुलवर्द्धन कृष्ण! मैं तुमसे क्षमा प्रार्थना करता हूं, आप कृपा करके मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये; मैं कुछ भी नहीं कह सकूंगा? विशेष करके तुम्हारे समीप उपदेश करनेमें वृहस्पति भी अवसन्न हो सकते हैं! हे मधुसूदन! मेरा चित्त इस प्रकार भ्रान्त हो रहा है, कि आकाश, पृथ्वी और दिशा भी मुझे विशेष रूपसे नहीं मालूम होती है; केवल तुम्हारे तेजके प्रभावसे जीवन धारण कर रहा हूं, इससे धर्म्मराज युधिष्ठिरका जिसमें हित हो; तुम स्वयं ही उस विषयका उपदेश करो; क्योंकि तुम वेद-शास्त्रोंके नियन्ता हो। हे कृष्ण! सब लोकोंके कर्त्ता नित्यपुरुषस्वरूप तुम निकटमें हो उप-स्थित हो, ऐसी अवस्थामें मेरे समान पुरुष किस प्रकार धर्म्मका वक्ता होसक्ता है? ऐसा होनेसे जैसे गुरुके उपस्थित रहते कोई शिष्य उपदेष्टा बने, मेरा उपदेश करना भी तुम्हारे समीप वैसा ही समझा जावेगा।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे गङ्गानन्दन भीष्म! तुमने जो कुछ वचन कहा, वह सब वचन स्वार्थदर्शी, स्थिर-प्रतिज्ञ, महापराक्रमशाली कौरव-शिरोमणि महात्मा भीष्मके योग्य ही है। तुमने जो बाणोंकी पीड़ाका वर्णन किया, उसके शान्त्यर्थ मैं प्रसन्न होकर तुम्हें वरदान देता हूं,—अबसे शारीरिक पीड़ा तथा दाह मूर्च्छा आदि किसी प्रकारकी पीड़ा और भूख प्यास आदिके क्लेश तुम्हारे चित्तको कदापि दुःखित न कर सकेंगे। हे पापरहित! इस समय तुम्हारे ज्ञानकी प्रतिभा पूरी रीतिसे प्रकाशित होगी; तुम्हारी बुद्धि अबसे किसी विषयमें भी भ्रमित न होगी। आजसे तुम्हारा चित्त रज और तमोगुणसे रहित होकर केवल सतोगुणमें इस प्रकार स्थित होगा, जैसे चन्द्रमा मेघमण्डलसे मुक्त हो निर्म्मल ज्योतिसे युक्त होकर आकाशमें स्थित होता है। तुम जिस धर्म्म वा अर्थका विचार करोगे, वह विषय तुम्हारी बुद्धिमें पूर्ण रीतिसे प्रकाशित होगा। हे महापराक्रमी! तुम दिव्य चक्षुके सहारे चार प्रकारके प्राणियोंके सूक्ष्म तत्वोंको जान सकोगे, और वे सब निर्म्मल जलमें स्थित मछ-लियोंकी भांति जिस प्रकार इस संसारमें विच-रण कर रहे हैं; उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको भी

तुम ज्ञान नेत्रसे हमारे यथार्थ रूपसे देख सकोगे।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, श्रीकृष्ण भगवानने जब भीष्मको ऐसा वरदान किया, तब व्यासदेव आदिक ऋषियोंने ऋक् यजु और सामवेदके मन्त्रोंसे उनकी पूजा की, उस समय आकाशसे श्रीकृष्ण, गङ्गानन्दन भीष्म और धर्म्मराज युधिष्ठिरके ऊपर सब ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले फूलोंके समूहों की वर्षा होने लगी, नाना भांतिके बाजे बजने लगे और अप्सरा गीत गाती हुई नृत्य करने लगीं। उस समय वहांपर किसी प्रकारके अनिष्ट विषय नहीं दीख पड़े! सब प्रकारसे सुख जनक शीतल, मन्द और सुगन्ध युक्त वायु बहने लगा, सम्पूर्ण दिशा निर्म्मल हो गईं, मृग आदि, पशु-पक्षी आनन्दित होके शान्त भावसे चारों ओर भ्रमण करने लगे। तिसके अनन्तर जैसे अग्नि भगवान बहुत बड़े बनको भस्म करके जङ्गलके एक भागमें दीख पड़ते हैं वैसे ही सहस्र किरणधारी भगवान सूर्य्य अपने प्रचण्ड तेजसे जगतको तपाके पश्चिम दिशामें दीख पड़े। सूर्य्यको पश्चिम दिशामें देखकर महर्षि लोगोंने सन्ध्योपासना करनेके निमित्त सहसा उठके जनार्द्दन कृष्ण, गङ्गानन्दन भीष्म और धर्म्मराज युधिष्ठिरके समीप विदा होनेकी प्रार्थना की। महात्मा कृष्ण, पाण्डव लोग, सात्यकि, सञ्जय और कृपाचार्य्य आदि पुरुषोंने उन ऋषि मुनियोंको प्रणाम किया। धर्म्मात्मा ऋषि लोग कृष्ण आदि महात्मा पुरुषोंसे पूर्ण रीतिसे पूजित और सत्कृत होकर कल्ह हम लोग फिर आवेंगे, ऐसा वचन कहके निज निज अभिलषित स्थानोंपर चले गये। तब महात्मा कृष्ण और पाण्डव लोगोंने भीष्मको सम्बोधन करके उनकी प्रदक्षिणा की और फिर अपने उत्तम रथोंपर चढ़के प्रस्थान करनेके निमित्त तैयार हुए। उस समय सुवर्णमय सुन्दर ध्वजा पताकाओंसे शोभित रथ, गरुड़के समान शीघ्र गमन करनेवाले घोड़े और पर्व्वतके समान बड़े शरीर वाले हाथियोंके समूह सज्जित होनेपर गजसवार, रथी घुड़सवार निज वाहनपर और पैदल सेनाके योद्धालोग हाथमें धनुष ग्रहण करके उनकी सङ्ग चलनेको तय्यार हुए। अनन्तर वह चतुरङ्गिणी सेना सज्जित होकर दो भागोंमें विभक्त हुई और भगवान कृष्ण तथा धर्म्मराज युधिष्ठिरके आगे पीछे होकर इस प्रकार गमन करने लगी, जैसे ऋक्षवान पर्व्वतके आगे पीछेसे परिक्रमा करती हुई महानदी नर्मदा गमन करती है। इधर भगवान चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोंसे उस व्यूहबद्ध सेनाके पुरुषोंके चित्तको आनन्दित और प्रचण्ड प्रभाकर औषधियोंमें रस प्रदान करते हुए पूर्व्व-दिशामें उदय हुए। तिसके अनन्तर यदुपति कृष्ण, सात्यकि और पाण्डव लोग इन्द्रपुरीके समान लक्ष्मीसे युक्त हस्तिना नगरीमें उपस्थित हुए; और जैसे थका हुआ सिंह पर्व्वतकी कन्दरामें प्रविष्ट होता है वैसे ही उन महात्मा पुरुषोंने उस राज-नगरीमें प्रवेश किया।

५२ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर मधुसूदन कृष्णने राजभवनमें गमन करके उत्तम पलङ्गके ऊपर जाके शयन किया, और आधी रात बाकी रहते ही उठके पहिले इन्द्रियों और बुद्धिको स्थिर करके परब्रह्म परमेश्वरका ध्यान किया। कुछ समयके अनन्तर मनोहर कण्ठ और स्वरोंसे युक्त शास्त्र और पुराणोंके जानने वाले बन्दीजन प्रजापति, विश्वकर्म्मा श्रीकृष्ण भगवानकी स्तुति करने लगे। उस ही समय सहस्रों ढोल, मृदङ्ग शंख, बीन और बांसुरी आदि बाजे बजने लगे; गीत गानेवाले कोमल स्वरोंसे मीठे गीत गाने लगे। उस समय गीत और बाजोंके शब्दसे पूरित होकर भग-

वान कृष्णका शयनागार इस प्रकार बोध होता था, मानो ऊंचे स्वरसे हंस रहा है। इधर राजा युधिष्ठिरके निकट भी मङ्गल-जनक स्तुतिपाठ, बाजोंके शब्द और कोमल स्वरोंसे युक्त उत्तम गीत आदि सुनाई देने लगे। तिसके अनन्तर यदुकुल शिरोमणि महाबाहु श्रीकृष्ण-चन्द्र स्नान कर हाथ जोड़कर गुप्त मन्त्रोंका जप किया, और होम कार्य्य समाप्त करके राज मन्दिरके बाहर आये, उस समय चारों वेदोंके जाननेवाले एक हजार ब्राह्मण उनके समीप आकर उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण भगवानने उन हर एक ब्राह्मणोंको एक एक गऊ दान की; उन सम्पूर्ण ब्राह्मणोंने आनन्दित होकर दान ग्रहण करके उनका स्वस्तिवाचन किया। तब कृष्ण सम्पूर्ण मांगलिक वस्तुवोंको स्पर्श करके दर्पणमें अपने स्वरूपका दर्शन करके सात्यकिसे बोले; हे सात्यकि! महातेजस्वी धर्म्मराज युधिष्ठिर भीष्मके दर्शनकी इच्छासे उनके समीप जानेके वास्ते तैयार हुए हैं, वा नहीं; तुम उनके मन्दिरमें जाके देख आवो।

सात्यकिने कृष्णकी आज्ञा सुनके धर्म्मराज युधिष्ठिरके समीप जाके यह वचन कहा, महाराज! बुद्धिमान कृष्णका रथ सज्जित है, वह गंगानन्दन भीष्मको देखनेकी इच्छासे तुम्हारी प्रतीक्षा करके स्थित हैं; इस समय जो कुछ कर्त्तव्य कार्य्य करना हो, उसे कहिये।

धर्म्मराज युधिष्ठिर सात्यकिका वचन सुन कर अर्जुनसे बोले, हे महा तेजस्वी अर्जुन! तुम मेरे वास्ते उत्तम रथ सज्जित करनेकी आज्ञा दो। आज केवल हम लोग ही कई एक पुरुष महात्मा भीष्मके निकट जावेंगे, सेना के चलने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है; क्यों कि धर्म्मात्मा पुरुषोंमें अग्रणी महात्मा भीष्म पितामहको सेनाके कोलाहलसे क्लेश देना उचित नहीं है; इससे आज तुम सेनाको सङ्ग चलनेके वास्ते निषेध करो। भीष्म पितामह आजसे अत्यन्त गुप्त धर्म्मकथाका उपदेश करेंगे, इससे मैं उस स्थानपर अन्य साधारण पुरुषोंके भीड़की इच्छा नहीं करता हूं।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, महाराज! कुन्तीपुत्र महाबाहु अर्जुनने धर्म्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञा सुनके शीघ्रही रथ सज्जित कराके उनके समीप आके निवेदन किया। तब धर्म्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव पांचों भाई मिलके कृष्णके समीप गये। महात्मा पाण्डवोंके आगमन करते ही श्रीकृष्ण भगवान सात्यकिके सहित अपने रथ पर चढ़े। वे सब पुरुष श्रेष्ठ वीर लोग आपसमें "तुम्हारी सुखपूर्व्वक रात्रि व्यतीत हुई?" इत्यादि कुशल प्रश्न करते हुए बादलके शब्द समान अपने रथोंके शब्दसे पृथ्वीको परिपूरित करते हुए गमन करने लगे। अनन्तर श्रीकृष्णके मेघपुष्प, बलाहक, शैब्य और सुग्रीव नामक चारों घोड़े दारुक सारथीके चलानेपर इस प्रकार वेगपूर्व्वक गमन करने लगे, मानो आकाश मार्गसे उड़ जाते हैं। इसी भांति महात्मा पाण्डवोंके रथ भी शीघ्रताके सहित गमन करने लगे, अधिक क्या कहा जावे? क्षणभरमें वे सब रथ कुरुक्षेत्र नामक धर्म्मक्षेत्रमें आके उपस्थित हुए और क्रमसे जिस स्थानमें देवताओंसे घिरे हुए ब्रह्माकी भांति भीष्म महर्षियोंसे घिरे हुए शरशय्यापर शयन कर रहे थे, उनके समीप आके स्थित हुए। तब श्रीकृष्ण, धर्म्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, गाण्डीवधारी अर्जुन, नकुल, सहदेव और सात्यकि आदि महातेजस्वी पुरुष रथसे उतरे और दहिने हाथसे ऋषियोंकी पूजा की। अनन्तर राजा युधिष्ठिरने तारामण्डलसे युक्त चन्द्रमाकी भांति भाइयोंके बीच घिरकर उपदेश ग्रहणकी अभिलाषासे इस प्रकार गङ्गानन्दन भीष्मके समीप गमन किया, जैसे इन्द्र देवतोंके सहित ब्रह्माके निकट गमन करते हैं। उन्होंने

उस स्थानमें स्थित होकर भययुक्त चित्तसे स्वर्ग भ्रष्ट आदित्यके समान शरशय्यापर महाबाहु भीष्म पितामहका दर्शन किया।

५३ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे महर्षि! उस भयङ्कर वीर समागममें सम्पूर्ण सेनाके नष्ट होनेके अनन्तर वीर-शय्यारूपी शरशय्यापर शयन करते हुए सत्यवादी, जितेन्द्रिय, महापराक्रमी, पुरुषसिंह गङ्गादेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए शान्तनुपुत्र महातेजस्वी धर्मात्मा भीष्म पितामहने पाण्डवोंसे उपासित होकर जिन कथाओंका प्रसंग किया था, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, नारद आदि सिद्ध महर्षि लोग और अन्धराज धृतराष्ट्र, धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और युद्धमें मरनेसे बचे हुए राजा लोग दूसरे दिन सवेरा होते ही कुरु पाण्डवोंके पितामह कुलधुरन्धर गंगानन्दन भीष्मके समीप गमन करके उन्हें आकाशभ्रष्ट सूर्य्यकी भांति शरशय्यापर शयन करते देखकर आक्षेप करने लगे। अनन्तर देवर्षि नारद मुनिने मुहूर्त भर तक चिन्ता करके युद्धमें मरनेसे बचे हुए राजाओं और पाण्डवोंसे बोले, देखो सूर्य्यके अस्त होनेकी भांति गंगानन्दन भीष्मका मृत्युकाल निकटवर्त्ती हुआ है, इससे तुम लोगोंको जो कुछ पूछना हो, उसे इस ही समय पूछ लो; क्योंकि इस समय महात्मा भीष्मने प्राण त्यागनेका सङ्कल्प किया है, इससे तुम लोग धर्म्म जिज्ञासामें प्रवृत्त होजाओ; ये चारों वर्णोंके धर्म्म विविध रूपसे जानते हैं। हे राजा लोगो! तुम लोग मेरा वचन चित्तलगाके सुनो, यह ज्ञान वृद्ध भीष्म अवश्य ही शरीर त्यागके परलोकमें गमन करेंगे; तुम लोगोंको जिस विषयमें संशय हो, वह इनसे पूछके अपनी शङ्का निवारण करो। राजा लोग नारद मुनिके वचनोंको सुनके सब कोई भीष्मके निकट उपस्थित हुए। परन्तु किसी विषयमें कुछ प्रश्न करनेमें समर्थ न हुए, वे सब कोई आपसमें एक दूसरेके मुखकी ओर देखने लगे। उस समय पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर हृषीकेश कृष्णसे बोले, हे देवकीनन्दन! हे मधुसूदन! हे यदुकुल भूषण! तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष पितामहके निकट प्रश्न करनेमें समर्थ होगा? हे भ्राता! हम सब लोगोंके बीच तुम ही पूर्णरीतिसे धर्म्म विषयके जाननेवाले हो, इससे पहिले तुम्हीं पितामहके समीप प्रश्न करो।

अनन्तर उस समय श्रीकृष्ण भगवान युधिष्ठिरके वचनको सुनके महात्मा भीष्मके निकट गमन करके यह वचन बोले, हे राजसत्तम! गत रात्रि तुमने सुखसे व्यतीत की है न? तुम्हारी बुद्धि भली भांति स्थिर तो है? हे पापरहित! तुम्हारा ज्ञान अच्छी प्रकार प्रकाशित तो है, तुम्हारा चित्त पीड़ासे कातर होकर व्याकुल तो नहीं है?

भीष्म बोले, हे वृष्णिनन्दन कृष्ण! कलह जो तुमने प्रसन्न होकर मुझे वरदान दिया, तभीसे मेरे शरीरसे मोह, थकावट, दाह खिन्नता, ग्लानि और सम्पूर्ण पीड़ा दूर होगई है। हे अच्युत! हे महातेजस्वी! तुम्हारे वरदानके प्रभावसे मैं भूत, वर्त्तमान और भविष्यत इन तीनों कालोंके सम्पूर्ण विषयोंको हाथमें स्थित फलकी भांति और वेदशास्त्रोंमें जो कुछ धर्म्म आदिक विषय वर्णित हुए हैं, उसे प्रत्यक्षकी भांति अवलोकनकर रहा हूं। हे जनार्द्दन! देश, जाति और कुलविषयक तथा महात्मा पुरुषोंके कहे हुए जो कुछ धर्म्म हैं, वह मेरे अन्तःकरणमें स्थित हैं। हे जनार्द्दन! तुम्हारी कृपासे मेरा मन कल्याण करनेवाली बुद्धिसे युक्त हुआ है, इससे सम्पूर्ण राजधर्म्म, ब्रह्मचर्य्य,

गृहस्थ, वाणप्रस्थ और सन्न्यास आदि चारों आश्रम सम्बन्धीय धर्म्मोंके जो कुछ उद्देश्य हैं, वे सब सुझे मालूम हुए हैं। जिन स्थलोंमें जो कुछ कहना उचित है, मैं उसी कहूंगा। अधिक क्या कहूं, तुम्हारे ध्यानके प्रभावसे मेरे शरीरमें फिर युवा अवस्थाके समान बल प्राप्त हुआ है; उससे अब मैं लोकहितकर धर्म्मकथाको कहनेमें समर्थ होऊंगा; परन्तु तुम किस कारणसे धर्म्मराज युधिष्ठिरको धर्म्मोपदेश नहीं करते हो! इस विषयमें तुम्हारा क्या विचार है, उसे शीघ्र मेरे समीप प्रकाशित करो।

अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र भीष्मका वचन सुनके उनसे बोले, हे कौरव! तुम कल्याण और कीर्त्तिका मूल कारण सुझे हो समझा, सत् और असत् भाव मुझसे ही प्रकट हुए हैं। देखिये यदि कोई चन्द्रमाको शीत-किरणवाला कहके प्रशंसा करे, तो कोई पुरुष इसमें आश्चर्य नहीं कर सक्ता। इसी भांति कृष्ण "कीर्त्तिपूर्ण हैं" कहके यदि कोई पुरुष मेरा गुण वर्णन करे तो इसमें कोई भी आश्चर्ययुक्त नहीं हो सक्ता। हे महातेजस्वी! मैंने इस पृथ्वीपर तुम्हारे यशको अधिक विस्तार करनेकी अभिलाषासे तुम्हें निर्म्मल बुद्धि प्रदान की है। जबतक यह पृथ्वी रहेगी, तबतक तुम्हारी यह अक्षय कीर्त्ति जगत्के बीच प्रकाशित रहेगी। हे भीष्म! तुम प्रश्नके अनुसार धर्म्मराज युधिष्ठिरको जो कुछ धर्म्मका उपदेश करोगे, वे सब तुम्हारे उपदेश वचन वेदवाक्यके समान जगतके बीच प्रमाणिक होंगे। जो पुरुष उस प्रमाणके अनुसार लोकयात्रा निर्व्वाह करेंगे, वे परलोकमें सम्पूर्ण पुण्यफलोंको भोगनेमें समर्थ होंगे। हे भीष्म! पृथ्वीमें किस प्रकार तुम्हारा यश विस्तार होगा इस विषयको विचार कर मैंने तुम्हें दिव्य बुद्धि प्रदान की है। इस पृथ्वीपर जबतक लोग किसी पुरुषके यशको गाया करते हैं, तबतक वह यश गान ही उसकी अक्षय कीर्त्तिका मल समझा जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे राजेन्द्र! कुरुक्षेत्रकी युद्धमें मरनेसे बचेहुए राजा लोग धर्म्म जिज्ञासु होकर तुम्हारे चारों ओर स्थित हैं; तुम इन लोगोंको राजधर्म्मोपदेश करो। तुम अवस्थामें सबसे बृद्ध वैदिक और लौकिक आचारोंसे युक्त और राजधर्म्म आदि सम्पूर्ण धर्म्मोंके जाननेवाले हो; जन्मसे आजपर्य्यन्त कोई पुरुष तुम्हारा कुछ भी पापाचरण नहीं देख सका; विशेष करके पृथ्वीके सम्पूर्ण राजा लोग तुम्हें सब धर्म्मोंका जाननेवाला समझते हैं, क्यों कि बाल्यावस्थासे ही तुमने देवता और ऋषियोंकी उपासना करी है; इससे जैसे पिता पुत्रोंको उत्तम नीति उपदेश करता है, वैसे ही तुम भी इन राजाओंको धर्म्मका उपदेश करो प्राचीन पण्डितोंने धर्म्मविषय ऐसा कहा है, कि धर्म्म जिज्ञासु होकर प्रश्न करे, तो उसे धर्म्मोपदेश करना उचित है इससे धर्म्म विषय सुननेके अभिलाषी राजाओंको उपदेश करना तुम्हारा कर्त्तव्य कार्य्य है। हे विद्वन्! धर्म्मजिज्ञासु पुरुषको उपदेश न करनेसे पापमें फंसना होता है; ऐसा ही शास्त्रोंमें वर्णित है; इससे तुम्हारे ये पुत्र तथा पौत्र लोग धर्म्मजिज्ञासु होकर जो कुछ प्रश्न करें, तुम प्रश्नके अनुसार ही उन लोगोंको धर्म्मोपदेश करो

५४ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर कौरवोंमें मुख्य महातेजस्वी भीष्म यह वचन बोले, हे गोविन्द! तुम सब प्राणियोंके नित्य आत्मस्वरूप हो; तुम्हारी कृपासे मेरा वचन और मन दृढ़ हुआ है; इससे मैं प्रसन्नताके सहित धर्म्मकथा कहूंगा; परन्तु कोई धर्म्मात्मा पुरुष धर्म्मविषयमें मुझसे प्रश्न करे, तो मैं प्रीतिपूर्व्वक धर्म्मविषयको व्याख्या करूंगा। जिस धर्म्म-

शील महात्मा पुरुषके जन्म लेनेपर वृष्णि लोग आनन्द सागरमें मग्न हुए थे ; वह पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर मुझसे प्रश्न करें। यशस्वी, धर्मचारी कौरवोंके बीच कोई भी जिसके समान नहीं है; धृति, दम, ब्रह्मचर्य्य, क्षमा, धर्म, तेज, और बल जिसमें सदा विद्यमान रहता है; जो सम्बन्धी, सेवक, अतिथि और आश्रितोंको यथा-योग्य आदरके सहित सम्मानित करते हैं; सत्य, दान, तपस्या, वीरता, शान्ति, दक्षता और सावधानता आदि सम्पूर्ण धर्म जिसमें सदास-र्वदा विराजमान रहते हैं, जो धर्मात्मा काम, क्रोध, भय, लोभ और अर्थके वशमें होकर कदापि अधर्म कार्य्योंमें प्रवृत्त नहीं होते; जो सत्य, क्षमा और ज्ञान विषयमें सदा दृढ़ताके सहित स्थित रहते हैं; जो यज्ञ, अध्ययन, धर्म और शान्तिमार्गमें सर्व्वदा रत रहते हैं, जिन्होंने धर्मके सम्पूर्ण रहस्योंको सुना है; वही पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर मुझसे धर्म विषयमें प्रश्न करें।

भीष्मका इतना वचन सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे कौरव शिरोमणि! धर्म्मराज युधिष्ठिरने गुरु आदि पूज्य पुरुषों और सेवक, सम्बन्धी, ब्रह्मवादी भक्त और माननीय पुरुषोंका कुरुक्षेत्रके युद्धमें वध किया है; इसी कारण अत्यन्त लज्जित होकर शापके भयसे भयभीत हुए हैं; इसीसे वह तुम्हारे सम्मुख आनेमें समर्थ नहीं होते हैं; क्यों कि जिन लोगोंका नाना भांतिकी वस्तुओंसे सम्मान करना उचित था, उनके शरीरका अस्त्रोंसे छेदन किया है; इस ही निमित्त धर्म राज युधिष्ठिर तुम्हारी दृष्टिके सम्मुख नहीं स्थित होसकते हैं।

भीष्म बोले, हे कृष्ण! जैसे ब्राह्मणोंके निमित्त दान, अध्ययन और तपस्या ही धर्म है वैसे ही क्षत्रियोंके निमित्त युद्धमें शत्रुओंके शरीरको अस्त्रोंसे छेदन करना ही धर्म है। पिता, पितामह, भ्राता, गुरु, सम्बन्धी आदिक कोई क्यों न हों यदि वे लोग निरर्थक आके युद्धमें प्रवृत्त हों, तो उस ही समय उनका वध करना उचित है, क्यों कि यही क्षत्रियोंका धर्म है, शास्त्रोंमें ऐसा ही वर्णित है। हे कृष्ण! जो नियम उल्लङ्घन करनेवाले, लोभी अत्याचारी गुरुका युद्धभूमिमें वध करते हैं, वेही धर्मात्मा क्षत्रिय हैं। जो पुरुष लाभके वशमें होकर सनातन धर्म मार्गको उल्लङ्घन करते हैं, उनके मारनेवाले क्षत्रिय ही धर्मात्मा कहे जाते हैं। जो युद्धमें प्रवृत होकर इस पृथ्वीको रुधिररूपी जल, केशरूपी तृण, हाथी रूपी पर्वत और ध्वजा पताका रूपी वृक्षोंसे परिपूरित करनेमें समर्थ हैं; वेही धर्मात्मा क्षत्रिय कहे जाते हैं। युद्धमें आह्वान करनेपर अपना आत्मीय और पराया विचार न करके श्रेष्ठ क्षत्रिय पुरुषोंको उनके संग युद्धमें प्रवृत्त होना उचित है; क्योंकि भगवान मनुने धर्म युद्धको क्षत्रियोंके निमित्त इस लोक और परलोकमें कल्याण दायक कहके वर्णन किया है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, धर्मराज युधिष्ठि-रने भीष्मका वचन सुनके अत्यन्त विनीत भावसे उनके दृष्टिके सम्मुख उपस्थित होकर उनके दोनों चरणोंको छूके उन्हें प्रणाम किया। तब सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंमें अग्रणी भीष्मने उनका मस्तक सूंघके उन्हें आनन्दित किया। अनन्तर महातेजस्वी भीष्म युधिष्ठिरको बैठनेकी आज्ञा देकर यह वचन बोले, हे कुरुकुल तिलक! हे तात! तुम कुछ भी शङ्का मत करो, तुम निर्भ-यताके सहित शुद्ध चित्तसे मेरे समीप प्रश्न करो।

५५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर धर्मराजयुधिष्ठिरने हृषीकेश कृष्ण और भीष्मको

प्रणाम करके उस स्थलमें स्थित गुरुजनोंको अनुमतिसे प्रश्न करना आरम्भ किया। हे पितामह। धर्म्म जाननेवाले पुरुष राजधर्म्मको ही परमधर्म्म समझते हैं और मैं भी उसके भारको ग्रहण करना अत्यन्त कठिन समझता हूं; इससे आप विशेष करके राजधर्म्मका ही वर्णन करिये राजधर्म्म ही सम्पूर्ण प्राणियोंके जीवनका अवलम्ब रूप है; क्यों कि धर्म्म, अर्थ, काम ये त्रिवर्ग और मोक्षधर्म्म ये सब पूर्णरीतिसे राज धर्म्मसे ही सिद्ध होसकते हैं। जैसे घोड़को लगाम और हाथियोंको अङ्कुश नियममें स्थित रखता है, वैसे ही राज्यधर्म्म ही सम्पूर्ण प्राणियोंको यथायोग्य नियमोंमे स्थित रखता है। यदि राज-ऋषियोंसे सेवित राजधर्म्ममें पुरुषोंको मोह उपस्थित होवे, तो सम्पूर्ण नियम तितर बितर होजाते है और उससे सम्पूर्ण प्रजा इकबारगी व्याकुल होजाती है। जैसे सूर्य्य उदय होकर महाघोर अन्धकारको नष्ट कर देते है. वैसे ही राजधर्म्मसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी अशुभ गति निवारित होती है। हे पितामह! आप इस भरतकुलमें तथा सम्पूर्णधर्म्म जाननेवाले पुरुषोंमे अग्रगण्य हैं, इससे पहिले मुझे राज धर्म्मका उपदेश कीजिये। हे शत्रुनाशन! जब कि श्रीकृष्ण भी आपका परमज्ञानी समझते है, तो आपके निकट धर्म्म उपदेश सुनना ही हम लोगोंके निमित्त कल्याणकारी है

भीष्म बोले, मैं उस महत् धर्म्मको नमस्कार करके नित्य धर्म्मकी व्याख्या करूंगा। 'हे तात युधिष्ठिर! मैं सम्पूर्ण रूपसे राजधर्म्मका निश्चय करके कहता हूं, तुम चित्त लगाके पूर्ण रीतिसे राज्यधर्म्म तथा अन्य धर्म्म भी जिसके सुननेकी तुम्हारी इच्छा हो। मुझसे सुनो। राजा क्षत्रिय न होनेपर भी प्रजाके अनुरागपात्र होनेके निमित्त शास्त्रविधिके अनुसार देवता, ब्राह्मणोंमें श्रद्धा और भक्ति प्रकाश करे। राजा देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे उनसे अऋणी होकर सम्पूर्ण प्रजाका श्रद्धाभाजन होता है। हे पुत्र युधिष्ठिर! तुम सदासर्व्वदा पुरुषार्थके निमित्त यत्न करना, पुरुषके उद्योगके बिना केवल दैवके आसरे राजाओंके कार्य्य नहीं सिद्ध होसकते; भाग्य और पुरुषार्थ समान होनेपर भी मैं पुरुषार्थको श्रेष्ठ समझता हूं; क्यों कि पुरुषार्थ लोगोंको प्रत्यक्षही फल देता है और भाग्य भी किये हुए पूर्व्व पुरुषार्थका फल मात्र है। पुरुषार्थ करनेसे यदि आरम्भ किये हुए कर्म्मोंकेफल सिद्ध न होवें, तो पुरुष लोकापवादसे, और फल सिद्ध होनेसे दुःखोंसे मुक्त होसकता है। हे कुरुकुलश्रेष्ठ! यदि दैवो संयोगसे आरम्भ किया हुआ कर्म्म निष्फल होजावे, तौभी मनमें कदापि दुखित होना नहीं चाहिये; फिर द्विगुणित यत्नके सहित उसे सिद्ध करनेके निमित्त कार्य्यमें प्रवृत्त होना उचित है; क्यों कि यही राजाओंकी परम नीति है। परन्तु सत्य जिस प्रकार राजाओंके कार्य्यको सिद्ध करनेवाला है, वैसा दूसरे किसी यत्नसे भी राजाओंके कार्य्य सिद्ध नहीं हो सकते; सत्यमें तत्पर रहनेवाले राजा इस लोक और परलोकमें परम आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। हे राजेन्द्र! सत्य ऋषियोंका भी परम धन है और राजाओंका भी विश्वास उत्पन्न करानेका कारण सत्यके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है. गुणवान, शीलयुक्त, दयावान, सत्यवादी धर्म्मनिष्ठ, जितेन्द्रिय, प्रजाके ऊपर प्रीति करनेवाले उदार राजा कदापि श्रीभ्रष्ट नहीं होते।

हे कुरुनन्दन! अपने छिद्रोंको छिपाना और पराये छिद्रको अन्वेषण करते हुए अपने विचारोंको गुप्त रखना और न्यायके अनुसार विचार पूर्व्वक समस्त कार्य्योंमें सरलता अवलम्बन करना चाहिये। राजाके मृदुभाव अवलम्बन करनेसे सम्पूर्ण प्रजा उसके नियमोंको अतिक्रम करती है और कठोर भाव

ग्रहण करनेसे सब कोई उससे भयसे व्याकुल होते हैं; इससे तुम्हें यथा योग्य कोमलता और कठोरता दोनों ही अवलम्बन करना उचित है। हे पाण्डुपुत्र उदारबुद्धि युधिष्ठिर! तुम कदापि ब्राह्मणोंको दण्ड विधान मत करना; क्यों कि इस लोकमें तपके प्रभावसे ब्राह्मण ही सम्पूर्ण पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं। हे राजेन्द्र! मनुभगवानने इस विषयमें दो श्लोक कहे हैं, तुम्हें निज धर्म्मविषयमें उन दोनों श्लोकोंको हृदयङ्गम करना उचित है। "जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय और पत्थरसे लोहा उत्पन्न हुआ है; इससे उनका तेज सम्पूर्ण स्थानोंमें पूर्ण होनेपर भी स्वयोनिमें शान्त होजाता है। जिस समय लोह पत्थरको विदीर्ण करता है अग्नि जलको सुखाती है, क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे द्वेष करते हैं; उस समय वे शीघ्र ही तेजभ्रष्ट होके नष्ट होते हैं।" हे राजेन्द्र! इससे ब्राह्मण लोग सदा प्रणाम करने योग्य हैं; श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग पूर्ण रीतिसे पूजित होनेसे वेद और यज्ञोंको धारण करते हैं।

हे भरतर्षभ! जो पुरुष ब्राह्मणोंके योग्य सम्मान लाभकी अभिलाषा करे, उन्हें बाहु-बलके सहारे पराजित करके दण्ड देना उचित है। हे तात! पहिले समयमें महर्षि शुक्राचार्य्यने जो श्लोक कहा था, उसे तुम चित्त लगाके सुनो। "वेदवेदान्त जाननेवाला ब्राह्मण यदि शस्त्र ग्रहण करके युद्धभूमिमें आगमन करे, तो धर्म्मात्मा राजा शस्त्र आदिकोंके प्रभावसे उसे बांधके कैद करे, परन्तु कदापि उसका बध न करे, जो आततायी पुरुषोंसे नष्ट होते हुए धर्म्मकी सब भांतिसे रक्षा करते हैं, वेही धर्म्म जाननेवाले धर्म्मात्मा राजा कहाते हैं; आततायी पुरुषोंका बध करनेसे पाप नहीं होता। आततायीका क्रोध ही दूसरेको उत्तेजित करके अपना नाश कराता है, इससे आततायीके मारनेसे पाप नहीं होता। हे नरनाथ! ब्राह्मणोंकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये, ब्राह्मण यदि अपराध करे, तो उसे राज्यसे बाहर करना चाहिये; परन्तु प्राण नाश करना उचित नहीं है। हे प्रजानाथ! ब्राह्मण यदि परस्त्रीके सङ्ग अभिचार दोषसे अपवाद युक्त होवे, तौभी उसके ऊपर कृपा प्रकाश करना कर्त्तव्य है। ब्रह्महत्या, विमाता सहवास और भ्रूणहत्या आदि तीन प्रकारके पापग्रस्त तथा राजद्रोही होने पर उसे निजराज्यसे बाहर करना उचित है; परन्तु बेत-कोड़ोंकी चोटसे उसके शरीरको पीड़ित करना वा शारीरक दण्ड देना उचित नहीं है। जो लोग ब्राह्मणोंमें भक्ति करते हैं, उन्हें ही प्रिय समझके निज कार्य्योंमें नियुक्त करना चाहिये, क्यों कि राजाओंके चाहे कितनाही धन रत्नसे युक्त खजाना क्यों न होवे, ब्राह्मण भक्त पुरुषोंके संग्रहकी अपेक्षा कोई भी कोष उत्तम नहीं कहे जा सकते! महाराज! पण्डित लोग मरु, (बालुकामय स्थान) जल, भूमि वन, पर्व्वत और मनुष्य आदि छः और बाकी सब भांतिके दुर्ग किलासे) मनुष्य दुर्गको ही श्रेष्ठ कहके वर्णन करते हैं; इससे बुद्धिमान राजाओंको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंको प्रजाके ऊपर दया प्रकाशित करनी उचित है। राजाके धर्म्मात्मा और सत्यवादी होनेसे सम्पूर्ण प्रजा उस पर अनुरक्त होती है। हे पुत्र! तुम सब जातिकी प्रजा समूहके विषयमें क्षमा प्रकाशित न करना, क्यों कि राजा क्षमाशील हाथीके समान मृदुस्वभाव युक्त होनेसे धर्म्म विरोधी कहे जाते हैं। महाराज! इस विषयमें वृहस्पति प्रणीत शास्त्रमें जो श्लोक कथित है, उसे मैं वर्णन करता हूं, चित्त स्थिर करके सुनो! जैसे महावत क्षमाशील हाथीके मस्तकपर ही चढ़नेकी इच्छा करता है, वैसे ही राजाके क्षमाशील होनेपर नीच पुरुष उसकी आज्ञाको उलङ्घन करके मनमाना कार्य्य करते

हैं ; इससे जैसे वसन्त ऋतुके सूर्य्य अत्यन्त शीतल और प्रचण्ड किरणधारी तथा बहुत तेजस्वी नहीं होते, वैसे ही राजाको भी सदा अत्यन्त कठोर भाव अवलम्बन करना उचित नहीं है। महाराज! प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम आदि प्रमाणोंसे शत्रु-मित्रोंकी सदा परीक्षा करनी उचित है। हे राजेन्द्र! तुम मृगया आदि सम्पूर्ण व्यसनोंकी परित्याग करो ; परन्तु एकबारगी परित्याग न करके केवल मात्र उसमें आसक्ति रहित होना ही उचित है। क्योंकि व्यसनोंमें फंसे हुए पुरुष सदा कुत्सित होते हैं। राजा यदि प्रजाद्रोही होवे, तो राजा प्रजामें विरोध बढ़ता है ; इससे गर्भ धारण करनेवाली माता जैसे गर्भस्थित बालकके निमित्त व्यवहार करती है ; वैसे ही राजाको भी प्रजाको पालन करना योग्य है। महाराज! जिस कारणसे ऐसी उपमा दीगई है, उसे सुनिये जैसे गर्भधारिणी माता अपने इच्छानुसार निज इष्ट वस्तुओंको त्यागके भी गर्भस्थ बालकके कल्याणकी चेष्टा करती है, उसी भांति प्रजा समूहके मङ्गलकी इच्छासे राजाको भी कार्य्य करना उचित है। हे कुरुनन्दन! जिन कार्य्योंके करनेसे प्रजाका कल्याण हो, अपने मनकी अभिलाषा त्यागके भी सदा उस ही धर्म्मका अनुगामी होना चाहिये। हे पाण्डुनन्दन! तुम कभी धीरज रहित मत होना, क्योंकि राजाके धीर और दण्डधारी होनेसे उसे कहीं भय उपस्थित नहीं होता। हे राजशार्दूल! सेवकोंके सङ्ग सदा परिहास करना उचित नहीं है ; क्योंकि उससे जो दोष उत्पन्न होते हैं, मैं उन्हें वर्णन करता हूं। उपजीवी सेवकोंके सङ्ग सदा सहवास करनेसे वे लोग स्वामीका पूर्णरीतिसे सम्मान नहीं करते ; मर्य्यादा अतिक्रम करके स्वामीकी आज्ञा उल्लङ्घन करते हैं ; कार्य्योंके विचारके समय सम्पूर्ण कार्य्योंमें संशय उत्पन्न करते, गोपन करने योग्य छिद्रोंको प्रकाशित कर देते हैं ; जो वस्तु मांगने योग्य नहीं हैं, उन्हें भी मांगते हैं ; राजाके सम्मुखमें ही उसके भोजनकी वस्तुओंको खाते और उसके ऊपर क्रोध कर राजाकी शुद्धिसे भी अपनी बुद्धिकी अधिकता प्रकाशित करते हैं। महाराज! अधिक क्या कहा जावे, वे लोग राजशासन अतिक्रम करके लोगोंसे घूस लेकर राजाके समीप उनके मिथ्या गुण दोषोंको वर्णन करके सम्पूर्ण कार्य्योंको नष्ट कर देते हैं ; कृत्रिम आज्ञापत्र बनाके राज अधिकृत देशोंको निःसार करते हैं ; राजा जैसा वस्त्र पहिनता है, वे लोग भी वैसे ही वस्त्रोंको पहनके राजाको समानता करते और अन्तःपुरवासिनी स्त्रियोंके ऊपर आसक्त होकर क्रमसे अन्तःपुरके बीच प्रवेश करने की भी इच्छा करते हैं। हे राजशार्दूल! वैसे सेवक लोग ऐसे निर्लज्ज होजाते हैं, कि राजाके सम्मुखमें ही वायु करने योग्य वस्तुओंको ग्रहण करके अपने शरीरपर वायु करते और राजाके अत्यन्त गुप्त विषयोंको भी दूसरेके निकट प्रकाशित कर देते हैं। राजाके मृदु स्वभाव और परिहास युक्त होनेसे उपजीवी सेवक लोग राजाका अनादर करके उनके समान ही घोड़े, हाथी और रथोंपर चढ़नेकी अभिलाषा करते हैं। वे लोग सुहृद पुरुषोंसे युक्त सभाके बीचमें ही राजाको कहा करते हैं, हे राजन्! आप इस कार्य्यको करनेमें समर्थ न होंगे और यह आपको दुरभिसन्धि है। राजाके क्रोध करने पर वे लोग हंसी करते और यदि राजा सत्कार करे, तो उस समय वे लोग उसे गोपन करके अन्य कारणोंसे हर्षित होते हैं। वे लोग खिलवाड़की भांति राजाज्ञाकी अवज्ञा करके उसके दुष्कर्म्मोंको प्रकाशित करते और मन्त्रणा तथा विचारको भेदकर दूसरेके निकट प्रकाशित कर देते हैं।

५६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! राजाको सदा उद्यमशील होना उचित है; क्योंकि राजा स्त्रियोंकी भांति उद्यम रहित होनेसे प्रशंसा प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। हे चत्री धर्म्मयुक्त महाराज! इस विषयमें भगवान भृगुनन्दनने जो श्लोक कहा है, उसे मैं कहता हूं। जैसे सर्प बिलमें रहनेवाले चूहे आदि जन्तुओंको ग्रास करता है, वैसे ही भूमि विरोध रहित राजाको और जो वेदाध्ययनके निमित्त देशान्तरोंमें गमन नहीं करते, वैसे ब्राह्मण वा यतीको ग्रास करती है, अर्थात् वैसे राजा और ब्राह्मण शीघ्र ही नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं हे पुरुषसिंह! मेरा यह उपदेश तुम्हारे अन्तःकरणमें सदा बिराजमान रहे, अर्थात् जिसके सङ्ग सन्धि करना उचित है, उसके सङ्ग सन्धि करे और जिसके साथ विरोध करना योग्य है, उससे विरोध करे। जो स्वामी, अनुयायी सेवक सुहृदमित्र काष राष्ट्र, किला और बल इन सप्ताङ्ग युक्त राज्य अथवा इसमें किसी एक अङ्गके सङ्ग विरुद्ध आचरण करे, तो मित्र अथवा गुरु होने पर भी उसका प्राणनाश करना उचित है। हे राजेन्द्र! इस विषयमें बृहस्पतिमतके अनुसार मरुतराजने राजाओंके कर्त्तव्य कर्म्ममें एक श्लोक कहा था, उसे सुनो। गुरु कार्य्याकार्य्य बिवेकसे हीन, गर्व्वित और कुमार्गी हो, तो उसे राज्यसे निकाल देना चाहिये। महाराज! पहिले समयमें सगर पुत्र असमञ्जा पुरवासियोंके बालकोंको बल पूर्व्वक सरयू नदीमें डुबा देता था, इसी कारण बाहुपुत्र बुद्धिमान सगरने पुरवासियोंके हितकी अभिलाषासे अपने जेष्ठ पुत्र असमञ्जाको निन्दा करके उसे राज्यसे निकाल दिया था। महातपस्वी श्वेतकेतु आतिथि सत्कार करूंगा कहके बृथा निमन्त्रण कर आता था, इस ही कारण पिताके प्रियपात्र होनेपर भी उसके पिता उद्दालक मुनिने उसे परित्याग किया था। इससे सदा प्रजा रञ्जनमें प्रवृत्त रहना, सत्यकी रक्षा और प्रजापालन ही राजाओंका सनातन धर्म्म है। पराये धनके वास्ते लोभ करना राजाको योग्य नहीं, सेवकोंको यथा समय पर वेतन प्रदान करना उचित है। महाराज! राजा लोग सत्यवादी क्षमाशील और पराक्रम युक्त होनेसे ही निर्द्दिष्टमार्गसे बिचलित नहीं होते। जिसने क्रोध और मनकी बृत्तियोंको वशीभूत किया है, शास्त्रमें कहे हुए बचनोंमें जिसे अविश्वास नहीं है; जो सदा धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुवर्गोंमें रत रहते हैं, जिनके बिचारको दूसरे पुरुष नहीं जान सकते; ऐसी बिविध शक्तिसे युक्त पुरुष ही राजा होने योग्य हैं। हे राजन! साधारण पुरुषोंके निकट मन्त्रणा प्रकाशित होनेकी अपेक्षा राजाओंको इससे बढ़के और दूसरा कोई भी सङ्कट नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके धर्म्मको रक्षा करना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है; क्योंकि धर्म्म शङ्कर होनेसे प्रजाको बचाना ही राजाओंका सनातन धर्म्म है। यद्यपि किसीका विश्वास न करके स्वजनोंका विश्वास करना ही राजाओंको उचित है, तथापि उन लोगोंके विषयमें भी पूर्ण रीतिसे विश्वास करना अनुचित है। राजा निज बुद्धिसे बलवानके सङ्ग सन्धि करे, अपने समान पुरुषके साथ विग्रह, अपनेसे निर्ब्बल राजाओंके दुर्ग आदिको आक्रमण करना और स्वयं निर्ब्बल होनेसे निज दुर्गके आसरे निवास करना इत्यादि राजनीतिके परिणाम रूपी फल जय और पराजयका बिचार करके कार्य्य करे, जो राजा अपने छिद्रोंको गोपन करके शत्रुओंके छिद्रोंको देखता है, वह धर्म्म, अर्थ और काम इन त्रिवर्गोंके यथार्थ तत्वको जानता है। जो यथा योग्य स्थानोंमें जासूसोंको नियुक्त करके शत्रुपक्षीय सेवकोंके बीच धन देकर भी उन लोगोंके बीच भेद उत्पन्न करा

सकता है; वह सबके निकट प्रशंसा प्राप्तके योग्य है। यमराजके समान प्रभावशाली, और सद्विचारक, कुवेरके तुल्य कोष सञ्चयमें रत नाश और वृद्धिजनक कार्य्योंके अवस्था विशेषके गुण दोषोंको मालूम करना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य है। राजा भूखोंको भोजन देनेवाला, सखी पुरुषोंके तत्वोंको जाननेवाला, वृद्धोंका उपासक, आलसरहित, लोभहीन और प्रसन्न चित्तवाला होवे। महाराज! सदा प्रसन्न रहना साधु पुरुषोंके गमन करने योग्य मार्गसे विचरण करना और प्रजासमूहके संग हंसके प्रसन्नता सहित उन्हें आनन्दित करना राजाका कर्त्तव्य कर्म्म है। साधु पुरुषोंसे कर लेना उचित नहीं है, वरन दुष्ट पुरुषोंके धनको छीनके साधुओंको दान करना उचित है। राजाको युद्धविद्यामें निपुण, यथा समयमें दान देनेवाला, शुद्धाचारी जितेन्द्रिय, यथा समयपर भोजन करनेवाला तथा मनोहर भूषणोंको धारण करनेवाला होना चाहिये, जो सब मनुष्य शूरवीर, स्वामी-भक्त, रोगहीन उत्तम शिष्टाचार और परिवार-युक्त, विद्वान, धार्म्मिक, साधु और स्थिरस्वभाव-वाले हैं; जो दूसरेसे प्रतारित नहीं होते, किसीको अवमानना नहीं करते, सब लोगोंके चरित्रोंको जानते परलोकको मानते और ऐश्वर्य्यको अभिलाषा करते हैं; राजा वैसे ही पुरुषोंको अपना सहायक बनाकर उनके संग समान भावसे विषयादिकोंको भोगे; केवल मात्र छत्रधारण और राजाज्ञाप्रचार करनेमें ही राजाको उन लोगोंसे अधिकता रहती है। महाराज! प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकारकी वृत्तिका समभावसे परीक्षा करके कार्य्यमें प्रवृत्त होनेसे राजाको दुखभागी नहीं होना पड़ता। राजा यदि किसीका भी विश्वास न करे, अथवा लोभके वशमें होकर दूसरेकी वृत्तिमें व्यर्थ दोष लगाके उसके धनको हरण करे, तो उसके स्वजन पुरुष थोड़े ही समयमें उसका नाश कर देते हैं, जो शुद्धचरित्रवाले राजा सदासर्व्वदा प्रजा-समूहको आनन्दित करनेमें प्रवृत्त रहते हैं, वह कभी भी शत्रुओंसे पराजित होके स्थान-भ्रष्ट नहीं होते; यदि शत्रुओंसे पराजित भी होवें; तौभी वह शीघ्र ही निज पदपर फिर प्रतिष्ठित होते हैं। राजा यदि क्रोधहीन मृदु दण्ड देनेवाला, जितेन्द्रिय होके मृगयादिक व्यसनोंमें आसक्त न होवे, तो वह हिमालयके समान स्थिर होकर सम्पूर्ण प्रजाका विश्वास पात्र होता है। जो राजा बुद्धिमान, दानशील, धर्म्मात्मा, पराये छिद्रोंका अनुसन्धान करनेवाला प्रसन्नमुख, चारों वर्णोंका यथा नियमोंमें स्थित करनेवाला, क्रोधरहित, मनस्वी, क्रियावान, आत्मश्लाघा रहित होकर योगाभ्यासमें रत रहता है; और जिसके सेवक लोग भी क्रोधरहित चित्तसे राजकार्य्योंमें तत्पर रहते तथा जिसके अनुष्ठित कार्य्य निर्व्विघ्नताके सहित समाप्त होते हैं; वह राजसत्तम कहाता है। जैसे पुत्र पिताके गृहमें निर्भयचित्तसे निवास करते हैं, वैसे ही जिसके राज्य में सम्पूर्ण मनुष्य निर्भयताके सहित सब स्थानोंमें भ्रमण करते हैं; वह भी राजसत्तम कहा जाता है। जिसके पुरवासी प्रजा ऐश्वर्य्यशाली और निज धर्म्मोंमें तत्पर रहती है, उसे ही राजोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ कहा जाता है। और जिसके राज्यभरकी सब प्रजा राजाके वशमें स्थिर, नीतिनिपुण राजाज्ञाकी पालन करनेवाली ऐश्वर्य्ययुक्त और दान धर्म्ममें रत रहके यथा रीतसे पालित और शासित होकर आपसमें विरोध न करके निज निज कर्त्तव्य कर्म्मोंमें तत्पर रहती है; वही राजा श्रेष्ठ गिना जाता है। जिस राजाके राज्यमें चोरी, डकैती, माया, मत्सर और अधर्म्म आदि नहीं होते, वह सनातन धर्म्मको पालन करनेवाला राजा उत्तम फलोंको प्राप्त करता है। जो ज्ञानवान पण्डितोंका आदर करते, शास्त्रोंको पढ़ते और पुरवासी तथा

सम्पूर्ण प्रजाके हितमें तत्पर रहते हैं, वैसे श्रेष्ठ मार्गसे गमन करनेवाले दानशील पुरुष ही राजा होनेके योग्य हैं शत्रुलोग जिसके दूतोंको मिलाके राजाके विचारोंको नहीं जान सकते, वह राजा ही राजत्व लाभ करनेके योग्य है। हे राजेन्द्र! महात्मा भृगुनन्दन शुक्राचार्य्यने पहिले समरमें रामचरित्रोंको वर्णन करते हुए एक श्लोक कहा था, "प्रजाको चाहिये कि राजाको ही सबसे श्रेष्ठ समझके उसकी रक्षा करें, तिसके अनन्तर भार्य्या और धनकी रक्षामें यत्नवान होवे, क्यों कि राजाके न रहने पर उसकी भार्य्या कहां रहेगी, और धनकी रक्षा भी किस प्रकार हो सकती है; इससे सब लोगोंको सब भांतिसे राजाकी रक्षा करना ही कर्त्तव्य है, इसी प्रकार राज्यकी अभिलाषा करनेवाले राजाकी भी प्रजाकी रक्षाके अतिरिक्त सनातन धर्म दूसरा नहीं है; क्योंकि उनकी रक्षा ही प्रजाको प्रसन्न करनेका मूल कारण है।" हे राजेन्द्र! राजधर्मके विषयमें प्राचेतस मनुने जो दो श्लोक कहे हैं; मैं उन दोनों श्लोकोंको उदाहरण स्वरूपसे वर्णन करता हूं,— मनुष्योंको उचित है, कि उपदेश न करनेवाले गुरु, वेदपाठ तथा अध्ययन हीन पुरोहित, रक्षा न करनेवाले राजा, अप्रिय वचन बोलने वाली भार्य्या, ग्राममें अभिलाषा करनेवाले अहीर और वनवासकी इच्छावाले नाईको इस प्रकार त्याग देवे, जैसे नावपर चढ़नेवाले पुरुष टूटी नौकाको त्याग देते हैं।

५७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इन्द्ररक्षित की भांति प्रजाकी रक्षा करना ही राजधर्मका सार है, क्योंकि भगवान् बृहस्पतिने इसके अतिरिक्त दूसरे किसी धर्मकी प्रशंसा नहीं की है। हे धार्मिक पुरुषोंमें अग्रणी युधिष्ठिर! भगवान् विशालाक्ष, महा तपस्वी शुक्राचार्य्य सहस्र नेत्रवाले इन्द्र, भगवान भरद्वाज और गौरशिरा मुनि आदि धार्मिक पुरुष लोक रक्षारूपी राजधर्म की ही प्रशंसा किया करते हैं। हे युधिष्ठिर! इस समय लोकरक्षा विषयक सम्पूर्ण युक्तियोंको सुनो। यथा नियम पूर्व्वक जासूसोंको नियत करना, दूत भेजना समयानुसार दान और मत्सर रहित पुरुषोंसे उत्तम युक्ति ग्रहण करना, दुष्ट उपायके सहारे प्रजासे कर संग्रह न करना, सत्यवादी होना समयके अनुसार वीरता और कार्य्यदक्षता प्रकाशित करनी, प्रजाके हित साधनमें तत्पर रहना, सरल वा कुटिल उपायका अवलम्बन करके शत्रुपक्षके मनुष्योंके बीच मतभेद कराना, साधु पुरुषोंको संग्रह करना, पुराने और टूटने योग्य मकानोंका निरीक्षण करके उन्हें दृढ़ करनेका यत्न, शारीरिक और अर्थदण्डको यथासमय पर प्रयोग करना, साधु और उत्तम कुलोंमें उत्पन्न हुए पुरुषोंका परित्याग न करके उन्हें यथा योग्य कार्य्योंपर नियुक्त करना, जिन्हें संग्रह करना, योग्य है उन पुरुषोंको संग्रह करना, बुद्धिमानोंकी सेवा, सेनाके पुरुषोंको उत्साहित करना, सदा प्रजाकी अवस्थाको देखते रहना, कोष बढ़ाना, कार्य्यमें ढीलापन न करना, प्रहरियोंका विश्वास न करके स्वयं निज राज्यकी प्रजाओंका अनुसन्धान लेते रहना, अन्य पुरुषोंसे पुरवासी प्रजा और राजसेवकोंके बीच भेद उत्पन्न करा देना, गुप्तरीतिसे शत्रुओंके निकटमें स्थित मित्रोंके यथार्थ तत्वको निश्चय करना स्वयं अन्तःपुरकी ओर दृष्टि रखना, भृत्योंका इकबारगी विश्वास न करना, शत्रुओंको धीरज देना और उनकी अवज्ञा न करनी, दुष्ट पुरुषोंका सङ्ग न करना; और सदा उद्योगी होकर नीतिमार्गका अनुगामी होना राजाका कर्त्तव्य कार्य्य हैं। बृहस्पतिराजाओंके निमित्त उद्योगको ही राजधर्मका मूल

कहा, है। हे युधिष्ठिर ! इस विषयोंमें मैं एक प्राचीन श्लोक कहता हूं उसे सुनो, देवताओंने उद्योगसे अमृत लाभ करके असुरोंको मारा था; और इन्द्र अपने उद्योगसे ही तीनों लोकोंके बीच विख्यात होके स्वर्गलोकके राजा हुए हैं। उद्योगी पुरुष पण्डितोंके ऊपर भी आधिपत्य करते और पण्डित लोग स्तुति आदि वचनोंसे उन्हें प्रसन्न करते हुए उनकी उपासना किया करते हैं। राजा बुद्धिमान होनेपर भी उद्योगरहित होनेके कारण विषरहित सर्पकी भांति अपने शत्रुओंसे पराजित होता है। और निर्ब्बल शत्रुकी भी अवज्ञा करनी बलवान पुरुषको कदापि उचित नहीं है, क्यों कि आग तनिक भी होनेसे भस्म करती और थोड़ा सा विष भी प्राण नाश कर सकता है। शत्रु हाथी घोड़े आदि सब अङ्गोंमेंसे एक अंग मात्र लेकर ही दुर्गमें आश्रय ग्रहण करनेपर और समृद्धिमान श्रेष्ठ राजाके सम्पूर्ण देशोंको पीड़ित कर सकता है। राजाको उचित है, कि अपने गोपनीय वचन, शत्रु विजयके निमित्त सेना संग्रह, शारीरिक और मानसिक कुटिलता तथा जो कुछ हीन कार्य्य करे, सम्पूर्ण मनुष्योंके निकट सरलता प्रकाशित करके उन कर्म्मोंको यत्नपूर्व्वक गोप न करे। मनुष्य संग्रह करनेवाला राजा सदा धर्म्माचरणमें प्रवृत्त रहे; क्योंकि दुष्टस्वभाववाले पुरुष कदापि विशाल राज्यकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते। हे युधिष्ठिर ! इसी प्रकार अत्यन्त दयालु पुरुष भी राज्यकी रक्षा नहीं कर सक्ता और सरल प्रकृति अवलम्बन करनेसे भी राज्यकी रक्षा नहीं होसकती। इससे सरलता और कठोरता युक्त दोनों ही वृत्तियोंको अवलम्बन करना चाहिये। यदि इस नियमसे प्रजाकी रक्षा करनेमें राजाको विपत्ति भी उपस्थित होवे, तोभी इस ही नीतिसे गमन करना उसका सनातन मार्ग है, क्यों कि ऐसी वृत्ति अवलम्बन करना ही राजाका कर्त्तव्य कर्म्म है। हे कुरुनन्दन ! यह सामान्य रूपसे राजधर्म्मका कुछ अंश वर्णित हुआ है; अब तुम्हें जिन विषयोंमें सन्देह होवे, उसे मेरे समीप प्रकाशित करो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर भगवान व्यासदेव, देवस्थान, अश्व, श्रीकृष्ण, कृपाचार्य्य, सात्यकि और सञ्जय धर्म्मात्मा पुरुषोंमें अग्रणी पुरुषसिंह भीष्मको धन्य धन्य कहके उनकी स्तुति करने लगे। महाराज ! उस समय वे सब कोई इस प्रकार आनन्दित होकर प्रसन्न हुए थे, जैसे सूर्य्यके उदय होनेसे कमलका पुष्प खिलता है। अनन्तर राजा युधिष्ठिर दुःखित चित्तसे आंखोंमें आंसू भरकर भीष्मके दोनों चरणोंको स्पर्श करके बोले, हे पितामह ! मुझे जिन विषयोंमें सन्देह है उसे कल्ह आपके निकट प्रकाशित करूंगा; क्योंकि अब सूर्य्यदेव अस्त हुआ चाहते हैं। तिसके अनन्तर शत्रुनाशन यशस्वी कृष्ण, कृपाचार्य्य और राजा युधिष्ठिर आदि सब पुरुषोंने ब्राह्मणोंको प्रणाम करके गङ्गानन्दन भीष्मकी प्रदक्षिणा की; फिर दृशद्वती नदीमें यथारीतिसे माङ्गलिक जप, सन्ध्योपासन और तर्पण आदि कर्म्मोंको समाप्त करके पश्चात् हस्तिनापुरमें प्रवेश किया।

५८ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर पाण्डव और यादवोंने दूसरे दिन प्रातःकालके नित्यकर्म्मोंको समाप्त करके रथमें चढ़कर फिर भीष्मके समीप जानेके वास्ते हस्तिनापुरसे प्रस्थान किया, उस समय पाण्डव और यादवोंके रथ मार्गमें गमन करते हुए नगरके समान बोध होते थे। अनन्तर वे सब कोई कुरुक्षेत्रमें पहुंचकर पापरहित गङ्गानन्दन भीष्मके

इस प्रकार कुशल प्रश्न करने लगे, कि "आपने सुखपूर्व्वक रात्रि व्यतीत की है न?" फिर व्यास आदि महर्षियोंको नमस्कार करके सब कोई पुरुषश्रेष्ठ भीष्मके चारों ओर बैठ गये। तिसके अनन्तर महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर भीष्मकी यथारीतिसे पूजा करके हाथ जोड़के कहने लगे।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे शत्रुनाशन भरत-नन्दन! इस पृथ्वीपर "राजा" शब्द प्रचलित है, इसकी किस प्रकार उत्पत्ति हुई है; आप इस विषयको मेरे समीप वर्णन करिये इस पृथ्वी-पर हाथ, पांव, मुख, उदर, ग्रीवा, शुक्र, हड्डी मांस, मज्जा, रुधिर, बुद्धि, इन्द्रिय, आत्मा, सुख, इच्छा, विश्वास, प्राण, शरीर, जन्म, मृत्यु और अन्य गुण मनुष्योंमें समान होनेपर भी किस कारणसे एक ही पुरुष बुद्धिमान और शूरवीर पुरुषोंके ऊपर आधिपत्य करता है? एक पुरुष ही इस शूरवीर और श्रेष्ठ पुरुषोंसे युक्त सम्पूर्ण पृथ्वीकी रक्षा करता है, और सब कोई उसहीके प्रसन्न करनेकी अभिलाषा करते हैं? हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ भरतर्षभ! उस एक पुरुषके प्रसन्न होनेसे सब कोई प्रसन्न और उसके व्याकुल होनेसे सम्पूर्ण पुरुष व्याकुल होते हैं; यह रीति जो सदासे प्रचलित है, मैं उसके सुननेकी इच्छा करता हूं; इससे आप विस्तार पूर्व्वक इस वृत्तान्तको वर्णन कीजिये। हे नर नाथ! सब मनुष्य जो एक ही पुरुषकी आज्ञामें चलते हैं; इसका कारण भी सामान्य न होगा।

भीष्म बोले, हे पुरुषसिंह युधिष्ठिर! पहिले सतयुगमें जिस प्रकार प्रथम राजत्व स्थापित हुआ था, उसे मैं कहता हूं, चित्त लगाके सुनो। पहिले राजा वा राज्य, तथा दण्डकर्त्ता और दण्ड कुछ भी नहीं था, प्रजा ही धर्म्मकी अनुगामिनी होकर आपसमें एक दूसरेकी रक्षा करती थी। हे भारत! इसी भांति एक दूसरेकी रक्षा करते हुए वे सब कोई क्रमसे थक गये और उनका चित्त भ्रमित होने लगा। हे पुरुषश्रेष्ठ! इसी भांति चित्त विभ्रम उपस्थित होनेपर ज्ञान लोप होनेसे उनके धर्म्म कार्य्य नष्ट होने लगे। हे भरतर्षभ क्रमसे मोह और लोभ उपस्थित होनेपर वे लोग अप्राप्त वस्तुओंकी भी इच्छा करने लगे; इससे विषयवासना और इन्द्रिय सुख आदि कामना-ओंने उनके चित्तको आक्रमण किया। हे युधि-ष्ठिर! इसी भांति भोगाभिलाष उपस्थित होने पर वे लोग उसमें इस प्रकार अनुरक्त हुए, कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य ज्ञान और अनेक सद्वचनोंसे रहित होगये। हे राजेन्द्र! इसी कारण उन लोगोंमें अगम्य गमन, भक्ष्याभक्ष्य और दोष अदोषका कुछ भी विचार न रहा। हे राजन्! मनुष्य लोग इस प्रकार ज्ञानहीन होके विष-योंमें आसक्त हुए, तो वेद आदिक नष्टभ्रष्ट होने लगे और यज्ञादिक कर्म्म धर्म्म भी लुप्त होगये। हे पुरुषसिंह! इसी भांति जब वेदादिक धर्म्म लुप्त होगये, तब देवता लोग भयभीत होकर जगत् पितामह ब्रह्माको शरणमें उपस्थित होकर उनकी स्तुति करने लगे; और दुःखित चित्तसे हाथ जोड़के यह वचन बोले, हे भगवन्! मनुष्योंमें लोभ और मोह आदिक भावोंके उदय होनेसे सनातन वेदधर्म्म लुप्त हुआ है, इस ही कारण हम लोगोंको भय उपस्थित हुआ है। हे त्रिलोकी नाथ! ब्राह्मण वेदोंके लुप्त होनेसे यज्ञ आदिक धर्म्म कर्म्म भी नष्ट हुए हैं; इससे हम लोग इस समय मर्त्यलोक वासी मनुष्योंकी समानताको प्राप्त हुए हैं। मनुष्य लोग हम लोगोंके निमित्त यज्ञमें आहुति प्रदान करते थे, और यज्ञसे तृप्त होकर हम लोग जलको वर्षा करके मनुष्योंको आनन्दित करते थे; परन्तु इस समय सम्पूर्ण कर्म्मोंके लुप्त होनेसे हम लोग भी नष्ट प्राय होगये हैं। हे पिता-मह! आपकी कृपासे हम लोगोंका जो कुछ ऐश्वर्य्य प्राप्त हुए थे, वह सब नष्ट हो रहे हैं; इससे इस समयमें जिस भांति हम लोगोंका

कल्याण होवे, आप अनुग्रहकर उसीका विधान करिये।

तिसके अनन्तर स्वयम्भू भगवान ब्रह्मा उन देवताओंसे बोले, हे देवता लोगो! तुम लोग भय मत करो, जिससे तुम लोगोंका मङ्गल होगा, मैं वही उपाय करूंगा। अनन्तर पिता मह ब्रह्माने निज बुद्धिके प्रभावसे एक सौ हजार अध्यायोंसे युक्त एक शास्त्र बनाके उसमें धर्म्म, अर्थ और कामका विस्तार पूर्व्वक वर्णन किया, ब्रह्माने धर्म्म अर्थ और कामको त्रिवर्ग कहके विख्यात किया, और त्रिवर्गसे विपरीत फलदायक पृथक् गुणविशिष्ट मोक्षनाम चतुर्थ पदका उस ही शास्त्रमें वर्णन किया। मोक्षको भी सकाम कर्म्म भेदसे सत्व, रज और तमरूपी त्रिवर्ग और निष्काम भेदसे उससे पृथक् अन्य एकवर्ग वर्णन किया। हे भरतश्रेष्ठ! वणिकोंके धनकी रक्षा, तपस्वियोंकी बढ़ती और चारोंके नष्ट करनेके वास्ते त्रिवर्ग आत्मा, देश, काल, उपाय प्रयाजन और सहाय नीतिसे उत्पन्न हुए, ये षड्वर्ग कर्म्म-काण्ड, ज्ञान काण्ड, कृषि, वाणिज्य, जीविकाकाण्ड और विशाल दण्डनीति, ये सब विषय जगत् पितामह ब्रह्माके बनाये हुए एक लक्ष अध्यायोंमें पूर्ण रीतिसे वर्णित हैं। हे राजन्! सेवकोंकी रक्षा ब्राह्मण और राजपुत्रोंके लक्षण, अनेक उपायके सहित आप्तोंको नियुक्त करना, ब्रह्मचारी आदि वेषधारी गुप्त चरोंका पृथक् पृथक् रूपसे नियत करना और साम, दान, भेद, दण्ड और उपेक्षा ये सब विषय उस शास्त्रमें विस्तार पूर्व्वक वर्णित हुए हैं। मन्त्र, भेदार्थ, मन्त्रविभ्रम और सिद्ध असिद्धिके फल भी उसमें कहे गये हैं। भययुक्त सत्कार सहित और धनग्रहण रूपी उत्तम, मध्यम और अधम सन्धि भी उसमें वर्णित है। चतुर्व्विध यात्रा काल, त्रिवर्ग विस्तार, धर्म्मयुक्त विजय, अर्थ विजय और अन्याय पूर्व्वक कर्म्मोंसे असुर-विजय पूर्ण रीतिसे उस शास्त्रोंमें वर्णित हैं। उत्तम, मध्यम और अधम भेदसे सेवक, राष्ट्र, किला, बल और कोष इन पञ्चवर्गोंके सब लक्षण वर्णित हुए हैं। प्रकाश्य और गुप्त दोनों भांतिकी सेना उसमें कही गई हैं; और दोनोंका अष्टविध विस्तार वर्णित हुआ है। हे पाण्डुनन्दन! रथ, हाथी, घोड़े, पत्ति, विष्टि, नाविक, भार उठानेवाले दूत और उपदेष्टा, ये आठ प्रकारके बलके अङ्ग हैं। वस्त्रादिक, अन्न आदि भोजनकी वस्तु और अभिचारिक कार्य्योंमें जङ्गम अजङ्गम अर्थात विषादिक चूर्ण योग रूप दण्ड वर्णित है। हे भरतर्षभ! उस शास्त्रमें मित्र, शत्रु और उदासीन पुरुषोंके लक्षण भी वर्णित हुए हैं। ग्रह नक्षत्र आदिके मार्गगुण, भूमिगुण, मन्त्र और यन्त्रोंसे आत्मरक्षा, धैर्य्य और रथ निर्माण आदि कार्य्योंको अवलोकन करना, मनुष्य, हाथी और घोड़ोंके बलपुष्टिके अनेक भांतके यत्न, योग, नाना भांतिके व्यूह, विचित्र युद्ध कौशल, धूमकेतु प्रभृति उत्पात, उल्कापात, शस्त्रोंको तीक्ष्ण करनेकी विधि और उनके चलाने तथा निवारण करनेकी विधि पूर्ण रीतिसे वर्णित है। हे पाण्डुपुत्र सब बलोंकी बढ़ती क्षय, और पीड़ा; आपत कालमें सेनाके गुण दोषोंका ज्ञान, नगारे आदि बाजोंके शब्द सहित यात्रा कालमें गमन करनेका विधान, ध्वजा पताकासे युक्त रथ आदि वाहन, मन्त्रादिकोंसे शत्रुओंको मोहित करनेकी विधि इत्यादि ये सब विषय उस शास्त्रमें वर्णित हुए हैं। चोर, डकैत, जङ्गली भील-किरात, अग्नि, विष और कृत्रिम पत्र बनानेवाले पुरुषोंसे बलवान शत्रुओंमें भेद कराना, खेती कटवाना मन्त्र और औषधियोंके प्रयोगसे हाथी, घोड़ोंको दूषित करना, प्रजाको भय दिखाना, अनुयायियोंका आदर और सबके मनमें विश्वास उत्पन्न कराके शत्रुराज्यको पीड़ित करनेकी विधि उस

शास्त्रमें विशेष रूपसे वर्णनकी गई है। और सप्तांग राज्यकी बढ़ती ह्रास, शान्ति स्थापन, राज्यको बढ़ाना, बलवान पुरुषोंको संग्रह करना इत्यादि ये सब विषय उसमें वर्णित हैं। शत्रुके निकटमें रहनेवाले मित्रोंमें भेद, बलवान शत्रुको यत्नपूर्वक पीड़ित करना, सूक्ष्म विचार, खलोंका नाश, मल्लयुद्ध, शस्त्र चलाना, दान धन संग्रह, भूखोंको भोजन, सेवकोंके कार्य्योंका निश्चय, समयके अनुसार धनव्यय, मृगया आदि व्यसनोंमें अनिच्छा, सावधानता आदि राजगुण शूरता वीरता और धीरता आदि सेनापतिके गुण और त्रिवर्गके गुण दोष तथा कारण उस शास्त्रमें विस्तार पूर्व्वक वर्णित हुए हैं। नाना भांति की दुरभिसन्धि, अनुयायी और सेवकोंकी यथा योग्य वृत्ति, सब भांतिके प्रमादोंकी शक्ति, तत्व, निवारण विधि, अप्राप्त अर्थका लाभ, प्राप्त अर्थकी बढ़ती, और बढ़ाये हुए धनको विधिपूर्व्वक सत्पात्रोंको दान करना, यज्ञादि धर्म्म कर्म्मोंमें दान, काम्यदान और विपद उपस्थित होनेपर धन दान करनेकी विधि भी उस लक्ष श्लोकवाले शास्त्रमें वर्णित है। हे कुरुश्रेष्ठ! लक्ष अध्यायवाले शास्त्रके बीच क्रोध और कामसे उत्पन्न हुए दश प्रकारके व्यसनोंका भी वर्णन है।

हे भरतर्षभ! तिसके बीच पितामह ब्रह्माने कहा है, जूआ, मृगया, सुरापान और स्त्रियोंमें अत्यन्त आसक्ति ये चारों व्यसन कामसे उत्पन्न होते हैं। कठोर वचन, क्रूरस्वभाव, कठोर दण्ड, निग्रह, क्रोधके वशमें होकर आत्महत्या करनी और अर्थ दूषण ये छःही व्यसन क्रोधसे प्रकट होते हैं। उस शास्त्रमें यन्त्र बनानेके निमित्त नाना भांतिके कौशल और उसकी क्रियाका वर्णन है। शत्रुओंको पीड़ित करना युद्ध-मार्गोंको ठीक करना, कांटोंसे युक्त लताओंका नाश, कृषिकर्म्मकी रक्षा, आवश्यकीय वस्तुओंका संग्रह, वर्म्म और वर्म्म निर्म्माणकी युक्तियोंका भी उस शास्त्रमें वर्णन हुआ है। हे युधिष्ठिर! उसमें ढोल, मृदङ्ग शङ्ख, भेरी आदि बाजोंके लक्षण और मणि, पशु, भूमि, वस्त्र, दासी और सुवर्ण आदि छः प्रकारकी वस्तुओंका संग्रह, रक्षा, दान, साधुओंका पूजन, पण्डितोंका सत्कार, दान और होमके नियमोंका ज्ञान, सुवर्ण आदि माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श, शरीरको अलंकृत करना, भोजनके नियम और आस्तिकता आदि सम्पूर्ण विषय कहे गये हैं। हे भरतर्षभ! विषय उत्थापित करना, वचनकी सत्यता सभा और उत्सवोंके बीच वचनकी मधुरता, ध्वजारोहणादिक गृह-कार्य्य, साधारण पुरुष जिन स्थानोंमें बैठते हैं; उन स्थानोंमें प्रत्यक्ष और परोक्षमें जिन कार्य्योंके अनुष्ठान होते हैं उसका अनुसन्धान, ब्राह्मणोंको अदण्डित करना, युक्तिपूर्व्वक दण्ड विधि, अनुजीवी और स्वजातिके पुरुषोंके गुण अनुसार उनकी मर्य्यादा स्थापित करनो, पुरवासियोंकी रक्षा, और राज्य बढ़ानेकी विधि पूरी रीतिसे उस शास्त्रमें वर्णित है। हे राजेन्द्र! शत्रु, मित्र और उदासीन प्रत्येकमें चार चार भेदोंसे द्वादश राजमण्डल विषयक युक्ति, वेद-शास्त्रोंमें कही हुई पवित्रता, बहत्तर प्रकारके शरीर संस्कार और देश, जाति तथा कुल भेदसे पृथक् पृथक् धर्म्म भी उसमें कहे गये हैं। हे बहुतसी दक्षिणा देनेवाले! उसमें धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, अनेक भांतिके उपाय और अर्थ-लिप्साके विषय सम्पूर्ण रूपसे वर्णित हुए हैं। कोष बढ़ानेकी विधि कृषि आदि कार्य्य, माया-योग और बंधे हुए स्रोतके जलके समस्त दोष कहे गये हैं। हे राजशार्दूल! जिन जिन उपायोंको अवलम्बन करनेसे मनुष्य लोग आर्य्य पुरुषोंके अवलम्बित मार्गसे विचलित नहीं होते, वे सब विषय पितामहके बनाये हुए नीति शास्त्रमें वर्णित हैं। भगवान लोकनाथ पितामह इस मंगलजनक शास्त्र बनाके प्रसन्न चित्तसे

इन्द्रादिक देवताओंसे बोले, कि मैंने सम्पूर्ण लोकोंके उपकार और त्रिवर्ग संस्थापनके वास्ते दूधके नवनीत समान समस्त वाक्योंके साररूपी यह युक्ति प्रकाशकी है। लोकरक्षा करनेवाली इस युक्तिको दण्डके सहित प्रयोग करनेसे यह सम्पूर्ण प्राणियोंके निग्रहमें समर्थ होकर पृथ्वी-पर प्रचारित होगी। यह जगत्‌दण्डसे बना है, अथवा जगत्‌से ही दण्ड प्रकट हुआ है; इसीसे यह नीति तीनों लोकके बीच दण्डनीति कहके विख्यात होगी। समस्त षाड्गुण्यगुणोंका सार-भूत यह शास्त्र सदा महात्माओंके आगे स्थित रहेगा; क्यों कि धर्म्म, अर्थ काम और मोक्ष ये सब इसके बीच वर्णित हुए हैं। तिसके अन-न्तर बहुरूप, विशालाक्ष, स्थाणु भगवान उमा-पति शङ्करने पहिले ही उस नीतिशास्त्रको ग्रहण किया। भगवान शिवने सब प्रजाके आयुका समय घटा हुआ जानके पितामह कृत उस महार्थ शास्त्रको संक्षिप्त किया। महात-पस्वी ब्राह्मण श्रेष्ठ इन्द्रने दस हजार अध्याय वाले उस वैशालाक्ष नाम नीतिशास्त्रको ग्रहण कर संक्षेप करके पांच हजार अध्याय किया और वह शास्त्र बाहुदन्तक नामसे विख्यात हुआ; हे तात! वह इस समय बार्हस्पत्य शास्त्र कहके पुकारा जाता है। अत्यन्त बुद्धिमान् योगाचार्य्य महायशस्वी शुक्रने उसे संक्षेप करके एक हजार अध्याय किया। इसी भांति सम्पूर्ण प्राणियोंके आयुष्काल की अल्पताके अनुसार महर्षियोंने अपनी अपनी बुद्धिके प्रभावसे उस शास्त्रको संक्षेप किया। अनन्तर देवताओंने प्रजापति विष्णुके निकट उपस्थित होके कहा,—"जो सम्पूर्ण मर्त्यलोकवासी प्राणियोंके ऊपर प्रभुता कर सके, आप वैसे किसी एक पुरुषको आज्ञा करिये।" अनन्तर देवोंके प्रभु भगवान नाराय-णने तैजस और विरजा नाम दो मानसपुत्र उत्पन्न किये। हे पाण्डु-पुत्र! उनमें महाभाग विरजाने भूमण्डल पर प्रभुता करनेकी इच्छा नहीं की; क्यों कि उनकी बुद्धि सन्न्यासवृत्तिमें अनुरक्त हुई। उनके कीर्त्तिमान नाम जो पुत्र उत्पन्न हुआ था; वह भी पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। कीर्त्तिमानके पुत्र कर्द्दमने भी अत्यन्त तपस्या की। प्रजापति कर्द्दमके दण्डनीति जाननेवाला अनंग नाम पुत्र हुआ था, वही प्रजाकी रक्षा करनेलगा, तिसके अनन्तर अनंग पुत्र नीतिमान् अतिबल राज्य पाके इन्द्रिय परायण हुए। तीनों लोकमें विख्यात सुनीथा नाम्नी मृत्युकी जो मानसी कन्या थी, उसीसे वेणुका जन्म हुआ। अतिबल-पुत्र वेणु राग, द्वेषके वशमें होकर प्रजाके ऊपर अधर्म्म आचरण करनेलगे; तब ब्रह्मवादी ऋषियोंने मन्त्र-पूरित कुशोंसे उन्हें मार डाला। तिसके अनन्तर उन ऋषि-योंने मन्त्र पढ़के वेणुकी दहिनी जङ्घाको मथा, उससे पृथ्वीपर कुरूप-वेष जलते हुए खूण समान लाल नेत्र, त्रिखर्व केश और छोटे अङ्ग वाला एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उन ब्रह्मवादी ऋषियोंने उसे "निषीद" अर्थात् पतित हो,— ऐसा ही कहा, इससे उस पुरुषसे जो क्रूर मनुष्य उत्पन्न भये, उन सबोंने "निषाद" नामसे विख्यात होके पहाड़ तथा बनोंका आसरा ग्रहण किया। हे राजन्! इस समय जो सब विन्ध्याचल पर्व्वतपर वास करते हैं, और दूसरे जो अनगिनत म्लेच्छ हैं; ये सब उन्हीं निषा-दोंसे उत्पन्न हुए हैं। अनन्तर महर्षियोंने फिर वेणुका दहिना हाथ मथा, उससे कवचधारी, बद्धनिस्त्रिंश धनुष बाणसे युक्त, वेद वेदांग और धनुर्व्वेद जाननेवाला द्वितीय इन्द्रके समान एक दूसरा पुरुष उत्पन्न हुआ। महाराज! दण्डनीतिने मानो मूर्त्तिमयी होके उसका आसरा ग्रहण किया। तिसके अनन्तर वेणु-पुत्र हाथ जोड़के महर्षियोंसे बोले, मुझे जो अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि उत्पन्न हुई है, उससे मैं किन कार्य्योंका अनुष्ठान करूंगा, वह आप लोग मुझसे सत्य ही कहिये। आप लोग मुझसे जो

अर्थयुक्त कार्य्य करनेको कहेंगे, मैं शीघ्र ही उसे पूर्ण करूंगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

अनन्तर देवताओं और परमर्षियोंने उनसे कहा, "तुम नियमपूर्व्वक निर्भय-चित्तसे धर्म्मयुक्त कार्य्योंका आचरण करो। तुम काम, क्रोध, लोभ और अभिमान त्यागके और प्रिय अप्रियका विचार न करके सब जन्तुओंमें समभाव प्रकाशित करना। पृथ्वीपर जो कोई मनुष्य धर्म्ममार्गसे विचलित होगा, तुम धर्म्मको ओर दृष्टि रखके अपने बाहुबलसे उसे दण्ड देना। हे शत्रुतापन! तुम मन, और वचनसे ऐसी प्रतिज्ञा करो, कि अखिल भौम पदार्थको ब्रह्मस्वरूप जानके पालन करूंगा; स्वेच्छाचारी होकर, दण्डनीतिके नियम अनुसार जो सब धर्म्म कहे गये हैं, निर्भयचित्तसे उन्हींका आचरण करूंगा; द्विजातिगण मुझसे अदण्ड और मैं सब प्राणियोंको शङ्करसे रक्षा करूंगा। तिसके अनन्तर वेणपुत्र उन ऋषियों तथा देवताओंसे बोले, पुरुषश्रेष्ठ महाभाग ब्राह्मण लोग मेरे नमस्य होवें। उन ब्रह्मवादी ऋषियोंने "ऐसा ही होगा" कहके अंगीकार किया, तब ब्रह्ममय निधिस्वरूप भगवान शुक्र उनके पुरोहित हुए। सारस्वत्य और वालिखिल्य गण उनके मन्त्री और महर्षि गर्ग भगवान ज्योतिर्व्विद हुए। इसी भांति शरीर भेदसे विष्णुसे अष्टम पर्य्याय वेणुपुत्र पृथुने पृथ्वीपर राज्य स्थापित किया, ऐसी ही जनश्रुति है। इसके पहिले ही सूत और मागध नामक उनके दो बन्दी उत्पन्न हुए थे, प्रतापी वेणुपुत्र पृथुने उन दोनोंके ऊपर प्रसन्न होकर सूतको अनूपदेश और मागधको मगध देश प्रदान किया। महाराज! हमने सुना है, पहिले भूमिमें अत्यन्त ही वैषम्यदोष था, क्यों कि प्रति मन्वन्तरोंमें पृथ्वी सर्व्वत्र ही विषम हुई थी, उस ही कारण वेणुपुत्रने धनुषसे पत्थरोंकी शिला उठाके वर्द्धित करते हुए पृथ्वीको समतल सम्पादन किया। हे पाण्डुपुत्र! इसी भांति पृथु इन्द्र आदिक देवताओं, विष्णु प्रजापालक और ब्राह्मणोंसे अभिषिक्त हुए; रत्नपूरित वसुन्धरा मानो मूर्त्तिमयी होकर उनकी प्रणयिनी हुई। हे युधिष्ठिर! सरितापति समुद्र, पर्व्वतोंमें उत्तम हिमवान और देवराज इन्द्रने उन्हें अविनाशी धन प्रदान किया। कनकपर्व्वत सुमेरुने स्वयं आके सुवर्ण प्रदान किया। यक्ष और राक्षसोंके स्वामी नरवाहन भगवान कुवेरने धर्म्म, अर्थ काम इन त्रिवर्ग साधनमें समर्थ धन प्रदान किया। हे पाण्डुनन्दन! उस पृथुके चिन्तन करते ही अनगिनत रथ, हाथी और पुरुष उत्पन्न होने लगे। उनके राज्य शासनके समयमें जरा, दुर्भिक्ष, आधि अथवा व्याधि कुछ भी नहीं थी। उनके शासनके समयमें सर्प अथवा चोरोंसे भी दूसरेको भय नहीं उपस्थित होता था, वह जब समुद्रमें गमन करते थे; उस समय तरङ्ग मालासे युक्त समुद्रका जल स्तम्भित होजाता; सम्पूर्ण पर्व्वत दो भागोंमें बंटके उन्हें मार्ग प्रदान करते थे। अधिक क्या कहें उनको कहीं भी गतिरोध वा ध्वजा-भङ्ग आदि अशकुन नहीं उपस्थित होते थे। उन्होंने शस्यके वास्ते इस पृथ्वीको सत्तरह बार दोहन किया था; उससे यक्ष, राक्षस और सर्पोंने अपनी समस्त अभिलषित वस्तुओंको पाया था। इसी भांति उस महात्मा पृथुने भूलोकमें धर्म्म स्थापित करके प्रजापुञ्जके मनको रञ्जन किया, उसी समयसे पृथ्वीमें "राजा" शब्द प्रचलित हुआ। ब्राह्मणोंको क्षतसे परित्राण करनेसे क्षत्रिय कहलाये; पृथुने धर्म्मपूर्व्वक मेदिनीको प्रथित किया था, उसी कारण यह धरा पृथिवी नामसे विख्यात हुई। हे भारत! सनातन विष्णुने स्वयं उनकी यह मर्य्यादा स्थापित की, कि "हे राजन्! तुम्हें कोई भी अतिक्रम न कर सकेगा।" भगवान विष्णुने तपके प्रभावसे भूपतिके शरीरमें प्रवेश किया। महाराज!

अखिल जगत् देव-सदृश उस नरदेवके समीप नत होता रहता है। हे नरनाथ! जिसमें चार-वृत्ति अवलोकन द्वारा कोई नष्ट करनेमें समर्थ न होसके; उसी भांतिकी दण्ड-नीतिसे नियमानुसार राज्य रक्षा करनी उचित है। हे राजेन्द्र! राजा की चित्तवृत्ति और कर्म्मोंके समतानुसार उसके किये हुए शुभ कार्य्यादिकोंके फल शुभरूपसे परिणत होते हैं। हे युधिष्ठिर! सब प्राणी जो एक ही पुरुषके वशीभूत होते हैं; वह दैव निर्व्वन्ध ही उसका कारण है; दूसरा कोई भी कारण नहीं है।

हे पाण्डुनन्दन! उसी समय विष्णु के मस्तकसे एक सुनहला कमल प्रकट हुआ, उसीसे बुद्धिमान धर्म्मकी पत्नी अर्थात् पालयित्री स्त्री उत्पन्न हुई। धर्म्मतः श्रीसे ही सब अर्थ उत्पन्न हुए। तभी से राज्यमें श्री, अर्थ और धर्म्म वे तीनों ही प्रतिष्ठित हुए। मनुष्य पूर्व्व जन्मके किये हुए सुकृतके क्षय होनेपर स्वर्ग लोकसे पृथ्वीपर आगमन करके सतोगुणावलम्बी, बुद्धिमान, दण्डनीति जाननेवाले भूपति होकर जन्म ग्रहण करते और तिसके अनन्तर देवताओंसे अभिषिक्त होकर असीम महात्म्यको प्राप्त होते है। महाराज! अखिल जगत् जो एक ही पुरुषके वशीभूत होता है और उसके शासनको अतिक्रम नहीं करता, उसका यही कारण है, परन्तु वह जगत्‌विधान कर्त्ता है,—ऐसा जानके नहीं। हे राजेन्द्र! शुभ कर्म्मोंके फल शुभ रूपसे ही परिणत होते हैं, देखिये हाथ पाव आदि अवयव सबके समान ही होते हैं, तोभी सब कोई एक ही की आज्ञामें चलते हैं। जो उसके मनोहर मुखको देखता है, वही उसके वशमें होजाता है; मङ्गलमय रूपवान और धनवान ही उसका दमन करते हैं। हे युधिष्ठिर! उसका महा दण्ड ही पृथ्वीमें धर्म्म संस्थापनका मूल, स्पष्ट लक्षणवाली नीति और सुन्दर रीतिका प्रचार दीख पड़ता है। हे युधिष्ठिर! इसी भांति पितामहके बनाये हुए शास्त्रके बीच पुराणोंके आगम, महर्षियोंके सम्भव, तीर्थ और नक्षत्रों की उत्पत्ति गार्हस्थ्य आदि चारों आश्रमोंके नियम, चातुर्होत्र, चारोंवर्ण और चारों विद्या प्रभृति सब ही वर्णित हैं। इतिहास, वेद, न्याय, तपस्या, ज्ञान, अहिंसा, सत्य, मिथ्या और उत्तम नीति सब विस्तारके सहित वर्णित हैं। वृद्धोंकी सेवा, दान, पवित्रता, उत्थान और सब प्राणियोंके ऊपर दया प्रकाश करना, ये सब उस शास्त्रमें वर्णित हैं। हे पाण्डुपुत्र! अधिक क्या कहूं, इस पृथ्वीपर जो कार्य्य हैं, वह सब पितामहके बनाये हुए उस शास्त्रमें निःसन्देह रूपसे वर्णित हुए हैं। हे राजेन्द्र! उस ही समयसे पण्डित लोग "देव और नरदेव समान हैं,"—ऐसा ही कहा करते हैं। हे भरत श्रेष्ठ महाराज! ये ही सब राजाओंके कर्त्तव्य विषय सब भांतिसे कहे गये, अब कहिये दूसरा कौनसा विषय कहूं?

५९ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तिसके अनन्तर नियमशील युधिष्ठिरने गंगानन्दन भीष्म पितामहको प्रणाम करके फिर पूंछा, हे कुरुश्रेष्ठ पितामह! अनुलोम और विलोम जात वर्णोंके साधारण धर्म्म क्या हैं? ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंके चारोंवर्णोंमें पृथक् धर्म्म और आश्रम क्या है? कौन धर्म्म राजधर्म्म कहके माना जाता है? किस भांति राज्य बढ़ता है और कौनसा उपाय अवलम्बन करनेसे राजा और पुरवासियोंकी उन्नत अवस्था हो सकती है? राजा कैसे कोष, दण्ड, किला, सहाय, मन्त्री, ऋत्विक, पुरोहित और गुरुको परित्याग करे? पितामह! किस भांतिकी आपद उपस्थित होनेपर कैसे मनुष्यका विश्वास करना उचित है? और किस विषयसे आत्माको सब

भांतिसे रक्षा करनी उचित है? आप यह सब मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, मैं उस महत् धर्म, पूर्णब्रह्म कृष्ण भगवानको, प्रणाम करके नित्य धर्मकी व्याख्या करूंगा। हे युधिष्ठिर! क्रोध न करना, सत्यवचन सम्विभाग, क्षमा, निज स्त्रीमें सन्तोष, पवित्रता किसीसे वैर न करना, विनीतता और सेवकोंका पालन ये नव अनुलोम और विलोम जात वर्णोंके साधारण धर्म हैं। और इसके अतिरिक्त जो सनातन धर्म केवल ब्राह्मणोंके ही आचरित हैं, उसे कहता हूं सुनो, महाराज! दम अर्थात् वाह्य इन्द्रियोंका निग्रह, तपके क्लेशोंमें सहनशीलता और जिससे दूसरे सब सांसारिक कार्य्योंको समाप्ति होती है, वैसे वेदको अध्ययन करना ही ब्राह्मणोंका सनातन धर्म है। इसी भांति शान्त प्रकृतिवाले बुद्धिमान ब्राह्मण दुष्कर्म्मोंमें रत न होके निज कर्म्मोंमें तत्पर रहने पर यदि अर्थ स्वयं ही उसके समीप उपस्थित होवे, तो सन्तान उत्पन्न होनेको अभिलाषासे दार परिग्रह करके वह सदा ध्यान और यज्ञ आदि सत्कर्म करे। और भी पण्डितोंने कहा है, कि उस अर्थको स्वजनोंके सहित समभावसे भोग करे। वेदाध्यनके सङ्ग ही ब्राह्मणोंके सब कार्य्य समाप्त होते हैं, इसके अनन्तर और कोई कर्म्म करे, वा न करे, वह सब प्राणियोंका प्रियपात्र ब्राह्मण कहके विख्यात होता है।

हे भारत! क्षत्रियोंके जो पृथक् धर्म हैं, वह भी तुमसे कहता हूं, सुनो। महाराज! क्षत्रिय दान करे परन्तु किसीसे मांगे नहीं यज्ञ आदि करे, परन्तु याजकता न करे; अध्ययन करे, पर किसीको पढ़ावे नहीं; प्रजापुञ्जको सब भांतिसे पालन करे, सदा डाकुओंके वधमें नियुक्त रहे और रणभूमिमें पराक्रम प्रकाशित करे। जो राजा अश्वमेध आदि यज्ञोंको करके पृथ्वी मण्डलपर महत् कीर्त्ति स्थापित करते और जो युद्धक्षेत्रमें विजय प्राप्त करते हैं; वेही त्रिलोकवासी सब प्राणियोंको अपने वशमें कर सकते हैं। क्षत्रियोंको अक्षत शरीरसे युद्धसे निवृत्त होने पर दीर्घदर्शी पण्डित लोग उनके वैसे कर्म्मको प्रशंसा नहीं करते; इससे धर्म्मकी अभिलाष करने वाला राजा विशेष यत्नके सहित युद्ध करे। उत्तवस्तु अर्थात् अधम क्षत्रियोंको मुख्य करके यही मार्ग अवलम्बन करना उचित है; परन्तु डाकुओंको दमन करनेके अतिरिक्त दूसरे कोई भी कर्म्म उनके कर्त्तव्य कार्य्य कहके नहीं बोध होते। दान, अध्ययन और यज्ञ ही राजाओंके निमित्त मङ्गलकारी हैं; राजा प्रजा समूहको उनके निज धर्म स्थित करके धर्म्म पूर्व्वक समभावसे सब कार्य्योंको सिद्ध करे। इसी भांति प्रजापालन करनेसे राजाओंके सब कार्य्य समाप्त होते हैं। इसके अनन्तर वे कोई कार्य्य करें, वा न करें; सब प्राणियोंके मुख्य राजा कहके प्रसिद्ध होते हैं।

हे युधिष्ठिर! वैश्योंका भी जो सब नित्यधर्म्म है, वह तुमसे कहता हूं, सुनो। वैश्य दान, अध्ययन, यज्ञ उत्तम उपायके सहारे धन सञ्चय और अनुराग पूर्व्वक पिताकी भांति पशुओंका पालन करे, दूसरा कुछ भी कार्य्य न करे; क्योंकि इसके अतिरिक्त दूसरे सब कार्य्य ही उसके अकर्त्तव्य कहके वर्णित हुए हैं। प्रजापतिने सृष्टिके अनन्तर ब्राह्मणोंको बनाया है, राजाओंको सब जाति वाली प्रजा और वैश्योंको समस्त पशु प्रदान किया है; इससे वैश्य उस ही रीतिके अनुसार पशु रक्षामें नियुक्त रहनेसे महत् सुख प्राप्त करता है। इसके अनन्तर वह जिस वृत्तिको अवलम्बन करेगा तथा जिस उपायके सहारे जीविका निर्व्वाह करेगा, वह भी कहता हूं। जो वैश्य छः गऊ पालन करे, वह निज वेतन रूपी एक गऊका दूध पीवे; सौ गऊकी रक्षा करनेवाला

निज वार्षिक वेतनरूप एक गो-मिथुन पावेगा। सींग और खुरके अतिरिक्त द्रव्यके वाणिज्यसे प्राप्त हुआ और सब भांतिके शस्य तथा बीजका सातवां भाग उसका अंश कहके वर्णित हुआ है; और यही उसका एक सौ वर्षका वेतन है। वैश्य पशुओंके पालनमें अनिच्छा प्रकाशित न करे, और उसके इच्छा करनेपर दूसरे किसी वर्णवालेको ही सब पशुओंकी रक्षा करना कर्त्तव्य नहीं है।

हे भारत! शूद्रोंके भी जो सब पृथक् धर्म्म हैं, उसे कहता हूं, सुनो। प्रजापतिने शूद्रको अन्य सब वर्णोंका दास कहके वर्णन किया है, इससे सब वर्णवालोंकी सेवा करना ही शूद्रका कर्त्तव्य है, उनकी सेवा करनेसे ही शूद्रको महत् सुख प्राप्त होता है। शूद्र पर्य्याय क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंकी सेवामें नियुक्त रहे, परन्तु कभी भी धन सञ्चय न करे, क्योंकि वह धनवान होनेसे अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंको वशीभूत और कार्य्योंके करनेमे प्रवृत्त होगा; परन्तु राजाकी आज्ञानुसार लोभके वशमें न होकर धर्म्म प्रधान कार्य्योंको करनेके वास्ते थोड़ा धन सञ्चय कर सकेगा। शूद्र जिस वृत्तिको अवलम्बन करेगा और जिस उपायके सहारे जीविका निर्व्वाह करेगा; वह भी कहता हूं। शूद्र, ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंका अवश्य ही पालनीय है, उशीर वेष्टन, पुराना छत्र, जूता और व्यजन आदि परिचारक शूद्रको प्रदान करना योग्य है। न पहरने योग्य पुराने वस्त्र शूद्रको देना उचित है, क्यों कि वह उसका ही धर्म्म-धन है। धर्मात्मा मनुष्य कहा करते हैं, कि शूद्र सेवा करनेकी इच्छासे द्विजातियोंके बीच यदि किसीके पास जाय, तो वह उसकी उपयुक्त वृत्तिको उसे प्रदान करे। प्रतिपालक द्विजातिके अपत्य हीन होने पर शूद्र उसे पिण्डदान करे और वृद्ध तथा दुर्बल होनेपर उसका पालन भी करे। अधिक क्या तक कहें चाहे कैसी ही विपत् क्यों न उपस्थित होवे, किसी अवस्थामें भी स्वामीको परित्याग करना शूद्रका कर्त्तव्य नहीं है। स्वामी की दीन दशा उपस्थित होनेपर अपने परिवारसे भी अधिक उसका पालन करना शूद्रका कर्त्तव्य है; क्योंकि शूद्रका जो कुछ धन आदि रहता है, वह सब उसके स्वामीका है, उसमें उसे कुछ अधिकार नहीं है।

हे भरतनन्दन! ब्राह्मण आदि तीनोंवर्णोंके वास्ते धर्म्म और यज्ञ आदि वर्णित हुए हैं, परन्तु शूद्रोंको स्वाहाकार वषट्कार और अन्य वैदिक मन्त्रोंमें अधिकार नहीं है; इससे वे लोग स्वयं श्रौतव्रतसे रहित होकर गृहशान्ति और वैश्वदेवादि छोटे यज्ञोंको करते हुए शास्त्रोक्त पूर्णपात्रमयी दक्षिणा प्रदान करें। महाराज! मैंने सुना है, पहिले पैजवन नाम शूद्रने ऐन्द्राग्न-विधानसे यज्ञ करके दक्षिणा स्वरूप एक लाख गऊ दान किया था। हे भारत! ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण जो कुछ यज्ञ आदि करते हैं, उनके सेवक शूद्र भी उसके फल भागी होते हैं। महाराज! सब यज्ञोंसे श्रद्धा यज्ञ ही श्रेष्ठ है और यजमानोंका पवित्र महत् देवता है। ब्राह्मण भी निज निज सेवक शूद्रोंके महत् देवता हैं, इससे वे लोग श्रद्धाके सहित उनकी आराधना करनेसे अवश्य ही स्वामीकृत यज्ञादिकोंके फलभागी होंगे। ब्राह्मणोंसे ही इतर तीनों वर्णोंकी सृष्टि हुई है, इससे वे लोग स्थिर होके कामनाके सहित यज्ञादि न करने पर भी अवश्य ही ब्राह्मणोंके किये हुए यज्ञादिकोंके फलभागी हुआ करते हैं। जो देवताओंके भी देवता हैं, वे ब्राह्मण लोग जो कुछ कहें, वही मङ्गलजनक है। इसही कारण शूद्र आदि वर्ण श्रौत वा स्मार्त्त यज्ञोंको न करें, ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनुसार ही कार्य्योंमें प्रवृत्त होवें। ऋक्, यजु और साम वेद जाननेवाले ब्राह्मण शूद्रोंके निकट देवताके समान पूजनीय

होते हैं, और दासरूपसे परिगणित शूद्र निव-र्णातिरिक्त होकर भी प्रजापति-दैवत कहके गिना जाता है। हे तात भरत! सङ्कल्प करके देवताओंके निमित्त द्रव्यत्यागरूपी यज्ञमें सब वर्णवालोंको अधिकार है; अधम वर्ण शूद्र भी यदि वैसा यज्ञ करे, तो देवता लोग तथा उत्तम वर्णवाले भी उसके यज्ञभागको ग्रहण करते हैं। महाराज! इस ही कारण सब वर्णोंके वास्ते श्रद्धायज्ञकी विधि वर्णित हुई है। ब्राह्मण लोग क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंके असाधारण देवता हैं, इससे वे आत्मीय ब्राह्मण उन लोगोंसे घिरके उनके फललाभकी अभिलाषसे यज्ञादि नहीं करते, यह अत्यन्त ही असम्भव है। परन्तु "मैं अमुक कामनासे अमुक पुरुषसे वृत होकर अमुक यज्ञ करता हूं" इसी उद्देश्यसे सदा यज्ञादि किया करते हैं इसी भांत वैश्य-शूद्रसे लाया हुआ मन्त्र संसृष्ट यज्ञ नीच वर्णवालोंमें दीखता है। हे युधिष्ठिर! यह सब देखके निश्चय बोध होता है, ब्राह्मणोंसे ही क्षत्रियादिक तीनों वर्णोंके यज्ञोंकी उत्पत्ति हुई है जब कि ब्राह्मण ही क्षत्रियादिक तीनों वर्णोंके यज्ञस्रष्टा हैं और उनके विकारसे ही क्षत्रिय आदिको कन्याओंसे क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई है, इससे क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण साधु और ब्राह्मणोंके ज्ञातिवर्ण हैं; क्योंकि एक मात्र ब्रह्मसे ही पहिले ब्राह्मण जातिकी उत्पत्ति हुई, और उस ब्राह्मणसे ही क्रमसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीनों वर्ण उत्पन्न हुए हैं। जैसे एक मात्र अकारसे ही साम, ऋक् और यजु ये तीनों वेद उत्पन्न हुए हैं, और वे वेद उससे भिन्न नहीं हैं; वैसे ही एक ब्रह्मसे ही ब्राह्मणादिक चारों वर्ण उत्पन्न होके भी परस्पर समान हैं। हे राजेन्द्र! पुराण जाननेवाले पण्डित लोग इस प्रस्तावके उदाहरण स्वरूप यियक्षु वैखानस मुनियोंके यज्ञ समयमें विष्णु-गीत यज्ञ-स्तुति विषयक जो कई एक श्लोक कहा करते हैं, उसे सुनो। सबेरे, मध्याह्न और सन्ध्याके समय श्रद्धावान् जितेन्द्रिय पुरुष जो अग्निमें होम किया करते हैं, श्रद्धा ही उसमें मुख्य कारण है। ब्राह्मणोंमें जो षोड़श प्रकारके अग्निहोत्र कहे गये हैं, उसमें जो अस्कन्न अर्थात् मरुत-दैवत है, वह निकृष्ट और अस्कन्न अर्थात् यथा विधिसे होम होता है, वही सबसे उत्तम है। जो उन षोड़श भांतिके अग्निहोत्र, अनेक भांतिके यज्ञोंके रूप तथा कई प्रकारके कर्म और उनके फलोंको जानते हैं, वेही ज्ञानी श्रद्धावान द्विजाति ही यज्ञ कर सकते हैं। जो यज्ञादिकोंसे यज्ञस्वरूप विष्णुके आराधनाकी इच्छा करता है, वह पुरुष यदि घोर पापी वा महापापी हो, तौभी पण्डित लोग उसे साधु ही कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! जब कि यही उत्तम है और महर्षि लोग इन्हींकी प्रशंसा किया करते हैं, तब सब वर्णोंको ही सर्व्वदा सब भांतिसे यज्ञ करना कर्त्तव्य है, यही निर्णय हुआ है। तीनों लोकमें यज्ञके समान दूसरा कोई भी कर्म नहीं है, इससे सबका ही असूया-रहित और श्रद्धावान होकर शक्ति तथा इच्छानुसार यज्ञ करना उचित है।

६० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे महाबाहो सत्यपराक्रमी युधिष्ठिर! अब चारों आश्रमोंके नाम और कर्म्मोंको सुनो। शास्त्रकारोंने वाणप्रस्थ, भैक्ष-चर्य्य, महत् गार्हस्थ्य और चौथा ब्राह्मणोंसे परिवृत्त ब्रह्मचर्य्य,—यही चार प्रकारके आश्रमोंका वर्णन किया है। द्विजकुलमें जन्म लेकर जटाधारण संस्कार और अग्न्याधान आदि कार्य्योंको समाप्त करके वेद पढ़ते हुए आत्मवान और जितेन्द्रिय होकर सल्लोक हो, चाहे स्त्रीरहित होकर ही गृहस्थाश्रममें कृत-कृत्य

होकर फिर वाणप्रस्थ आश्रममें गमन करे। इसी भांति वाणप्रस्थ आश्रममें प्रवेश करके वहीं पर वनवासी वाणप्रस्थ पुरुषोंके अनुशासनकी यथारीतिसे अनुष्ठान कर ऊर्द्धरेता होकर प्रव्रज्या करते हुए मोक्षपद प्रहण पाते हैं। हे राजन्! यही सब ऊर्द्धरेता मुनियोंके मोक्षका कारण है, इससे विद्वान ब्राह्मणोंको पहिले यही सब कार्य्य करना उचित है। हे महाराज! मोक्षकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणोंको इस ब्रह्मचर्य्य आश्रमके कर्त्तव्य कर्म्मोंका आचरण करनेके अनन्तर उन्हें भैक्षचर्य्यरूप चौथे आश्रममें अधिकार होता है। ब्राह्मण इस आश्रममें प्रवेश करके अस्तमितशायी अर्थात् दिनमें निद्रारहित, आत्म-शुभ इच्छासे हीन, गृहरहित, मननशील, धार्म्मिक और जितेन्द्रिय होकर जो कुछ भोजनकी वस्तु प्राप्त होवे, उससेही जीविका निर्व्वाह करे। आशारहित, सबमें समभावसे युक्त, निर्भोग और निर्व्विकार अर्थात् काम सङ्कल्प आदिसे रहित ब्राह्मण इस मङ्गलमय आश्रममें निवास करके मोक्षपद प्राप्त करते हैं। हे युधिष्ठिर! जो ब्राह्मण वेदाध्ययनके अनन्तर सब कर्त्तव्य कार्य्योंको समाप्त कर पुत्र उत्पन्न और अनेक भांतिके सुख भोग करते हुए योगयुक्त होकर मुनियोंसे सेवित दुष्करगार्हस्थ्य धर्म्मका आचरण करते हैं, वे भी मोक्षपद पाते हैं। गृहस्थाश्रमवासी पुरुषोंको सदा निज स्त्रीमें सन्तुष्ट; ऋतुकालमें गमन करना, नियोगसेवी, धूर्त्ततारहित, कुटिलताहीन, मिताहारी, देवतोंमें रत, कृतज्ञ, सत्यवादी, सरलतायुक्त, अनृशंस, क्षमावान, धर्म्म करनेवाले, हव्य-कव्यमें आलस रहित, द्विजोंको सदा—सर्व्वदा अन्नदान करनेवाले, मत्सरता हीन, लिङ्गयुक्त, सब आश्रमोंके अन्नदाता और वेदविहित कर्म्मोंमें निष्ठावान होना उचित है। हे तात युधिष्ठिर! इस प्रस्तावमें महात्मा महर्षिलोग जो महा अर्थ, तपयुक्त और सारभूत नारायणगीत श्लोकका प्रमाण देते हैं, उसे कहता हूं, सुनो। "हमारे मतमें इस लोक और परलोकमें सत्य, कोमलता, अतिथिपूजा, धर्म्म, अर्थ, निज स्त्रीसे रति और दूसरे अनेक भांतिके सुखोंको भोगना कर्त्तव्य है।" परमर्षि लोग गृहस्थाश्रमवासी पुरुषोंके वास्ते स्त्री-पुत्रोंका पालन और वेदोंको धारण अर्थात् पढ़ना और पढ़ाना रूप कार्य्यको ही श्रेष्ठ कहा करते हैं। इसी भांति जो यज्ञशील ब्राह्मण गृहस्थवृत्तिको सब भांतिसे परिशोधित करके न्यायसे प्राप्त हुए धनसे जीविका निर्व्वाह करता हुआ गार्हस्थ्य आश्रममें वास करता है, वह स्वर्ग लोकमें शुद्ध फललाभ करता है। देह त्यागनेके अनन्तर उसकी सब इष्टकामना अक्षय होकर अनन्त काल पर्य्यन्त वेतन भोगी सेवककी भांति उसकी अनुगामिनी होती हैं। हे युधिष्ठिर! ब्रह्मचारी लोग स्वयं मल-दिग्धाङ्ग होकर सदा गुरु सेवामें तत्पर होके कोई पढ़े हुए वेदोंको स्मरण करें, कोई निज मन्त्रोंका जप और कोई नित्य व्रतावलम्बी, सदा दीक्षामें तत्पर और जितेन्द्रिय होकर वेदान्त विचारके अनुसार ध्यान-योग आदि सब कर्त्तव्य कर्म्मोंको समाप्त करके ब्रह्मचर्य्याश्रममें वास करें। यजन आदि षट् कर्म्मोंसे निवृत्त होके तथा दूसरे किसी कर्म्ममें प्रवृत्त न होकर सदा गुरुकी सेवा करें और उनके निकट विनीत भावसे स्थित रहें; शत्रुओंकी सेवा वा किसीके ऊपर निग्रह प्रकाश करना उचित नहीं है। हे तात युधिष्ठिर! ब्रह्मचारियोंके वास्ते यही आश्रम पद निश्चित हुआ है।

६१ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, उत्तर कालमें सुखदायक, मङ्गलमय, अहिंसासे युक्त, लोक-सम्मत, सुखके उपायका कारण और मेरे समान मनु-

र्थोंका सुख प्राप्त होनेके योग्य धर्मका वर्णन करिये!

भीष्म बोले, हे प्रभु भरत-सत्तम! ब्राह्मणोंको जो वाणप्रस्थ आदि चार आश्रम कहे गये हैं, हिंसामें प्रवृत्त क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण उसके अनुवर्त्ती नहीं होते। क्षत्रियोंको जो युद्धमें विजय लाभ प्रभृति स्वर्ग प्राप्त होने योग्य अनेक भांतिके कार्य्य वर्णित हुए हैं; वह तुम्हारे पूछे हुए प्रश्नके उत्तरमें व्यवहृत नहीं होसकते; क्यों कि वे सब कर्म्म हिंसामें प्रवृत्त क्षत्रियोंके पक्षमें ही कहे गये हैं। ब्राह्मण कुलमें जन्म लेकर यदि कोई पुरुष क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके कर्त्तव्य कर्म्मोंका आचरण करे, तो वह मन्दबुद्धि इस लोकमें निन्दित और परलोकमें नरगामी होता है। हे पाण्डुनन्दन! पृथ्वीपर दास, कुत्ते, भेड़िये और अन्य पशुओंके विषयमें जो सब संज्ञा व्यवहृत होती है, ब्राह्मण यदि कुकर्म्मी हो तो उसके विषयमें भी वे ही सब संज्ञा व्यवहृत होती हैं। प्राणायाम आदि षट्कर्म्म और वाणप्रस्थ आदि चारों आश्रमोंमें प्रवृत्त हिंसा रहित, चपलता हीन, स्थिरचित्त, पवित्र स्वभाववाले, तपस्यामें, रत, आत्म शुभ इच्छासे रहित और धार्म्मिक ब्राह्मण अक्षय लोकमें वास करते हैं। जो पुरुष जैसी अवस्थामें जिस स्थान पर जैसा कार्य्य करता है वह उस ही कर्म्मसे उसके अनुरूप फल पाता है। हे राजेन्द्र! महान् वेदव्यासको भी क्षत्रिय वृत्ति, कृषि कर्म्म, वाणिज्य और मृगयासे जीविका निर्व्वाहके समान ही समझना चाहिये। प्रागभव वासना समूहही कालप्रेरित होकर उत्तम, मध्यम और अधम कार्य्योंको किया करती हैं, क्यों कि सब ही कालके वशमें हैं। शरीरके किये हुए प्राचीन पाप और पुण्यके फल सुख तथा दुःख आदि सब ही नाशमान हैं; परन्तु पर जन्ममें सुख आदि प्राप्त होनेके निमित्त जीव निज इच्छानुसार शुभ वा अशुभ निज कार्य्योंमें प्रवृत्त हुआ करता है।

६२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, धनुष चढ़ाना, शत्रुओंको मारना, कृषि, वाणिज्य, पशुओंका पालन और धन पानेकी इच्छासे दूसरे की सेवा करनी, ये सब ब्राह्मणोंके वास्ते अकार्य्य कहके वर्णित हुए हैं। बुद्धिमान गृहस्थको ब्रह्मविषयक षट्कर्म्मोंका आचरण करते हुए कृत-कृत्य होकर वनमें प्रवेश करना ही उत्तम है ब्राह्मणको उचित है, कि राजाकी सेवकाई, कृषिसे प्राप्त हुए धन, वाणिज्यसे जीविका निर्व्वाह, कुटिलता, कौलटेय अर्थात् परायी स्त्रीसे व्यभिचार और कुसीद अर्थात् ऋण देना वा उसकी वृद्धि तथा ब्याज लेना, इन सब कार्य्योंको परित्याग करे। महाराज! ब्रह्मबन्धु अर्थात् अधम ब्राह्मण और दुश्चरित्री, निजधर्म्मको त्यागनेवाला, वृषलीपति, धूर्त्त, नाचनेवाला, ग्रामप्रेष्य, और कुकर्म्मोंमें रत रहनेवाला ब्राह्मण शूद्रके समान हैं; इससे वह चाहे देवताओंके कहे हुए मन्त्रोंको जपे वा न जपे, दासोंकी भांति शूद्रोंकी पंक्तिमें भोजन करनेके योग्य होजाता है। महाराज! राजसेवक सब ही शूद्रके समान हैं; इससे उन्हें देव कर्म्मोंसे रोकना उचित है। हे राजन्! ब्राह्मण मर्य्यादा-रहित, अपवित्र, क्रूरवृत्तिवाला हिंसक और निज धर्म्म तथा वृत्तिको त्याग करनेवाला हो, तो उसे हव्य कव्य आदि जो कुछ दिया जाता है, वह सब बिन दिये हुएके समान होजाता है, महाराज! इस ही कारण पितामहने ब्राह्मणोंके निमित्त पवित्रता, विनीतता और आश्रमोंका विधान किया है। जो धार्म्मिक सुशील, दयालु, सहनशील, ममतारहित, सरल कोमलतायुक्त, अनृशंस, क्षमावान पुरुष यज्ञादिकोंका अनुष्ठान करके सोमपान करते हैं,

वेही ब्राह्मण हैं, इसके अतिरिक्त पाप कर्म्म करनेवाले ब्राह्मण कहके नहीं गिने जाते। हे महाराज पाण्डुपुत्र! धर्म्मकी इच्छा करनेवाले पुरुष शूद्र, वैश्य अथवा क्षत्रियोंका आसरा ग्रहण करते हैं; इस ही कारण विष्णु सब वर्णोंको शान्ति-धर्म्ममें असमर्थ समझके उनके मंगलकी इच्छा नहीं करते। इससे स्वर्गलोकमें सुख आदि प्राप्त होनेकी लालसासे चारों वर्णोंके वेदवाद, सब भांतिके यज्ञ और सब लोगोंकी समस्त क्रिया नष्ट होती हैं; तथा आश्रमस्थ पुरुष भी निज धर्म्ममें स्थित नहीं रहते। हे पाण्डुनन्दन! जिससे राजा निज राज्यमें ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र इन तीनों वर्णोंको यथा उचित आश्रमोंके धर्म्माचरण करानेकी इच्छा करेगा अब उस अवश्य आचरणीय चातुराश्रम दृष्ट समस्त धर्म्मोंको सुनो। हे पृथ्वीनाथ! वेदान्तमें अधिकार रहित परन्तु पुराणादिकोंसे आत्मशुभेच्छु जो शूद्रपुत्र उत्पन्न करके शरीरके सामर्थके अनुसार त्रैवर्णिक कार्य्योंका आचरण करके राजाके समीप जाहिर होताहै, वैसे योग्य-शास्त्रमें अनधिकारी त्रैवर्णिक समान शूद्रके विषयमें त्यागके अतिरिक्त सब आश्रम ही विहित हुआ है। हे राजेन्द्र! इसी भांति स्वधर्म्माचारी शूद्रके वास्ते भैक्षचर्य्य रूप चौथा आश्रम भी कहा गया है। महाराज! वैश्य और क्षत्रिय भी इस धर्म्मका आचरण करें। वैश्य लोग परिश्रमके सहित पशुपालन रूप धर्म्मोंका आचरण करते हुए गृहस्थाश्रममें कृतकृत्य होकर राजाकी आज्ञानुसार क्षत्रिय आश्रमका आसरा ग्रहण करे। हे बोलनेवालोंमें मुख्य युधिष्ठिर! क्षत्रिय लोग धर्म्मपूर्व्वक राज-शास्त्र और वेद पढ़के पुत्र उत्पन्न आदि कर्म्म, सोमपान, धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन, रणभूमिमें विजय लाभ और राजसूय, अश्वमेध आदि यज्ञोंको करके ब्राह्मणोंको आह्वान कर यथा उचित दक्षिणा प्रदान करें। हे क्षत्रियर्षभ पाण्डुपुत्र! तिसके अनन्तर प्रजापालनमें समर्थ पुत्रको अथवा शास्त्रमें कहे हुए लक्षणोंसे युक्त अन्य गोत्री क्षत्रियको निजसिंहासन पर बैठाके पितृयज्ञसे पितरों, यज्ञादिकोंसे देवताओं और वेदोंसे ऋषियोंको यत्नपूर्व्वक यथारीतिसे पूजा कर अन्त समयमें आश्रमान्तरमें गमन करनेकी इच्छा करें। हे राजन्! इसी भांति यथा रीतिसे सब आश्रमोंके धर्म्माचरण करनेसे क्षत्रिय सिद्धिलाभ कर सकते हैं। हे राजेन्द्र! क्षत्रिय लोग गृहस्थ धर्म्म त्याग कर अपनेको राजर्षि न समझके केवल मात्र जीवन रक्षाके निमित्त भिक्षावृत्ति अवलम्बन करें; परन्तु भोगकी अभिलाषासे वैसी वृत्तिको अवलम्बन न कर सकेंगे। हे बहुतसी दक्षिणा देनेवाले! आर्य्य लोग कहा करते हैं, कि यह भैक्षचर्य्य धर्म्म क्षत्रियादिक तीनों वर्णोंकेनिमित्त नित्य नहीं है, वे लोग इच्छानुसार इस धर्म्मको ग्रहण करते वा नहीं भी कर सकते हैं। हे राजन्! लोकसमाजमें श्रेष्ठ धर्म्म आचरण करनेवाले क्षत्रियोंको बाहुबलसे सब प्राणियोंको वशमें करना उचित है; क्यों कि वेदमें ऐसा कहा गया है, कि ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र इन तीनोंके धर्म्म तथा उपधर्म्म सब राजधर्म्मसे ही उत्पन्न हुए हैं। महाराज! जैसे क्षुद्र जन्तुओंके पांवके चिन्ह हाथीके पांव चिन्हमें लीन होजाते हैं, वैसे ही सब भांतिके धर्म्मको ही राजधर्म्ममें लीन समझना चाहिये। धर्म्मजाननेवाले पुरुष अन्य सब कर्म्मोंको अल्प आश्रय और स्वल्प फलदायक कहा करते हैं; क्यों कि आर्य्य लोग महाआश्रय, अनेक भांतिसे कल्याणदायक क्षात्रको ही धर्म्म कहते हैं, और इतर धर्म्मोंको धर्म्म नहीं कहते हैं। हे राजन्! सब धर्म्मोंमें राजधर्म्म मुख्य है, राजधर्म्मसे ही सब वर्ण रक्षित होते हैं और राजधर्म्ममें ही सब भांतिके दान कहे गये हैं, इससे राजधर्म्म ही मुख्य है; क्यों कि आर्य्य लोग

दानको ही सबसे श्रेष्ठ कहा करते हैं। राजाओंके दण्डनीति रहित होनेपर खेवनेवालेसे हीन नौकाकी भांति तीनों डुबते हैं, इससे सब धर्म्म ही नष्ट होजाते हैं। प्राचीन क्षत्रियधर्म्मको त्यागने पर सब आश्रम-धर्म्म भी नष्ट होजाते हैं। राजधर्म्ममें ही सब भांतिका दान दीख पड़ता है, दीक्षाकी सब रीति राजधर्म्ममें ही कही गई हैं; सब विद्या राजधर्म्मसे युक्त और सब लोग ही राजधर्म्ममें प्रविष्ट हैं। हे महाराज! अधिक क्या कहूं, जैसे मृगोंका समूह नीचोंसे पीड़ित होकर उन मारनेवालोंके सुने तथा देखे हुए धर्म्मनाशका कारण होता है, वैसे ही यज्ञादि समस्त धर्म्म, कर्म्म राजधर्म्ममें नियुक्त होनेपर चोर लोग उन यज्ञादिकोंका नाश करते हैं, इससे लोग यज्ञादिकोंका अनादर करते हुए आत्मरक्षाके वास्ते निज धर्म्मको परित्याग करते हैं।

६३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे पाण्डुनन्दन! लौकिक, वैदिक, चारों आश्रम और यतिधर्म्म राजधर्म्ममें ही स्थित हैं। हे भरतसत्तम सब धर्म्म ही क्षात्रधर्म्मके अधीन हैं, इससे क्षात्रधर्म्मके अस्थिर होनेसे सब प्राणी विषरहित सर्पकी भांति नष्ट होते हैं। महाराज! आश्रमवासियोंके धर्म्म अप्रत्यक्ष और बहुद्वार हैं, परन्तु पुण्य वचनोंसे लोक निश्चयवादी और धर्म्मतत्त्वको न जाननेवाले सब लोग परिणामफलको बिना विचारे ही अन्य धर्म्मसे नष्टबुद्धि होकर विरुद्ध वचनोंसे उनके उस नित्यभावको प्रकाशित किया करते हैं। हे महाराज युधिष्ठिर! जैसे गार्हस्थ्य नामक धर्म्माश्रममें तीनों वर्णोंके धर्म्मका अन्तर्भाव प्रकट हुआ है, वैसे ही इस राजधर्म्मके बीच नैष्ठिक वाणप्रस्थ, यति और ब्राह्मण आदि सब धर्म्म तथा उत्तम चरित युक्त इतर धर्म्मोंके सहित सब प्राणी ही अन्तर्हित हुए हैं। हे राजेन्द्र! जिस प्रकार शूर और राजाओंकी दण्डनीति और आश्रम विहित सब धर्म्मश्रेष्ठ हैं, इस विषयको दृष्टान्तके सहित मालूम करनेके वास्ते सब प्राचार्य्योंके ईश्वर देवताओंने प्रभु, नारायण विष्णुके निकट गमन करके उनकी उपासनाकी थी; वह उदाहरण मैंने तुमसे पहिले ही कहा है। अब जिस प्रकार साध्य, देवता, वसु, रुद्र, विश्व और मरुत आदि तथा दोनों अश्विनीकुमार आदि देव नारायणसे उत्पन्न होके क्षात्रधर्म्ममें प्रवृत्त हुए थे; उस धर्म्म पूरित अर्थ युक्त इतिहासको तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं। सुनो? हे राजेन्द्र! पहिले जब दानव रूपी समुद्र निज मर्य्यादा अतिक्रम करके देवताओंको पीड़ा देनेवाला हुआ था; उस समय पृथ्वी पर मान्धता नाम एक बलवान राजा थे। हे राजशार्दूल! राजाने आदि, मध्य और अन्तहीन देवोंके देव परमेश्वर नारायणके दर्शनकी इच्छासे यज्ञ किया; तब विष्णु इन्द्रका रूप धरके उनके दृष्टि-गोचर हुए। अनन्तर राजा मान्धाताने सभामें स्थित राजाओंके सहित उस प्रभु इन्द्रके चरण पर गिरके उनकी यथारीतिसे पूजाकी। हे युधिष्ठिर! तिसके अनन्तर महात्मा इन्द्रके सङ्ग राजसिंह मान्धाताका महातेजस्वी विष्णुके विषयमें यह महत् सम्वाद हुआ था।

इन्द्र बोले, हे धार्म्मिक श्रेष्ठ! तुम्हारा क्या अभिप्राय है? तुम किस कारणसे उस अप्रमेय, अनन्त मायासे युक्त, अमित मन्त्रवीर्य्य आदिदेव पुरुष पुराण नारायणको देखनेकी इच्छा करते हो? हे राजन्! दूसरेकी बात तो दूर रहे, ब्रह्मा अथवा मैं भी उस विश्वरूप परम देव विष्णुका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर सकता; इससे इसके अतिरिक्त तुम्हारे मनमें दूसरी जो अभिलाष हो, वह सब पूरी करूंगा; क्योंकि

तुम मर्त्य-लोकवासी प्राणियोंके मुख्य महा-राज हो। तुम शान्त, धर्ममें तत्पर, जितेन्द्रिय और शूर हो; तुम्हारी बुद्धि, भक्ति तथा महत् श्रद्धासे देवताओंको परमप्रीति प्राप्त हुई है, इससे मैं तुम्हें अभिलषित वरदान करूंगा।"

मान्धाता बोले, हे भगवन्! मैं निज मस्तकसे आपको प्रसन्न करके निश्चय ही उस आदि-देव विष्णुके दर्शनकी इच्छासे अन्य सब कामना परित्याग करके साधुओंसे अवलम्बित और लोक दृढ़ वनके बीच गमन करनेकी इच्छा करता हूं! मैंने विपुल, अप्रमेय क्षात्र धर्मसे सबको अपने वशमें करके पालन किया; परन्तु आदिदेव विष्णुसे जो धर्म्म प्रवृत्त हुआ है, किस प्रकार उस लोकश्रेष्ठ धर्मका आचरण किया जाता है; उसे नहीं जान सका।"

इन्द्र बोले, क्षत्रिय धर्म्मके बिना सब लोग धर्म्मकी पराकाष्टाको नहीं प्राप्त होते, क्योंकि पहिले आदिदेव नारायणसे क्षात्र धर्म्म ही प्रवृत्त हुआ था, और उसके अनन्तर उस हीसे उसके अङ्गरूप इतर धर्म्म सब प्रवृत्त हुए हैं। हे राजन्! अन्तभूत ये सब धर्म्म अचिर-स्थायी हैं, परन्तु परिव्राजक धर्म्मके सहित यह क्षात्रधर्म्म ही अनन्त और सबसे श्रेष्ठ है। सब धर्म्म ही इस क्षात्र धर्म्ममें प्रविष्ट हैं, इस ही कारण आर्य्य लोग इसे श्रेष्ठ कहा करते हैं पहिले विष्णुने अत्यन्त तेजस्वी देवताओं और ऋषियोंके कर्म्मसे प्रसन्न होके क्षात्र धर्म्म अवलम्बन करके ही उन लोगोंको शत्रुओंके हाथसे बचाया था; यदि वह अप्रमेय भगवान विष्णु देवताओंके शत्रु असुरोंका नाश न करते, तो ब्राह्मण लोग, ब्रह्मा, क्षात्रधर्म्म अथवा ब्रह्मादि अन्य किसी धर्म्मकी भी रक्षा न होती। देवताओंमें श्रेष्ठ आदि देव विष्णुने पराक्रम प्रकाश करनेके वास्ते असुरोंके सहित इस पृथ्वीको नहीं जय किया, परन्तु उसमें ब्राह्मणोंकी रक्षा करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था। क्योंकि ब्राह्मणोंके नष्ट होनेसे चारों वर्ण अथवा चारों आश्रम आदि कोई धर्म्म ही न रहते। सैकड़ों प्रकारसे नष्ट हुआ वैष्णव धर्म्म क्षात्र धर्म्मके जरिये फिर वृद्धिको प्राप्त हुआ है; और प्रति युगोंमें प्रवृत्त ब्राह्मण धर्म्म भी क्षात्र धर्म्मसे रक्षित हुआ है, इस ही कारण आर्य्य लोग क्षात्रधर्म्म कोही श्रेष्ठ कहा करते हैं। रणभूमिमें शरीर त्यागना, सब प्राणियोंके ऊपर कृपा प्रकाशित करनी, सब लोगोंकी यथार्थ अवस्थाको मालूम करना, उन लोगोंका पालन तथा रक्षा और दुःखित तथा पीड़ित राजाओंका क्लेशोंसे मुक्त करना,— ये सब विषय क्षात्रधर्म्ममें विद्यमान हैं।

महाराज! राजाके भयसे ही सब लोग मर्य्यादा रहित, काम-क्रोधके वशीभूत और पाप कर्म्ममें प्रवृत्त नहीं होते, इस ही से अन्य सब धर्म्मोंके जाननेवाले बुद्धिमान् राजधर्म्मको ही धन्यवाद दिया करते हैं। सब प्राणी पुत्रकी भांति राजासे पालित होकर निर्भय चित्तसे पृथ्वीपर विचरते रहते हैं। यह लोकश्रेष्ठ क्षात्र-धर्म्म सब प्रकारसे समस्त धर्म्मोंका साररूप है, और इसके जरियेसेही मोक्ष पद प्राप्त होता है।

६४ अध्याय समाप्त।

इन्द्र बोले, हे राजन्! तुम्हारे समान प्रजा समूहके हितमें तत्पर राजाओंको इसी भांति सब धर्म्मोंसे युक्त और समस्त धर्म्मोंसे श्रेष्ठ क्षात्र धर्म्मका सब भांतिसे रक्षा करनी उचित है; क्योंकि उसमें अन्यथा होनेसे प्रजाका अभाव होगा। सब जीवों पर कृपा करनेवाला राजा सब भांतिसे प्रजा पालन, राजसूय आदि यज्ञों और जिस प्रकार प्रचुर परिमाणसे सब भांतिके शस्य उत्पन्न हों, उसीका अनुष्ठान करे; भैक्षचर्य्यके अतिरिक्त अन्य सब आश्रमोंमें निवास और रणभूमिमें देहत्यागरूपी श्रेष्ठ

धर्म्माचरण करे । मुनि लोग दानको ही श्रेष्ठ कहा करते हैं, उसमें शरीर दान ही सबसे श्रेष्ठ है । हे राजन् ! जिस भांति राजा लोग सदा राजधर्म्ममें अनुरक्त होकर बहुश्रुत गुरुकी सेवा और आपसमें युद्ध करके रणभूमिमें निज शरीर दान किये हैं, उसे तुमने प्रत्यक्ष मालूम किया है । इसके अतिरिक्त धर्म्मकी इच्छावाले क्षत्रिय केवल मात्र सनातन धर्म्म रूप ब्रह्मचर्य्य नाम आश्रममें विचरें, और साधारणके विचार कार्य्योंमें प्रवृत्त होकर किसीको प्रिय अथवा अप्रिय न समझें । चारों वर्णोंका स्थापन, प्रजापालन और पहिले कहा हुआ योग, नियम, पुरुषार्थ तथा सब भांतिके उद्योग विद्यमान रहनेसे ही पण्डित लोग सब धर्म्मोंसे युक्त क्षात्रधर्म्मको ही श्रेष्ठ धर्म्म कहा करते हैं । "जो पुरुष निज आचरणीय धर्म्मको असत्य कहके निज धर्म्माचरण नहीं करते, आर्य्य लोग उन मनुष्योंको सदा अर्थलोपक, मर्य्यादाहीन और पशु तुल्य कहा करते हैं । हे राजन् ! जब कि अर्थ यागसे ही सब नीति मालूम होती हैं, तब सब आश्रमोंसे राजधर्म्म ही कल्याणकारी है । तीनों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंके, यज्ञादि और अन्य ब्राह्मणोंके जो सब आश्रम धर्म्म कहे गये हैं, पण्डित लोग इन दोनों कर्म्मोंकोही अवश्य आचरणीय कहते हैं, और इसके अतिरिक्त वे अन्य कोई कर्म्म करने पर शूद्रकी भांति शस्त्रसे मारने योग्य होते हैं । हे राजन् ! ब्राह्मण चारों आश्रमों तथा वेदमें कहे हुए धर्म्मका आचरण करें, परन्तु शूद्रादि वर्ण कभी भी उस धर्म्मका आचरण न करें और अन्य धर्म्ममें प्रवृत्त ब्राह्मणोंके विषयमें भी वैसी शक्ति नहीं कही गई है । महाराज ! जो जैसा कर्म्म करता है, उसके अनुरूप ही धर्म्म होता है और वह उस धर्म्मका स्वरूप ही होता है । "ब्राह्मण यदि कुकर्म्ममें रत होके निज कर्त्तव्य कर्म्मोंको न करे, तो वह सम्मान-लाभके योग्य नहीं होता और सबका अविश्वासी होजाता है । हे राजन् ! यह धर्म्म सब धर्म्मोंसे युक्त है, इस ही कारण क्षत्रियोंको इस धर्म्मके गौरवका उपाय करना उचित है महाराज ! इन सब कारणोंसे मेरे मतमें जैसे वीर धर्म्मके बीच वीर पुरुष ही मुख्य हैं, वैसे ही सब धर्म्मोंके बीच राजधर्म्म ही मुख्य है ।"

मान्धाता बोले, हे भगवान सुरनाथ ! यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, बर्व्वर, शक, तुषार, कङ्क, पह्लव, अन्ध्र, मद्र, पौण्ड्र, पुलिन्द, रमठ और काम्बोज लोग तथा ब्राह्मण क्षत्रियोंसे उत्पन्न हुए सब इतर जाति, वैश्य और शूद्र लोग राज्यके बीच स्थित होके किस प्रकार धर्म्माचरण करेंगे और मेरे समान मनुष्य किस प्रकार दस्युओंको धर्म्ममें स्थापित करेंगे, ? मैं यह सब आपके निकटमें सुननेकी इच्छा करता हूं, क्योंकि आप ही मेरे समान क्षत्रियोंके परम बन्धु हैं ।"

इन्द्र बोले, सब डाकुओंको माता पिता आचार्य्य गुरु आश्रमवासी और राजाओंकी सेवा करनी उचित है । वेदमें कहे हुए कर्म्म धर्म्म और श्राद्धादि पितृयज्ञ शूद्रका भी कर्त्तव्य कर्म्म कहके वर्णित हुआ है । वे लोग समयके अनुसार सदा ही द्विजोंको कूप, प्रपा शय्या और दूसरी सब वस्तु दान करें । दस्युओंको सदा अहिंसा, सत्य, क्षमा, पवित्रता, अद्रोह-वृत्ति, विभागका पालन, स्त्री-पुत्रोंका भरण पोषण इन सब धर्म्मोंका आचरण करना उचित है । उन ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले डाकुओंको सब भांतिके यज्ञ करके शास्त्रोंकी कही हुई दक्षिणा और महार्घ-पाकयज्ञमें प्राणियोंको अन्नदान करना उचित है । हे पापरहित महाराज ! पहिलेसे ही दस्युवृत्तिवाले पुरुषोंके विषयमें यही सब धर्म्म कहे गये हैं, और सब लोगोंको ऐसा ही आचरण करना उचित है ।

मान्धाता बोले, मनुष्य-लोकमें चारों आश्रमों

और वर्णोंके अन्तर्गत वर्त्तमान समस्त दस्यु लोग नष्ट हुआ करते हैं, इसका क्या कारण है?

इन्द्र बोले, हे पापरहित! दण्डनीतिके नष्ट और राजधर्मकी अस्थिरता होनेपर सब कोई राजदौरात्म्यदोषसे मोहित होजाते हैं। महाराज! इस सत्ययुगके निवृत्त होनेपर सब आश्रमोंमें विकल्प उपस्थित होगा, और पृथ्वीपर अमर्गगनत जटा आदि चिन्हधारी भिक्षुक भ्रमण करेंगे। वे लोग काम क्रोधके वशमें होकर प्राचीन धर्म्मकी परम गतिमें अवज्ञा प्रकाशित करके असत् मार्गको अवलम्बन करेंगे। परन्तु दण्डनीतिसे पापबुद्धिवालोंके निवृत्त होनेपर वह मङ्गलमय परम नित्यधर्म्म कदापि विचलित नहीं होता, जो सब लोगोंके गुरु राजाकी अवमानना करता है, उसके दान होम वा श्राद्ध आदि कुछ भी फलदायक नहीं होते। महाराज! अधिक क्या कहें देवता लोग भी सनातन देवरूपी मनुष्योंके स्वामी धर्म्मात्मा राजाकी अवमानना नहीं करते भगवान प्रजापति (ब्रह्मा) ने इस अखिल जगत्की सृष्टि की है, परन्तु वह भी इसके प्रवृत्ति और निवृत्तिके वास्ते सब धर्म्मोंके बीच क्षात्रधर्म्मकी ही इच्छा किया करते हैं। जो लोग प्रवृत्त धर्म्मगतिको स्मरण करके उसके अनुसार कार्य्य करते हैं, वह पुरुष ही हमारे मान्य और पूज्य हैं; क्यों कि वैसे धर्म्मसे ही क्षात्रधर्म्म प्रतिष्ठित है।"

भीष्म बोले, इतनी कथा कहके इन्द्ररूपधारी विष्णु भगवानने देवताओंसे घिरकर निज अच्युत नित्यपद स्थानके उद्देश्यसे गमन किया। हे पापरहित! जब कि उत्तम चरितसे युक्त सब कर्म्म पहिलेसे ही इसी प्रकार होते चले आये हैं, तब कौन बहुश्रुत सचेतन जीव उस क्षात्रधर्म्मकी अवमानना करेगा? अन्याय रीतिसे प्रवृत्त और निवृत्त सब धर्म्म ही मार्गमें चलनेवाले अन्धेकी भांति नष्ट होते हैं। हे पापरहित पुरुषसिंह! तुम सदा ही उस आदि कालसे प्रवर्त्तित और प्राचीन लोगोंके प्रत्यक्ष स्वरूप क्षात्र धर्म्मका आचरण करो; उससे ही तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा।

६५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपके कहे हुए वाणप्रस्थ आदि चारों आश्रमोंके सब धर्म्म मैंने संक्षेप रूपसे सुना, परन्तु उससे मेरा मन विशेष परितृप्त नहीं हुआ; इससे आप विस्तार पूर्व्वक फिर उन सब कर्म्मोंको मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे महाबाहो युधिष्ठिर! जो सब साधु-सम्मत धर्म्म मुझे विदित है तुम्हें वह सब मालूम हुआ है; परन्तु हे धार्म्मिक श्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर! तुम जो मुझसे लिङ्गान्तर्गत धर्म्मोंका विषय पूछते हो, उसे सुनो! हे मनुष्य श्रेष्ठ कुन्ती पुत्र! इन चारों आश्रमोंके कर्म्मोंके सब भांतिके लिंगही महा श्रेष्ठ राजाओंके आचरित राजधर्म्ममें वर्त्तमान हैं। हे युधिष्ठिर! राजा लोग दण्डनीतिके नियमानुसार प्रजापालन करनेसे काम-क्रोधसे रहित समदर्शी यतियोंकी भांति सन्न्याससे प्राप्त होने योग्य ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है, यथा स्थानमें दान निग्रह और अनुग्रह प्रयोग करते और शास्त्रमें कहे हुए सब कार्य्योंका आचरण किया करते हैं; वह गार्हस्थ्य पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य स्थानको अनेक युक्तिसे प्राप्त करते हैं। हे पाण्डुपुत्र! जो यथा रीतिसे प्रजासमूहको पालन किया करते हैं, वह राजा सब भांतिसे सन्न्यासियोंके पाने योग्य ब्रह्म-लोकको प्राप्त करते हैं। जो विपत्में पड़े हुए ज्ञाति, मित्र और जिनके सङ्ग सम्बन्ध है, ऐसे लोगोंको सामर्थ्यके अनुसार विपत्से बचाते हैं, वे वाणप्रस्थ पुरुषोंके भांति मोक्ष पद पाते हैं। हे पुरुषसिंह कुन्तीपुत्र!

लोकसमाजमें मुख्य धर्म्मात्माओंमें श्रेष्ठ पुरुषोंके सत्कार करनेवाले, नित्य ही बहुतसे पितृयज्ञ भूतयज्ञ और मनुष्य यज्ञोंके करनेवाले; देव-यज्ञोंसे उपस्थित अतिथि और अन्य प्राणियोंके यथावत सत्कार करनेवाले, और धर्म्मात्माओंकी रक्षाके वास्ते शत्रुराज्यको दमन करनेवाले, वे सब ही वाणप्रस्थ पुरुषोंकी भांति मोक्षपद प्राप्त करते हैं, हे राजेन्द्र पृथापुत्र! जो सब प्राणियोंका पालन और निज राज्यकी रक्षा करते हैं वे राजा प्रजापालनकी संख्याके अनुसार उतनेही यज्ञोंके फललाभ करके सन्यासस्से प्राप्त होने योग्य ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। सदा वेदाध्ययन, क्षमा, आचार्य्यकी पूजा और गुरुसेवासे भी ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। धर्म्म-पूर्व्वक नियमित जप और देवपूजामें रत राजा लोग धार्म्मिक पुरुषोंके प्राप्त होने योग्य पदको पाते हैं। प्राण संशय उपस्थित होनेपर भी जो राजा "विजय लाभ अथवा मृत्यु ही होगी," ऐसा ही निश्चय करके युद्धमें प्रवृत्त होते हैं, वे ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं। हे भारत! जो शठतारहित होकर सब जीवोंके विषयमें सरल भाव प्रकाशित करते हैं; उन्हें भी ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। जो वाणप्रस्थ और तीनों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंको बहुत सा धन दान करते हैं, वे वाणप्रस्थ पुरुषोंके पाने योग्य स्थानको प्राप्त करते हैं। हे भारत! जो राजा सब जीवोंपर दया और अनृशंसता प्रकाशित करता है, वह इच्छानुसार सब प्रकारका स्थान लाभ कर सकता है। हे पार्थ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! बालक और बूढ़ोंके विषयमें कुछ निठुर व्यवहार न करनेसे इच्छानुसार स्थान प्राप्त होता है। हे कुरुश्रेष्ठ! दूसरेके बलसे पीड़ित शरणागत जीवोंका परित्राण करनेसे गृहस्थोंके पानेयोग्य पद प्राप्त होता है। चराचर जीवोंको सब भांतिसे रक्षा और यथा उचित पूजासे शाश्वत पद प्राप्त होता है।

हे पार्थ! जेठे भाईकी स्त्री, भ्राता, पुत्र और पौत्रोंके समयानुसार निग्रह वा अनुग्रहके कार्य्य ही गृहस्थोंके कर्त्तव्य कर्म्म हैं। हे पुरु-षसिंह! प्रसिद्धात्मा पूजनीय साधुओंकी पूजा आदि करना ही गृहस्थ कर्म्म है। जो पुरुष विधाताकी बनाई धर्म्मरीतिसे निवास करते हैं वह सब आश्रमोंके प्राप्त होने योग्य मङ्गलमय स्थान प्राप्त करते हैं। आश्रमस्थ प्राणियोंको निज गृहमें आवाहन करके उन्हें भोजन आदि दान करना ही गृहस्थोंके कर्म्म हैं। हे कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! जिस पुरुषमें कोई गुण भी नष्ट नहीं होते, आर्य्य लोग उस पुरुषश्रेष्ठको आश्रमस्थ कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! सब आश्रममें ही स्थानमान, कुलमान और अवस्थामानकी रक्षा करते हुए निवास करना उचित है। हे पार्थ! राजा लोग देशधर्म्म और कुलधर्म्मोंका यथा-रीतिसे पालन करनेसे सब आश्रमोंमें प्राप्त होने योग्य फल लाभ करते है। यथा समय पर प्राणियोंको यथायोग्य विभूत और उपाय प्रदान करनेसे साधुओंके आश्रममें निवास करते हैं। हे कौन्तेय! भय उपस्थित होने पर धर्म्माधर्म्म और सेनासे रहित होकर भी जो धर्म्मकी ओर विशेष दृष्टि रखते है, वे सब आश्रमोंसे प्राप्त होने योग्य फल लाभ कर सकते हैं। धर्म्म करनेवाले पुरुष जिसके राज्यमें यथारीतिसे रक्षित होकर जो कुछ धर्म्माचरण करते हैं, वह राजा भी उन लोगोंके आचरित धर्म्मका अंशभागी होता है। हे पुरुषसिंह! परन्तु जो राजा धर्म्माराम और धर्म्ममें तत्पर मनुष्योंको रक्षा नहीं करते, वे उन लोगोंके किये हुये पापकर्म्मोंके फलभागी होते हैं। हे पापरहित युधिष्ठिर! जो लोग राजाओंकी सहायता करते हैं, वे दूसरेके किये हुए धर्म्मके अंश भागी होते हैं। हे पुरुषसिंह! हम लोग जिस धर्म्मकी उपासना करते हैं वह प्रकाशमान गृहस्थ धर्म्म ही सब धर्म्मोंसे पवित्र है। जो

दम्भ रहित और क्रोधहीन होकर सब प्राणियोंको अपने ही प्राण समान समझते हैं, वे इस लोक और मृत्युके अनन्तर परलोकमें भी सुख लाभ करते हैं। हे युधिष्ठिर! सत्वरूप मल्लाहसे युक्त, शास्त्ररूपी बन्धन-रस्सीसे पूरित दानरूपी वायुसे चलनेवाले तथा शीघ्रगामी राजधर्म्म रूपी नौका पर चढ़के संसार रूपी समुद्रके पार होते हैं। जब उनके हृदयकी सब वासना विषयोंसे निवृत्त होती हैं, तभी वह सतोगुणी होकर ब्रह्मको प्राप्त करते हैं। हे पुरुष शार्दूल नरनाथ! प्रजा पालनमें रत रहनेवाले राजा ध्यान और चित्त-निरोधसे प्रसन्न होकर महत धर्म्म लाभ करते हैं। हे युधिष्ठिर। तुम सदा वेदाध्ययनमें तत्पर और सत्कर्मोंमें रत रहनेवाले ब्राह्मणोंके पालनमें यत्नवान रहो। बाणप्रस्थ और दूसरे आश्रमवाले जो कुछ धर्मका आचरण करते हैं, राजा लोग प्रजा पालन रूपी धर्म्मसे ही उससे सौगुणा फल लाभ किया करते हैं। हे पाण्डव श्रेष्ठ! यही सब अनेक भांतिके धर्म्म तुम्हारे समीप कहे गये, तुम इस ही परम्परासे चले आये अनादि धर्म्मका अनुष्ठान करो। हे पुरुष-शार्दूल पाण्डुपुत्र! तुम सदा एकाग्र चित्तसे प्रजा पालनमें अनुरक्त रहो; ऐसा होनेसे ही चारों आश्रमों और चारों वर्णोंके फलको प्राप्त करोगे।

६६ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने चारों आश्रम और चारों वर्णोंके धर्म्म कहे, अब राज्यके सब कर्त्तव्य कार्य्योंको कहिये।

भीष्म बोले, राजाका अभिषेचन करना ही राज्यवासी सब लोगोंका कर्त्तव्य है, क्यों कि डाकू लोग राजाहीन और बल-रहित राज्यको आक्रमण किया करते हैं। अराजक राज्यमें एक दूसरे की रक्षाके निमित्त यत्नवान नहीं होते अधिक क्या कहें, आपसमें एक दूसरे की अनिष्टचिन्तामें ही तत्पर रहते हैं; इससे ऐसे राजा रहित राज्यको धिक्कार है। हे युधिष्ठिर! ऐसा ही सुना जाता है, कि राजाको आवाहन करनेसे इन्द्रका आवाहन समझा जाता है, इससे ऐश्वर्य्य की इच्छा करनेवाले पुरुषोंका इन्द्र की भांति राजा की भी पूजा करनी उचित है। मेरे मतमें राजाहीन राज्यमें वास करना उचित नहीं; क्यों कि वैसे राज्यमें अग्निदेव भी देवताओंके निकट हव्य नहीं पहुंचाते। परन्तु पराक्रमहीन अराजक राज्यके लोग राज्य की अभिलाषा करनेवाले दूसरे बलवान राजाके आगमन करने पर उठके उसका सम्मान करना ही उत्तम नीतिका कार्य्य है; क्यों कि पापमय राजाहीन राज्यसे अधिक दोष उत्पन्न होनेवाला और कोई भी कार्य्य नहीं है। उस बलवान राजाके प्रसन्न होनेसे ही सब मङ्गल है, अन्यथा वह कुपित होके सब देशोंको ही नष्ट कर सकता है।

महाराज! जो गऊ दूध दुहनेके समय विघ्न करती है, उसे बहुत ही क्लेश भोगना पड़ता है; परन्तु जो गऊ सहजमें दूध देती है, उसे कोई भी दुःख नहीं देता, और जो लकड़ी सहज होमें नत होती है, उसे अग्निमें जलानेकी आवश्यकता नहीं होती। हे वीर! इन दोनों उपमा पर दृष्टि रखके बलवानके निकट नत होना ही उचित है, क्यों कि बलवानके निकट नत होनेसे इन्द्रके समीप नत होना समझा जाता है। इससे राजरहित प्रजा-समूहको निज कल्याणके वास्ते राजा की रक्षा करनी उचित है, धन वा स्त्री आदिकोंके वास्ते नहीं। राजा रहित राज्यमें पापी पुरुष परधनको हरके अत्यन्त प्रसन्न होते हैं; परन्तु जब दूसरे पुरुष उनके धनको हरण करते हैं; तब वैसे लोग राजाके वास्ते इच्छा प्रकाशित करते हैं;

क्योंकि राजाके होनेसे पापाचारी पुरुष किसी भांति कल्याण लाभ नहीं कर सकते। हे युधिष्ठिर! अराजक होनेपर दो पुरुष एकके धनको और कई पुरुष मिलके दो जनोंके धनको हरण करते हैं; दासवृत्तिके अयोग्य पुरुषोंको बलपूर्व्वक दास बनाते और बलपूर्व्वक पराई स्त्रियोंको हरण करते हैं; इस ही कारण देवताओंने प्रजापालक राजाका नियम किया है। अधिक क्या कहें, यदि दण्ड धारण करनेवाले राजा सब लोकोंके सहित पृथ्वी की रक्षा न करते, तो बलवान लोग इस प्रकार निर्बल पुरुषोंको नष्ट करते, जैसे जलमें बड़े शरीरवाली मछली छोटी मछलियोंको भक्षण करती हैं। मैंने सुना है, जैसे बड़ी मछली जलमें छोटी मछलियोंको खाजाती हैं, वैसे ही अराजक राज्यकी प्रजा नष्ट हुई थी; इसी भांति जब आपसमें उन सब लोगोंका कुल नष्ट होने लगा, तब उन लोगोंने परस्पर मिलके शपथपूर्व्वक यह नियम स्थापित किया था, कि "हम लोगोंके बीच जो कोई निठुर वचन कहनेवाला, कठोर दण्डयुक्त और पराया धन हरनेवाला होगा, वह हम लोगोंसे त्याज्य समझा जायगा।" वे लोग सामान्य रूपसे सब वर्णवालोंके विश्वासके वास्ते आपसमें ऐसी ही प्रतिज्ञा करके विरोधरहित होके निवास करने लगे। तिसके अनन्तर वे सब कोई मिलकर पितामह ब्रह्माके निकट जाके उनसे बोले, हे भगवन्! हम लोगोंमें कोई राजा न रहनेसे हमारा दुःख बढ़ रहा है, और हम सब नष्टप्राय होगये हैं; इससे आप हम लोगोंके वास्ते एक राजा नियुक्त करिये, जो हम सब लोगोंकी प्रतिपालन करे और हम सब कोई मिलके जिसकी पूजा करें। तिसके अनन्तर पितामहने मनुको उन लोगोंका राजा होनेके निमित्त आज्ञा दिया, मनुने उनके उस वचनको स्वीकार नहीं किया, मनु बोले, पापपूरित कर्म आचरण करते मुझे अत्यन्त भय होता है, विशेष करके मिथ्यायुक्त मनुष्योंके बीच राज्य करना अत्यन्त ही कठिन है।

भीष्म बोले, प्रजा समूहने मनुका ऐसा वचन सुनके उनसे कहा, "आप न डरिये, पापसे आपको कुछ भय नहीं है, जो लोग पाप करेंगे वेही उसके फलको भोग करेंगे। हम लोग आपके कोष बृद्धिके वास्ते अपने प्राप्त हुए पशु, और सुवर्णके पचासवें भागका एक भाग और धान्यके दसवें भागमें एक भाग प्रदान करेंगे, विवाह उपस्थित होनेपर जिस कन्याका सबसे अधिक दायगा निरूपित होगा, आपको ही वह सुन्दरी कन्या प्रदान करेंगे। देवता जैसे इन्द्रके अनुगामी होते हैं, वैसे ही उत्तम वाहनोंपर चढ़े हुए शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ पुरुष आपके पीछे गमन करेंगे। आप इसी भांति बलशाली, प्रतापवान तथा दूसरेसे दुराधर्ष होकर इस प्रकार हम लोगों को रक्षा करिये, जैसे कुवेर यक्षोंको रक्षा करते हैं। प्रजा लोग राजासे रक्षित होकर जो कुछ धर्म्माचरण करेंगे आप उसके चतुर्थांश फलभागी होंगे; और उस ही धर्मसे बलवान होकर इस प्रकार हम लोगोंको रक्षा करियेगा, जैसे इन्द्र देवताओंको रक्षा करते है। आप मरीचिमाली सूर्य्यकी भांति शत्रुओंको सन्तापित करते हुए विजयके वास्ते यात्रा करिये और शत्रुओंका अभिमान नष्ट कीजिये; ऐसा होनेसे हम लोग सुख पूर्व्वक धर्म्माचरण कर सकेंगे।" महायशसे युक्त महातेजस्वी मनु प्रजापुञ्जसे इसी भांति पूजित होके निज तेज प्रभावसे दशों दिशाको प्रकाशित करते हुए बाहर हुए। उस समय अनगिनत श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न हुए पुरुष उनका अनुगमन करने लगे। देवता लोग उनका इन्द्रके समान महत्व देखके अत्यन्त ही भयभीत हुए और सबने निज धर्म्ममें चित्त लगाया। तिसके अनन्तर जैसे बादल जलकी वर्षासे

धूर्त्तोंको निवारण करतेहैं, वैसेही मनुने सबको पाप कर्म्मोंसे निवृत्त और निज धर्म्ममें प्रवृत्त करके पृथ्वीपर गमन किया । युधिष्ठिर ! इसी भांति पृथ्वीपर जो मनुष्य मङ्गल कामना की इच्छा करें, वे प्रजासमूहके अनुग्रहके वास्ते राजाको ही सबसे श्रेष्ठ समझें । जैसे शिष्य गुरुके समीप और देवता लोग इन्द्रके समीप नत हुआ करते हैं; वैसे ही राजाके समीप सदा विनीत भावसे रहा करें; क्यों कि स्वजनोंसे सत्कृत होनेपर शत्रुलोग भी सत्कार किया करते हैं, परन्तु स्वजनोंसे तिरस्कृत होनेपर शत्रु लोग भी अवज्ञा करते हैं । विशेष करके शत्रुओंके निकट राजा की पराभव होनी सबके दुःखोंका मूल है ।

तिसके अनन्तर प्रजासमूहने राजा मनुको छत्र, सवारी, शास्त्र आभूषण, खाने पीनेकी वस्तु गृह, आसन शय्या और दूसरी सब भांति की सामग्री प्रदान की । हे युधिष्ठिर ! राजा दूसरेके वास्ते प्रबल होवे, और अन्य मनुष्यके प्रश्न करनेपर हंसके मधुर वचनसे उत्तर देवे । उपकार करनेवालेके निकट कृतज्ञ, गुरु जनोंमें दृढ़भक्त, सबके सङ्ग संविभागी और जितेन्द्रिय होवे । दूसरेसे दूषित होनेपर सरलस्वभावसे सुन्दर तथा मनोहर दृष्टि उसकी ओर करे ।

६७ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतर्षभ पितामह ! ब्राह्मण लोग भी किस कारणसे मनुष्योंके प्रभु राजाको देवरूपी कहा करते हैं ?

भीष्म बोले, हे भारत ! पहिले वसुमनाने बृहस्पतिसे इस विषयमें जो कुछ पूछा था, पण्डित लोग इस प्रस्तावके उदाहरणमें उस ही प्राचीन इतिहासका प्रमाण देते हैं । सब लोगोंके हितमें रत, विनययुक्त वसुमनाने प्रजाओंके सुख की इच्छासे धर्म्मात्मा बृहस्पतिको सब भांतिसे शिष्टाचार प्रदक्षिणा तथा विधिपूर्व्वक प्रणाम करके राजाके समस्त कर्त्तव्य विषयोंको पूछा ।

वसुमना बोले, हे महाबुद्धिमान ! जीव लोग किस प्रकार उन्नत अवस्थाको प्राप्त होते, और किन कार्य्योंसे नष्ट होते हैं; और किसकी उपासनासे अनन्त सुख लाभ करते हैं ? महाबुद्धिमान बृहस्पति कल्याण चाहनेवाले वसुमनाके प्रश्नको सुनके आनन्दके सहित राज संस्कार विषयक सब वचन कहने लगे ।

बृहस्पति बोले, हे महाबुद्धिमान ! प्रजा जो कुछ धर्म्माचरण करती है, राजा ही उसका मूल है; क्यों कि वे लोग राजभयसे ही आपसमें हिंसा नहीं कर सकते । राजा ही धर्म्मपूर्व्वक मर्य्यादा रहित और पराई स्त्रियों तथा कुकर्म्मोंमें रत अखिल जगत्की प्रसन्नता सिद्ध करते हुए स्वयं प्रसन्नभावसे निवास करता है । महाराज ! जैसे सूर्य्य चन्द्रमाके उदय न होनेपर जीव लोग घोर अन्धकारमें फंसते और आपसमें एक दूसरेको नहीं देख सकते; जैसे थोड़े जलसे युक्त तालावके बीच मछलियें और हिंसा भयसे रहित पक्षी लोग बार बार हिंसा करते हुए विचरते हैं; तथा काल क्रमसे आपसमें किसीके भी वचन न सहके सबका वचन अतिक्रम और सबको पीड़ित करते हुए थोड़े ही समयमें नष्ट होजाते हैं, वैसे ही राजाके न रहनेपर प्रजा भी पालकहीन पशुकी भांति घोर अन्धकारमें पड़के नष्ट होजाती है । यदि राजा रक्षा न करता, तो बलवान पुरुष बलपूर्व्वक निर्ब्बलोंका धन हरलेते, वे लोग अपनी अपनी सामर्थ्यके अनुसार परम आग्रह करके भी उसकी रक्षा करनेमें समर्थ न होते । कोई भी "यह वस्तु मेरी है,"—ऐसा न समझ सकते; स्त्री, पुत्र, अन्न आदि खानेकी चीज अथवा दूसरी किसी वस्तुओंमें भी किसीका कुछ भी वश न रहता; राजाके रक्षा न करनेसे समस्त धन सब नरकसे नष्ट होजाता ।

यदि राजा पालन न करता, तो पापी चोर लोग सबके वस्त्र, आभूषण, सवारी, तथा दूसरे अनेक भांतिके रत्नोंको हर लेते। यदि राजा पालन न करता, तो धर्म्म-चारियोंके ऊपर बहुधा शस्त्र चलते, और सब कोई अधर्म्मका आसरा ग्रहण करते। रक्षा न करनेसे सब कोई वृद्ध माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि और गुरु जनोंको क्लेश देते अथवा उनका नाश करनेमें भी संकुचित न होते। यदि राजा पालन न करता, तो धनवान पुरुषोंको सदा ही वध बन्धन अथवा बहुत ही क्लेश प्राप्त होते; कोई भी किसी वस्तुको अपनी न समझ सकते। राजा रक्षा न करता, तो सब ही असमयमें ही मृत्यु-मुखमें पतित होते; सब लोग ही डाकुओंके वशमें होजाते तथा सब कोई घोर नरकमें पड़ते। यदि राजा रक्षा न करता, तो योनि दोष, कृषि और वाणिज्य कुछ भी न रहते; धर्म्म डूबता और वेदादि लुप्त होजाते। राजाके रक्षा न करनेसे सात प्रकारके दक्षिणायुक्त यज्ञ, विवाह अथवा समाज कुछ भी विधिपूर्व्वक न निर्व्वाहित होते। राजाका शासन न रहता, तो वृषभ भी गौवोंमें वीर्य्यसिञ्चन न करते; गगरी भी न मथी जाती; इससे अहीर लोग भी नष्ट होजाते। राजा रक्षा न करता, तो सब लोग ही भयभीत और व्याकुल होके हाहाकार करके चेतरहितकी भांति क्षणभरमें नष्ट होजाते। यदि राजा रक्षा न करता, तो कोई भी निर्भयचित्त होकर यथारीतिसे दक्षिणायुक्त सत्वत्सरिक यज्ञोंका अनुष्ठान न करते, राज्य शासन न रहता, तो विद्यास्नात, व्रतचारी, तपस्वी और ब्राह्मण लोग चारोंवेदोंको अध्ययन न करते। यदि राजा पालन न करता, तो जिस पुरुषने ब्रह्महत्यारोंका नाश किया है, वह धर्म्मपूरित कार्य्यकी प्रशंसा प्राप्त न कर सकता, परन्तु ब्रह्मघाती तथा आलसी होकर भ्रमण करता।

राजाका शासन न होता, तो चोर लोग हाथमें स्थित धनको भी हरण करते, पुल टूटते और प्रजा भी भयसे विकल होकर चारों, ओर भागने लगती। राजा यदि रक्षा न करता, तो चारों ओर अनीति फैल जाती, वर्णसङ्कर आदिकी बढ़ती होती और राज्यमें सदा दुर्भिक्ष उपस्थित होता। जैसे घरके दरवाजेको बन्द करके इच्छानुसार घरके भीतर शयन करते हैं, वैसे ही राजासे रक्षित होकर मनुष्य लोग निर्भयताके सहित सर्व्वत्र भ्रमण किया करते हैं। जब कि बलवानके प्रहार करनेपर भी निर्व्वल लोग सह लेते हैं, तब यदि धर्म्मात्मा राजा सब भांतिसे पृथ्वीको रक्षा न करते, तो दूसरे पुरुष जो अन्य पुरुषोंके कठोर वचनको सहते इसमें कौनसी विचित्रता है? राजा यदि यथारीतिसे रक्षा करे, तो सब आभूषणोंसे भूषित स्त्रिया भी निर्भयताके सहित राजमार्गोंमें भ्रमण कर सकती हैं। यदि राजा रक्षा करे तो आपसमें सब कोई सबके ऊपर कृपा करते हैं, और एक दूसरेकी हिंसा न करके धर्म्म मार्गसे ही गमन करते हैं। जब राजा प्रजाकी यथारीतिसे रक्षा करता है, उस समय ब्राह्मणादिक तीनों वर्ण अलग अलग यज्ञोंको करके देवताओंकी पूजा और चित्त स्थिर करके वेदाध्ययनमें तत्पर रहते हैं। वर्त्ता-मूल यह जगत् तीनों वेदोंसे ही रक्षित होता है; परन्तु राजाके उत्तम शासनसे ही वे सब भली भांति रक्षित होते हैं। जब राजा कठिन भार ग्रहण करके महत् बलके सहारे प्रजाओंकी रक्षा करता है, तब सब कोई प्रसन्नभावसे निवास करते हैं। जिसके स्थित रहनेसे सब ही स्वच्छन्दताके सहित निवास करते हैं और जिसके अभावसे ही सबका अभाव होता है; कौन पुरुष उसकी पूजा न करेगा? जो राजाका प्रिय और हितकारी होकर सब लोगोंको भय देनेवाला गुरु भारको उठाता है,

वह दोनों लोकोंको जय करनेमें समर्थ होता है। जो पुरुष मनमें भी राजाके अनिष्टकी शङ्का करेगा, वह निश्चय ही इस लोकमें क्लेश भोग करके परलोकमें नरकमें पड़ेगा। राजाको मनुष्य समझके कभी भी अवमानना करनी उचित नहीं है; क्यों कि वह महत् देवता नररूप धारण करके पृथ्वीपर निवास करता है। जो राजा समयानुसार पञ्चरूपके कार्य्योंको किया करते हैं, वे उस समय अग्नि, सूर्य्य, मृत्यु वैश्रवण और यम इन पांच भांतिकी पदवीको अन्यतम पदवीको प्राप्त करते हैं। जिस समय राजा वञ्चित होकर भी समीपस्थ पापोंको भस्म करता है; उस समय उसकी "पावक" संज्ञा होती है। जब दूतोंके जरिये सबके कार्य्योंका अनुसन्धान करते और प्रजा पुञ्जके मङ्गल जनक कार्य्योंका आचरण करते हैं, उस समय 'भास्कर' कहके माने जाते हैं। जब क्रुद्ध होकर पापी लोगोंका पुत्र पौत्र और सेवकोंके सहित सौ प्रकारसे नाश करते हैं उस समय उनकी "मृत्यु" संज्ञा होती है। महाराज! जब राजा धनसे उपकारियोंको तृप्त, और अपकारियोंके अनेक भांतिके रत्नोंको हरके किसीको श्रीयुक्त और किसीको नष्ट श्री करते हैं; उस समय वे "वैश्रवण" नामसे विख्यात होते हैं। जब तीक्ष्ण दण्डसे अधर्म्मियोंको निग्रह और धर्म्मात्माओंके ऊपर कृपा प्रकाशित करते हैं; उस समय उनकी 'यम' संज्ञा होती है। महाराज! जिसमें राजाका अपवाद होवे, ईश्वरके बनाये हुए द्वेष रहित, धर्म्मकी अभिलाषा करनेवाले दक्ष और अक्लिष्ट कर्म्मवाले मनुष्योंको वैसा कार्य्य करना उचित नहीं है; क्यों कि राजाकी प्रतिकूलता करनेसे कभी भी सुख नहीं मिल सकता। जो राजाके अपवाद जनक कार्य्योंको करता है, अग्नि सारथी जलती हुई अग्नि उसे भस्म करती है। परन्तु राजा जिसकी रक्षा करे, उसका किसी प्रकार नाश नहीं हो सकता, इससे राजाकी रक्षित वस्तुओंको दूरसे ही त्यागना उचित है। जैसे मृत्युसे अपनी रक्षा की जाती है, वैसेही राजस्व हरण होने पर भी आत्मरक्षा करनी उचित है; क्योंकि उसे स्पर्श करनेसे ही जैसे यन्त्र स्पर्शसे मृग नष्ट होते हैं, वैसे ही पुरुषोंका नाश होता है। बुद्धिमान मनुष्यको उचित है, अपने समान राजा की भी रक्षा करे। जो राजधन हरता है, वह सदाके वास्ते अचेतन, अप्रतिष्ठित, भयङ्कर और महत् नरकमें पतित होता है। महाराज! जिस की राजा, भोज, विराट्, सम्राट, क्षत्रिय, भूपति और नृपति आदि शब्दोंसे स्तुति की जाती है, कौन पुरुष उसकी पूजा न करेगा? इन्हीं सब कारणोंसे ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाला, जितात्मा जितेन्द्रिय, मेधावी, स्मृतिमान और दक्ष पुरुष राजाका आसरा ग्रहण करे। राजा भी कृतज्ञ, बुद्धिमान, उच्च कुलमें उत्पन्न हुए दृढ़भक्तिवाले, जितेन्द्रिय, धर्म्मनिष्ठ और नीतिज्ञ मन्त्रीका सत्कार करे। दृढ़भक्तियुक्त, बुद्धिमान, धर्म्म जानने वाले, जितेन्द्रिय, और शूर, बड़े कार्य्योंके करनेवाले और जो कहा करते हैं मैं अकेले ही इस कर्म्मको सिद्ध करूंगा, दूसरे सहायक की आवश्यकता नहीं है; वैसे ही लोगोंका आसरा ग्रहण करे। बुद्धि मनुष्यको प्रगल्भ करती है, परन्तु राजा सब भांतिसे सब लोगोंको प्रशंसा लाभ नहीं करने देता। राजा जिसे आक्रमण करे, उसे सुख कहां? परन्तु उसके अनुगत रहनेसे सब भांतिसे सुख मिलता है। हे नरेन्द्र! राजा ही प्रजासमूहके मानसिक उत्कर्ष, सत्गति, प्रतिष्ठा और परम सुख लाभका कारण है। जो लोग राजाका आसरा ग्रहण करते हैं, वे लोग इस लोक और मरनेके अनन्तर परलोकको भी जय करनेमें समर्थ होते हैं; महायशस्वी राजा लोग भी दम, सत्य और सुहृदताके सहित पृथ्वी

शासन करते हुए महत् यश करके अमर तथा नित्य पद प्राप्त करते हैं। राज सत्तम कौशल्य वसुमना बृहस्पतिके ऐसे वचन सुनके यत्नपूर्व्वक प्रजापालन करने लगे।

६८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! राजाके कर्त्तव्य कर्म्मके बाद और क्या शेष है? और वह दूत, सेवक, स्त्री, पुत्र तथा इतरवर्णके लोगोंमेंसे किसका किस भांति विश्वास करे तथा किसे किस भांतिके कार्य्योंमें नियुक्त करे; आप यह सब मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, महाराज! राजाको दूसरे जो सब कार्य्य करने उचित हैं, तुम एकाग्रचित्तसे उस समस्त राजनीतिको सुनो। राजा पहिले अपने चित्तको जीतकर तब शत्रुओंके जीतने की इच्छा करे? जिसने शत्रु आदि पञ्च इन्द्रियों और अपने चित्तको वशमें किया है, वैसा जितेन्द्रिय राजा ही शत्रुओंको जीतनेमें समर्थ होता है। हे पुरुषसिंह कुरुनन्दन! राजाको उचित है, "किला, राज्य-सीमाका अर्द्ध भाग, नगर, उपवन, अन्तःपुरके बगीचे, चतुष्पथ, पुर, अन्तःपुर और सब स्थानोंमें पैदल सेना स्थापित करे। जड़, अन्धे और बधिर रूपवाले, भूखप्यास आदि क्लेशोंको सहनेवाले, बुद्धिमान और परीक्षामें निपुण पुरुषोंको दूत-रूपसे नियुक्त करे। गुप्त चरोंको नियुक्त करके सब भांतिके सेवकों अनेक प्रकारके मित्रों और पुत्रोंके कार्य्योंकी परीक्षा करे। पुरजनपद और सामन्त राजाओंके समीप इस प्रकार गुप्त चरोंको नियत करे कि वे लोग आपसमें एक दूसरेको न जान सकें। हे भरतर्षभ! राजा अपने मल्लक्रीड़ा स्थान, समाज, भिक्षुक, पुष्पवाटिका, बाहिरी बगीचे, पण्डितोंकी सभा स्थान, अधिकारियोंके निवास स्थान, राजसभा और प्रधान पुरुषोंके गृह इन सब स्थानोंमें अनुसन्धान करनेसे ही शत्रुओंके भेजे हुए दूतोंको जान सकते हैं। हे पाण्डुपुत्र! बुद्धिमान राजा इसी भांति शत्रु-प्रेरित दूतोंको मालूम करे; क्योंकि पहिले दूतोंको मालूम करनेसे मङ्गल होता है। जब राजा स्वयं अपनेको बलहीन समझें, तब सेवकोंके सङ्ग विचार करके बलवानके साथ सन्धि करे यदि शत्रुसे अपनी हीनता न समझे, तौभी बुद्धिमान राजा थोड़े स्वार्थ लाभकी आशा रहनेपर भी शत्रुके साथ शीघ्र सन्धि करे जो लोग गुणवान, महा उत्साहयुक्त धर्म्म जानने वाले और साधु हैं, राजा वैसे पुरुषोंके सङ्ग सन्धि करके धर्म्मपूर्व्वक प्रजा पालन करे। बुद्धिमान राजा अपनेको उच्छिद्यमान समझके लोकद्वेषी पूर्व्व अपकारी लोगोंका नाश करे। जो राजा किसी भांति उपकार और अपकार करनेमें समर्थ न हो तथा अपना भी उद्धार करनेमें असमर्थ हो; उसके विषयमें उपेक्षा प्रकाशित कर सकते हैं! युद्धके वास्ते प्रस्थान करनेकी इच्छा होने पर पहिले नगर रक्षाका उपाय, यात्राकालकी सब वस्तुओंका संग्रह करके कल्याणजनक वचनोंसे अभिनन्दित और महत् बलसे युक्त होकर स्वच्छन्दताके सहित मूर्ख विचारहीन, वस्तुओंसे रहित दूसरेके साथ युद्धमें आसक्त असावधान और निर्व्वल राजाकी ओर चढ़ाई करे। यदि वह राजाबल और पराक्रमहीन होनेपर भी निज सामर्थ प्रकाशित करनेकी इच्छासे स्वयं वशमें न आवे, तो उसके राज्यमें निवास करके उसे सब भांतिसे पीड़ित करे। शस्त्र, अग्नि और विष आदिसे प्रजासमूहको मोहित करके उसके राज्यको पीड़ित करे; अपने सेवकोंके जरिये उसके मित्रों तथा सेवकोंमें भेद करा देवे। बृहस्पतिने कहा है, कि बुद्धिमान राजा राज्यकी अभिलाषासे युद्धमें बिना प्रवृत्त हुए ही सन्धि आदि तीनों उपायसे अर्थ संग्रह

करे। पण्डित राजा साम, दाम और भेद इन तीनों उपायसे जो कुछ धन प्राप्त कर सके, उसीमें सन्तुष्ट होवे।

हे कुरुनन्दन ! प्रजासमूहको रक्षाके वास्ते उनको प्राप्त हुई वस्तुओंमेंसे छठवां अंश कर लेवे पुरवासियोंको रक्षाके वास्ते मतवाले, उन्मत्त आदि दश वर्गगत लोगोंको दण्ड देकर उनसे बहुत वा थोड़ा जो हो, धन ग्रहण करे, क्योंकि उन लोगोंको दण्ड न देनेसे वे सब पुरवासियोंको क्लेश देते हैं। पुरवासियोंको पुत्र समान पालन करे, परन्तु विचार कार्य्यमें प्रवृत्त होकर स्वजन समझके उनके ऊपर स्नेह न करे। राजा वादी प्रतिवादियोंके वचनका विचार कार्य्य सुननेके वास्ते सदा सब अर्थोंके जाननेवाले पण्डितोंको नियुक्त करे, क्यों कि उनसे ही राज्य प्रतिष्ठित होता है। राजाको उचित है, सुवर्ण आदिकोंकी खान, लवण उत्पत्तिके स्थान धान्य आदि बिकनेके स्थान, नदी और हाथियोंके विचारके वास्ते निज हितकारी आत्मीय पुरुषको नियुक्त करे. सदा यथा रीतिसे दण्ड धारण करनेवाले राजा धर्म्मजनित फल प्राप्त करते हैं; क्यों कि समयके अनुसार दण्ड-विधान ही राजाओंका परम धर्म्म कहके वर्णित हुआ है। हे भारत ! राजाओंको वेद वेदाङ्ग आदि सब विद्याओंको कोशिशकर पढ़ना और बुद्धिमान, तपस्यामें रत, सदा दानशील तथा यज्ञशील होना उचित है; क्यों कि व्यवहार लुप्त होनेसे उसे स्वर्गलाभ ही कहा और यश ही कहां है ? दूसरे बलवान राजासे पीड़ित होनेपर बुद्धिमान राजा किलेके भीतर आश्रय ग्रहण करे, और समयके अनुसार मित्रका आवाहन करके उनके सङ्ग साम, भेद, वा विग्रह विषयक युक्तिको निर्णय करे। वनके मार्गोंमें अहीरोंको स्थित करे; आवश्यकता होनेपर गावोंको एक स्थानसे उठाके उन लोगोंको उपनगरमें प्रवेश करावे। राज्यमें जो सब गुप्त और कठिनतासे जानने योग्य स्थान हैं, युद्ध उपस्थित होनेपर धनशाली और बलवान् कुल-योंको मीठे वचनसे धीरज देके उन्हीं स्थानोंमें भेजे। राजा स्वयं उपस्थित होके निज राज्यके शस्योंको पृथक् करके मार्ग बनावे, और उसमें यदि प्रवेश न कर सके, तो चारों ओरसे आग लगाके वह सब भस्म कर देवे। शत्रुके मित्रोंमें भेद कराके अथवा निज बलसे ही शत्रुके खेत-स्थित शस्योंको नष्ट करे। नदी पथमें स्थित बांधोंको तोड़ देवे; दीर्घिकाके जल सब बाहर कर देवे और जिस जलको बाहर करनेको उपाय न होवे, वैसे जलको विषादिकोंसे दूषित कर देवे। विशेष मित्रकार्य्य उपस्थित होनेपर भी उसे परित्याग कर वर्त्तमान और भविष्यकार्य्योंकी चिन्ता करते हुए रणभूमिमें शत्रुके पराजित करनेमें समर्थ शत्रुके शत्रुओंके साथ मित्रता करके उनको सेनासे ही शत्रुको निज देशसे दूर करे। जिसमें शत्रु लोग आश्रय ले सकें, वैसे छोटे छोटे किलोंको तोड़ देवे चैत्यवृक्षके अतिरिक्त अन्य सब क्षुद्र वृक्षोंको जड़ काट दे; परन्तु चैत्यवृक्षका पत्ता पर्य्यन्त भी न तोड़े, किलेकी दीवार, शूरवीरोंके निवासस्थान सब तैय्यार करे; वायुका निकास, किलेसे बाहरी शत्रुओंको देखना और उनके ऊपर अस्त्रशस्त्र और गोली चलानेके वास्ते किलेकी दिवारोंमें छोटे छोटे छेदोंको तैय्यार करावे। किलेकी खांई घड़ियाल और बड़ी शरीरवाली मछलियोंसे परिपूरित करे। नगरसे बाहर जानेके वास्ते छोटे द्वार बनाके अन्य दरवाजोंकी भांति उसकी भी रक्षाको उपाय करे। सब दरवाजों-पर बड़े यत्न और आवश्यकता होनेपर चलाई जा सकें, ऐसी शतघ्नी स्थापित करे। बहुत सा काष्ठ संग्रह कर रखे, जगह जगह कूएं खुदवावे और जो सब कूएं जलकी इच्छासे दूसरे पुरुषोंने पहिलेसे खोद रखे हैं, उसके जलको शुद्ध करावे। बेत मढ़ीनेमें तृण आदिसे छाये

हुए गृहोंमें गोली मट्टी लेपन करावे और अन्य स्थानोंके अरक्षित तृणोंको उठवा डाले। उस समय राजा रात्रिमें ही भक्ष्य आदि वस्तुओंको पाक करावे और अग्निहोत्रके अतिरिक्त दूसरे किसी कार्य्यमें भी दिनके समय अग्नि न जलने देवे। लोहसार और सूतिका गृहको भली भांति रचित करके अग्नि प्रज्वलित करावे और उस अग्निको गृहके भीतर प्रविष्ट करके पत्ते आदिकोंसे छिपा रखे। पुरीकी रक्षा करनेके वास्ते जो दिनमें अग्नि जलावेगा, उसे प्राण दण्ड होगा" ऐसा ही ढिंढोरा दिला देवे। हे नरश्रेष्ठ! उस ही समय भिक्षुक, शकटवाले, क्लीव, उन्मत्त और कुशील पुरुषोंको राज्यसे बाहर करे; क्यों कि उस समय उन लोगोंके राज्यमें रहनेसे अनेक दोष उपस्थित होता है। चौराहे, मन्त्रादि अठारह भांतिके तीर्थ सभा और साधारण पुरुषोंके गृहोंके निमित्त उचित रीतिसे प्रहरी नियुक्त करे। राजाको उचित है, बहुत बड़ा राजमार्ग तैय्यार करावे, और जलका स्थान तथा बेचने खरीदनेकी जगह निर्दिष्ट कर दे। हे कुरुनन्दन युधिष्ठिर! भण्डार, शस्त्रागार, योधागार, घुड़शाल, गजशाला सेनाका निवास स्थान, परिखा, भीतरी मार्ग और अन्तःपुरके बगीचे सब इस प्रकार गोपनीय स्थानमें तैय्यार करावे, कि दूसरा कोई किसी प्रकार भी देख न सके। पराये बलसे पीड़ित राजा तेल, चर्बी, मधु, घृत, अनेक भांतिकी औषधी और धन आदि सञ्चय करे। अङ्गार, कुश, मूंज, पत्र, शर, लेखक, घास, काठ और विषमें बुझे हुए बाण, शक्ति, ऋष्टि, प्रास आदि अस्त्रों और वर्म्म आदि आवश्यकीय वस्तुओंको संग्रह कर रखे। सब भांतिकी औषधी, मूल, फल और विष, भक्ष्य, रोग और कृत्या इन चार भांतिके उत्पातोंको शान्त करनेवाले, चार भांतिके वैद्योंका संग्रह करे। नट, नाचनेवाले, मल्ल और मायावियोंसे राजनगरीको शोभित और दूसरे सब पुरुषोंको आनन्दित कर रखे। सेवक, मन्त्री और पुरवासियोंमेंसे जिससे शङ्का हो, उसे अपने वशमें कर रखे। हे राजेन्द्र! यदि राजा क्रोधके वशमें होकर अकारण ही दूसरेको अवमानना वा ताड़ना करे, तो शास्त्रमें कहे हुए यथा उचित बहुत सा धन-दान, और अनेक भांतिके शान्त वचनसे उसका सम्मान करनेसे उससे उऋणी होगा। जो सात विषय राजाको अवश्य रक्षा करनेके योग्य हैं, उसे सुनो;—हे कुरुनन्दन! राजाको उचित है, कि आत्मा, सेवक, कोष, दण्ड, मित्र, जनपद और पुर इस सप्तात्मक राज्य सब भांति यत्नपूर्व्वक प्रतिपालन करे।

हे पुरुषसिंह! जिन राजाओंने षाड़्गुण्य त्रिवर्ग और परम त्रिवर्ग मालूम किये हैं, वेही इस पृथ्वीको भोग करनमें समर्थ होते हैं। हे युधिष्ठिर! मैंने जो षाड़्गुण्यकी कथा कही, उसे सुनो,—शत्रुके साथ सन्धि करके निःशङ्क चित्तसे निवास; शत्रुके ऊपर चढ़ाई, शत्रुको भय दिखानेके वास्ते यात्राका छल दिखाके निवास करना, द्वैधी भाव और अन्य किला तथा दूसरे प्रबल राजाका आसरा ग्रहण करना, येही छः राजाके षाड़्गुण्य कहाते हैं। त्रिवर्गकी कथा जो मैंने कही है, उसे भी एकाग्रचित्तसे सुनो;—क्षय, स्थान और वृद्धि येही त्रिवर्ग हैं, धर्म्म, अर्थ और काम ये परम त्रिवर्ग हैं; समयके अनुसार इनका आचरण करना उचित है। इसी भांति राजा धर्म्मपूर्व्वक सदा पृथ्वी पालन किया करते है। हे यादवीनन्दन! तुम्हारा मङ्गल हो, इस ही अर्थमें बृहस्पतिने जो दो श्लोक कहे थे, उन दोनोंको तुम्हें सुनना उचित है। "पृथ्वी और पुरवासियोंको यथारीतिसे पालन और दूसरे सब भांतिके कार्य्य करके राजा लोग परकालमें सुख प्राप्त करते हैं। जो प्रजापुञ्जको यथार्थ रीतिसे

पालन करते हैं, वैसे रानियोंकी तपस्यादि क्या फल है ? और उन्हें यज्ञकी ही क्या आवश्यकता है ? क्यों कि वे स्वयं सब धर्म्मोंके जाननेवाले हैं ।

युधिष्ठिर बोले, पितामह ! दण्डनीति और समस्त राजा तथा सब ही इस उभय प्रकारसे व्यस्त हुआ करते हैं, तिसमेंसे किसे किस भांतिके कार्य्योंसे कैसी सिद्धि प्राप्त होती है, आप यह सब मेरे समीप वर्णन कीजिये ।

भीष्म बोले, हे भरत नन्दन महाराज ! दण्डनीतिसे जो राजा और प्रजाका महासौभाग्य होता है ; मैं युक्तियुक्त सिद्ध वाक्यसे वह सब वर्णन करता हूं, सुनो । राजाके यथा उचितसे चलानेपर दण्डनीति चारों वर्णोंकी प्रजाको अधर्म्मसे निवृत्त करके स्वधर्म्ममें स्थापित करती है ! चारों वर्णोंकी प्रजा स्वधर्म्ममें रत, सब मर्य्यादासे युक्त और दण्डनीति कृत मंगलके जरिये निर्भय होकर ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंके वास्ते सामर्थ्यके अनुसार यत्नवान होती है, और उससे ही मनुष्योंको परम सुख प्राप्त होता है । हे युधिष्ठिर ! काल ही राजाका कारण है, अथवा राजा ही कालका कारण है, तुम्हें जिसमें ऐसी शङ्का न उपस्थित होवे और इसे ही निश्चय जान रखो, कि राजा ही महा कालका कारण है । जब राजा पूरी रीतिसे दण्डनीति प्रयोग करता है, तभी कालक्रमसे सत्ययुग प्रवर्त्तित हुआ करता है, तिसके अनन्तर उस कृत युगमें केवल मात्र धर्म्म ही विराजमान रहता है ; अधर्म्म एकबारगी लुप्त होजाता और प्रजा पुरुषका मन नसमें रत नहीं होता । प्रजा संशयरहित होकर योगका आचरण करती है और उन लोगोंमें सब वैदिक गुण उत्पन्न होते हैं । सब ऋतु आपद रहित और सुखदायक होती हैं, मनुष्योंका स्वर, वर्ण और मन प्रसन्न रहता है, कोई रोगसे पीड़ित नहीं होता और किसीकी अल्पायु नहीं दीख पड़ती । युधिष्ठिर ! इस सतयुगमें कोई स्त्री विधवा तथा कोई कृपण नहीं होते बिना जोते ही पृथ्वीमें औषध और सब भांतिके अन्न उत्पन्न होते रहते हैं ; छाल, पत्ते, फल और मूल दृढ़ होते हैं । उस कृत-युगमें अधर्म्म लुप्त होजाता है और केवल मात्र धर्म्म ही विराजमान रहता है, हे युधिष्ठिर ! ऐसेही तुम सतयुगके धर्म्म समझ रखो !

जब राजा पूर्ण रीतिसे प्रवृत्त न होकर दण्डनीतिके चौथे अंशको परित्याग करके उसके तीन भागके ही अनुयायी होता है, तब ही त्रेतायुग प्रवर्त्तित होता है । उस त्रेतायुगमें तीन हिस्से धर्म्म और एक भाग अधर्म्म प्रचलित होता है ; जोतनेसे पृथ्वीमें अन्न और औषध उत्पन्न होते हैं ।

जब राजा दण्डनीतिका आधा भाग परित्यागके आधे भागके ही अनुवर्त्ती होके कार्य्य करता है, तब द्वापर नाम युग उत्पन्न होता है । उस समय लोग दो हिस्से अधर्म्म और दो भाग धर्म्मके अनुयायी होते हैं ; पृथ्वी जोतनेपर भी आधा ही फल देती है ।

जब राजा दण्डनीतिको त्यागके केवल मात्र असत् उपायसे ही प्रजा समूहको पीड़ित किया करता है, तभी कलियुग प्रवर्त्तित होता है, कलियुगमें कहीं भी धर्म्म नहीं दीख पड़ता, सब ही अधर्म्मसे परिपूरित और सब वर्ण ही निज कर्म्मोंसे विचलित हुआ करते हैं, शूद्र लोग भिक्षा वृत्ति और ब्राह्मण लोग दूसरेकी सेवासे जीविका निर्व्वाह करते हैं ; योग क्षेम पुरुष नष्ट होते और वर्णसङ्करोंकी बढ़ती होती है । वैदिक कर्म्मोंके अनुष्ठान करनेसे उसमें कुछ फल न होकर उलटा विगुण ही हुआ करता है, कोई ऋतु भी सुखदायक नहीं होती बल्कि सब ऋतुओंमें ही प्रजा रोगोंसे पीड़ित होती है । मनुष्योंके स्वर, वर्ण और मनका ह्रास होता ; है, और वे लोग रोग-पीड़ित

तथा अल्पायु होकर अकालमें ही मृत्युको प्राप्त होते हैं। हे युधिष्ठिर! कलियुगमें स्त्रियें विधवा, और प्रजा नृशंस कृपा करती हैं; बादल सब स्थानोंमें जलकी वर्षा नहीं करते; शस्य आदिक भी कभी कभी उत्पन्न होते हैं। जब राजा दण्डनीतिमें स्थित न होकर प्रजाके रक्षाकी इच्छा नहीं करता, उस समय सब रसोंका भी नाश होजाता है। राजा ही सत-युग, त्रेता, द्वापर और चौथे कलियुग,—इन चारों युगोंके परिवर्त्तनका कारण है। राजा सतयुगके आचरित हुए सब कार्य्योंसे अनन्त, त्रेतायुगके आचरणसे कुछ न्यून और द्वापर युगके आचरित धर्म्म और अधर्म्मकी संख्याके अनुसार अधिक वा अल्प स्वर्ग-सुख लाभ करता है। परन्तु कलियुगके आचरित कार्य्योंसे केवल पापयुक्त कष्ट ही भोग किया करता है। तिसके अनन्तर प्रजा समूहके आचरित पाप-पङ्कमें डूबके वह पापी नीचकर्म्म करनेवाला राजा अनेक वर्ष पर्य्यन्त नरकमें वास करता है।

युधिष्ठिर! क्षत्रिय निखिल दण्डनीतिमें तत्पर तथा उसे ही सम्मुखवर्त्तिनी करके सदा अप्राप्त वस्तुओंकी प्राप्तिके वास्ते यत्न और प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षाका उपाय करें। लोगोंको यथा उचित व्यवस्थापित करनेवाली मर्य्यादा और लोकभाविनी यह दण्डनीति पूर्ण रीतिसे चलाई जाने पर इस प्रकार सब लोगोंको रक्षा करती है, जैसे माता पिता बालकको रक्षा करते हैं। हे नरनाथ! राजाका दण्डनीति विशारद होना ही राज्यका परम धर्म्म है; क्यों कि यह निश्चय जान रखो, कि दण्डनीतिसे ही सब लोग भली भांति स्थापित हुए हैं। हे कुरु-नन्दन! मैं इस ही कारण कहता हूं, कि तुम नीति निपुण होके धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन करो; क्यों कि इसी भांति प्रजाकी रक्षा करनेसे दुर्ज्जय स्वर्गको भी जीतनेमें समर्थ होंगे।

६९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे नृनाथ! राजा कैसे कार्य्योंसे इस लोक और मृत्युके अनन्तर पर-लोकमें भविष्यत सुखदायक सब अर्थों को अना-यास ही प्राप्त कर सकते हैं?

भीष्म बोले, गुणवान मनुष्य जो सब धर्म्मका आचरण करके कल्याण प्राप्त किया करते हैं; अकटुक आदि छत्तीस गुणोंसे युक्त वह धर्म्म छत्तीस प्रकारका है। राग द्वेषसे रहित होके धर्म्म कार्य्योंका आचरण, लोभके वशमें न होकर परलोककी ओर दृष्टि रखके स्नेह प्रकाशित करना; किसी भांतिका निठुर आच-रण करके धन उपार्ज्जन न करना, और जिसमें धर्म्म तथा अर्थ नष्ट न होवे, उस ही भांति यथा उचित इन्द्रियोंकी प्रीतिका साधन करना उचित है। दीनता रहित होके प्रिय वचन कहे, शूर होके भी अपनी बड़ाई न करे, प्रगल्भ होकर भी दयावान होवे और दाता होके भी अपात्रको दान न देवे। अनार्य्योंके साथ सन्धि, बन्धुजनोंके सङ्ग विग्रह, अल्पान्न पुरुषको दूत कार्य्योंमें नियत और दूसरेको पीड़ित न करके कार्य्य करना उचित है। झूठेके निकट प्रयोजन कहना, अपने मुखसे निजगुण वर्णन करना, साधुओंके निकटसे धन हरण करना कर्त्तव्य नहीं है। बिना परीक्षा किये ही महा दण्ड प्रयोग, दूसरेके निकट विचार प्रकाश, लोभियोंको धन दान और अप-कारियोंका विश्वास करना उचित नहीं है। राजा सदा ईर्षारहित, गुप्तदार; शुद्ध और घृणा रहित होवे; जिससे हानि हो, वैसे अन्नको त्यागके शुद्ध अन्न भोजन करे और इकबारगी स्त्रियोंमें आसक्त न होवे। शान्तभावसे माननीय पुरुषोंका आदर, माया रहित होकर गुरुज-नोंकी सेवा, दम्भ रहित होकर देवताओंकी पूजा करे और जिस धनको लेना निषेध नहीं है उसे ही ग्रहण करे। प्रणय परित्याग करके सेवा करे और दक्ष होकर समयकी प्रतीक्षा

करे। धन देके सन्धि करना और आश्रयदान करके परित्याग करना उचित नहीं है। विशेष रीतिसे बिना मालूम किये प्रहार, शत्रुको नाश करके शोक, अकस्मात् क्रोध और अपकारियोंके निकट कोमलता प्रकाश करनी उचित नहीं है। हे युधिष्ठिर! यदि तुम कल्याण प्राप्तिकी इच्छा करते हो, तो राज्य करते हुए ऐसा ही आचरण करना; क्यों कि इसके विपरीत आचरणसे राजाओंका मङ्गल नहीं हो सकता। जो यथार्थ रीतिसे इन सब गुणोंके अनुसार कार्य्य करते हैं, उनका इस लोक और मृत्युके अनन्तर परलोकमें भी मङ्गल होता है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पाण्डुपुत्र भीमादिकोंसे रक्षित बुद्धिमान महाराज युधिष्ठिर शान्तनु-नन्दन भीष्मके ऐसे वचन सुनके उस समय उन पितामहको वन्दना करके उसही भांति आचरण करने लगे।

७० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मनुष्य किस प्रकार प्रजापालन करने पर आधिरूपी बन्धनमें नहीं फंसते और व्यवहार निर्णय आदि कार्य्योंमें भी अन्यथा नहीं होता; आप यह सब मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! मैं वह सम्पूर्ण नित्य धर्म्म संक्षेप रूपसे तुम्हारे निकट वर्णन करूंगा, क्यों कि वह समस्त धर्म्म विस्तारके सहित वर्णित होने पर कदापि शेष न होगा। तुम धर्म्ममें निष्ठावान, वेदज्ञ, देवपूजामें रत व्रत करनेवाले और गृहमें आये हुये गुणवान ब्राह्मणोंको सदा पूजा करना। ब्राह्मणोंके उपस्थित होने पर पहिले उठके सम्मान दिखाकर उनके दोनों चरणोंकी वन्दना करे; तिसके अनन्तर पुरोहितके साथ दूसरे सब कार्य्योंको करे। इसी भांति धर्म्म कार्य्योंको अन्य मङ्गल जनक कार्य्योंमें नियुक्त करके उनसे अर्थ सिद्धि-सूचक जय आशीर्व्वाद पाठ करावे। हे भारत! राजा काम क्रोध त्यागके सदा निजबुद्धिसे धीर और सरल भाव अवलम्बन करके यथार्थ प्राप्त वस्तुओंको ग्रहण करे। जो मूढ़ राजा काम क्रोधके वशमें होकर धन संग्रह करते हैं, वे धन वा धर्म्म कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकते। लोभी और मूर्खोंको लोभ युक्त धन सम्बन्धीय कार्य्योंमें नियुक्त न करके लोभरहित बुद्धिमान पुरुषोंको वैसे कार्य्योंमें नियत करना उचित है; क्योंकि कार्य्याकार्य्य विवेकसे रहित मूर्ख पुरुष धनाधिकारी होनेपर काम क्रोधके वशमें होकर प्रजासमूहको पीड़ित किया करता है। राजाको उचित है, कि गिनतीमें अधिक न हो, उस ही भांति उत्पन्न वस्तुओंमेंसे छठवां भाग बलि, शास्त्रके अनुसार अपराधियोंको दण्ड और मार्गमें बनियोंकी रक्षा करके जो वेतन प्राप्त होवे, उसीसे धन सञ्चय करे। राजा इसी भांति धान्य आदि वस्तुओंमें छठवां भाग कर ग्रहण करके राज्यको रक्षा करे, परन्तु यदि उन लोगोंके वार्षिक अहारके योग्य अन्न आदि न बचे, तो उन लोगोंके अहारके निमित्त उचित उपाय कर देवे। राजा यदि रक्षा करनेवाला, दाता, सदा धर्म्ममें रत, आलसरहित और काम क्रोधसे हीन हो, तो मनुष्य लोग उसमें अनुरक्त होते हैं। हे युधिष्ठिर! तुम कभी भी लोभके वशमें होकर अधर्म्म आचरणसे धन उपार्ज्जन न करना; क्यों कि जो शास्त्रके अनुकूल कार्य्योंको नहीं करते; उनका धर्म्म अर्थ सब मिथ्या होजाता है। राजा केवल अर्थ शास्त्रके वशमें होनेसे कभी धर्म्म और अर्थ प्राप्त नहीं कर सकते, वरन उनका वह अर्थ कुस्थानमें विनष्ट होता है। राजा जो मोहके वशमें होकर अशास्त्रीय कर ग्रहण करके प्रजापुञ्जको पीड़ित करते हुए स्वयं ही अपना नाश करता है; धन ही उसका मूल है। जैसे दूध चाहने-

वाला पुरुष गऊका स्तन काटनेसे दूध नहीं प्राप्त कर सकता, वैसे ही असत् उपाय अवलम्बन करके राज्यको पीड़ित करनेसे उसको कदापि बढ़ती नहीं होती। जैसे जो पुरुष सदा दूध देनेवाली गऊकी सेवा करता है, वही दूध पाता है, वैसे ही राजा भी उपाय आदिकोंसे राज्य पालन करनेसे ही सुख लाभ कर सकता है। जैसे माता बालकको स्तन दान करके दूध पिलाती है, वैसे ही पृथ्वी राजासे भली भांति रक्षित होनेपर दूध देनेवालीकी भांति अन्न तथा सुवर्ण आदि वस्तु प्रदान किया करती है, महाराज! तुम वृक्षकी जड़ काटनेवालेकी भांति न होकर पुष्प सञ्चय करनेवाले मालीकी वृत्ति अवलम्बन करके राज्यकी रक्षा करना ऐसा होनेसे बहुत दिनोंतक पृथ्वीको भोगनेमें समर्थ होगे। पर चक्रसे यद्यपि तुम्हारा धन क्षय हो, तो सामरूप उपाय अवलम्बन करके अब्राह्मणोंका धन ग्रहण करना। हे युधिष्ठिर! उन्नत अवस्थाकी तो कुछ बात ही नहीं है, अवनतिकी दशा उपस्थित होनेपर भी जिसमें ब्राह्मणको धनवान देखके तुम्हारा मन विचलित न होवे; तुम सदा उन ब्राह्मणोंकी रक्षा करना और निज शक्तिके अनुसार यथायोग्य धन दान करके उन लोगोंको सन्तुष्ट करना; ऐसा होनेसे दुर्जय स्वर्ग लाभ कर सकोगे। हे कुरुनन्दन! तुम इसी भांति धर्मवृत्ति अवलम्बन करके प्रजा-पालन करनेसे परिणाममें शुभजनक पुण्य और नित्य यश प्राप्त करोगे। हे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर! तुम धर्म और व्यवहारके अनुसार यथा नियमसे प्रजा पालन करो, ऐसा होनेसे कभी भी आधि-रूपी बन्धनमें नहीं फंसोगे। जब कि चराचर जीवोंकी रक्षा करना ही परम धर्म और परम दया करके वर्णित हुआ है; तब राजा प्रजा समूहकी रक्षा करे, यही उसका सबसे श्रेष्ठधर्म है। राजा जो राज्यरक्षामें नियुक्त होकर जीवोंके ऊपर दया प्रकाशित करता है, धर्म जाननेवाले पण्डित लोग उसे ही उसका परम धर्म कहा करते हैं। राजा यदि एक दिन भी भयके कारण प्रजाके रक्षाकी उपाय न करके जो पाप सञ्चय करता है, सहस्र वर्षके अनन्तर उससे मुक्त होता है; परन्तु प्रजासमूहकी धर्मपूर्व्वक एकदिन मात्र रक्षा करनेसे दश हजार वर्ष पर्य्यन्त स्वर्गमें उसका फल भोग करते रहते हैं, योगी लोग पर्य्याय क्रमसे गृहस्थ, वाणप्रस्थ और ब्रह्मचारियोंके धर्म आचरण करके जिन लोकोंको जय करते हैं, राजा क्षण मात्र धर्मपूर्व्वक प्रजा-पालन करनेसे ही उन लोकोंको पाते हैं। हे कुन्तीनन्दन! तुम इस ही भांति यत्नपूर्व्वक धर्मको पालन करो, ऐसा होनेसे तुम उस ही पुण्यफलसे कभी भी आधिरूपी बन्धनमें नहीं बंधोगे; बल्कि परलोकमें महत् सम्पत्ति प्राप्त करोगे। राजा राजरहित होनेपर इस प्रकार धर्म सब कभी भी आचरित नहीं होते; इससे राजा ही उस सम्पूर्ण धर्मका फल भोग करता है। युधिष्ठिर! तुम भी इस हुवत् राजरको पाके धीरज धरके धर्मपूर्व्वक प्रजासमूहको प्रतिपालन करो और सोमरस आदिसे इन्द्रकी भी अभिलाष पूरी करते हुए सुहृद मित्रोंकी सन्तुष्ट करो।

७१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, महाराज! जो साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंको राजसे दूर करते हैं, उन्हें ही राज पुरोहित बनाना राजाका कर्त्तव्य है। इस विषयमें पुरूरवाके पुत्र ऐलके सङ्ग वायुका जो वार्त्तालाप हुआ था; पण्डित लोग इस प्रसङ्गमें उस ही प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं।

पुरूरवा बोले, "किससे ब्राह्मण लोग उत्पन्न हुए हैं? क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंकी भी

किससे उत्पत्ति हुई है और किस कारणसे ब्राह्मण लोग सबसे श्रेष्ठ हुए, आप यह सब मेरे निकट वर्णन कीजिये।

वायु बोले, 'हे भरतर्षभ राजसत्तम! ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण, दोनों भुजासे क्षत्रिय और ऊरुसे वैश्य उत्पन्न हुए हैं, और इन तीनों वर्णोंकी सेवाके वास्ते चौथे वर्ण शूद्रको उत्पन्न किया। ब्राह्मण उत्पन्न होते ही धर्म्म-रूप कोषकी रक्षाके निमित्त सब भूतोंके ईश्वर होके पृथ्वीमें जन्म ग्रहण किया; उसे देखके पितामहने प्रजासमूहकी रक्षाके वास्ते द्वितीय वर्ण क्षत्रियको दण्ड धारण करनेके निमित्त उत्पन्न करके पृथ्वीके शासन कार्य्यमें नियुक्त किया; वैश्य धन्य धान्यसे तीनों वर्णोंका भरण करे और शूद्र ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करे; ऐसी ही आज्ञा की।'

पुरूरवा बोले, हे वायु! यह पृथ्वी और इसका समस्त धन धर्म्मके अनुसार ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दोनोंके बीच किसीका हो सकता है? आप कृपाकर यह विषय मेरे निकट वर्णन करिये।

वायु बोले, 'धर्म्म जाननेवाले सब लोग कहा करते हैं, कि पृथिवी और इसका जितना धन है, वह सब ज्येष्ठत्व और आभिजात्यके कारण ब्राह्मणका ही होसकता है। ब्राह्मण सब वर्णोंके गुरु ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं, इससे वे जो कुछ दान करते, पहरते और भोजन करते हैं, वह सब अपने धनसे ही किया करते हैं। जैसे स्त्रियें पतिके न रहनेपर देवरको पति करती हैं, वैसे ही ब्राह्मणोंके रक्षा न करनेसे पृथ्वी आनन्त्य-र्य्यके कारण क्षत्रियोंको ही अपना पति किया करती है। महाराज! यही प्रथम कल्प है, परन्तु आपत्कालमें इसका विपरीत भाव भी हो सकता है। यदि तुम्हें वह उत्तम स्थान स्वर्ग और स्वधर्म्म उपार्जनकी अभिलाषा हो, तब तुम जो कुछ भूमि जय करो, वह सब वैदिक कर्म्ममें रत, धर्म्म जाननेवाले, तपस्वी, निज धर्म्ममें अनुरक्त लोभ रहित ब्राह्मणोंको दान करना। जो बुद्धिमान विनीत और सत्-कुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मण लोग निज श्रेष्ठ बुद्धिके प्रभावसे विचित्र वाक्योंसे राजाको सन्मार्गमें लाते हैं, वेही राजपुरोहित हैं, वे उपदेश युक्त अभिमान रहित और क्षत्रिय धर्म्म रत राजाके आचरित धर्म्मके अंशभागी होते हैं; और वह बुद्धिमान राजा भी प्रजा-पुञ्जके समीप निजकर्म्मके अनुसार सत्कार और महत् प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। इसी भांति प्रजा राजाका आसरा ग्रहण करके और उससे भली भांति रक्षित होके निज धर्म्ममें निवास करती हुई स्वच्छन्दता और निर्भयताके सहित जो कुछ धर्म्माचरण करती है, राजा उस धर्म्मका चतु-र्थांश फलभागी होता है। देवता, मनुष्य, पितर गन्धर्व्व, सर्प और राक्षस लोग यज्ञका ही आसरा किया करते हैं, परन्तु राजा रहित होनेसे यज्ञादिक सब कर्म्म लुप्त होते हैं। देवता और पितर लोग यज्ञादिकोंमें होम किये हुए घृतादिकसे ही जीवन धारण करते हैं, परन्तु वे यज्ञादि सब कर्म्म राजाके अधीन है। राजशासन रहनेसे ही प्रजा धूपके समय छाया, जल और शीतल वायुसे, और शीत ऋतुमें वस्त्र, अग्नि तथा सूर्य्यके उत्तापसे सुख अनुभव किया करती है और उन लोगोंका मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धमें रमण करता है; परन्तु जब राजासे रहित होंगे, तब वे लोग भयसे युक्त होकर किसी प्रकार भी वैसा सुख अनुभव नहीं कर सकेंगे, तब वैसे समयमें जो पुरुष अभय दान करते हैं, उन्हें ही महत् फल प्राप्त होता है, अधिक क्या कहूं, उस समय प्राण पर्य्यन्तदान करनेमें भी संकुचित न होवे; क्यों कि कोई दान भी प्राण दानके समान नहीं है। राजा ही सबका आधार है और वही समयके अनुसार इन्द्र, यम

तथा धर्म्म इत्यादि विविध रूप धारण किया करता है।

७२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राजा राज्य शासनमें प्रतिष्ठित होकर अर्थकी गहन गतिको विचारके शीघ्र ही विद्वान और बहुश्रुत ब्राह्मणको पुरोहित कार्य्यमें नियुक्त करे। महाराज! जिसका राज पुरोहित धर्म्मात्मा और मन्त्र जाननेवाला तथा राजा भी वैसे ही गुणोंसे युक्त होता है, उन प्रजासमूहका सब भांतिसे कल्याण हुआ करता है। राजा और राजपुरोहित आपसमें आलस रहित और सावधान होकर सुहृदता अवलम्बन करके तपस्वियोंकी भांति धर्म्ममें रत और श्रद्धावान होनेसे देवता, पितर, पुत्र और सबकी उन्नति साधन करते हैं। प्रजा ब्राह्मण और क्षत्रियोंका सम्मान करनेसे सुख पाती है, परन्तु उनकी अवमानना करनेसे नष्ट होती है; क्यों कि पण्डित लोग ब्राह्मण और क्षत्रियको ही सब वर्णोंका मूल कहा करते हैं। हे युधिष्ठिर! प्राचीन लोग इस प्रस्तावमें ऐल और कश्यपके सम्वाद रूपी जिस इतिहासका उदाहरण देते हैं, उसे सुनो।

ऐल बोले, ब्राह्मण और क्षत्रिय इन दोनो तेजसे राज्य रक्षित हुआ करता है, परन्तु इन दोनोंमें यदि कोई किसीको परित्याग करे, तो सब वर्ण किसका आसरा ग्रहण करते हैं, और किसके जरिये रक्षित होते हैं?

कश्यप बोले, ब्राह्मण यदि क्षत्रियको परित्याग करे, तो उसका वह राज्य नष्ट होता है, डाकू लोग राज्यमें उपद्रव किया करते और पण्डित लोग वैसे क्षत्रियको म्लेच्छजाति करके अनुमान किया करते हैं। क्षत्रिय लोग भी यदि ब्राह्मणको परित्याग करें, तो उनके रूपोंकी बढ़ती, गर्भ-संचित तथा धर्म्म कार्य्य आचरित नहीं होते और उनके पुत्र भी यथा रीतिसे रक्षित होके वेदाध्ययन करके यज्ञादि कर्म्मोंका आचरण नहीं करते, बल्कि संकर जाति तथा डाकुओंकी भांति-वृत्ति अवलम्बन करते हैं। क्षत्रिय लोग ब्राह्मणोंके आश्रय हैं, इससे वे लोग भलेके सहित आपस मिलके एक दूसरे को रक्षा करनेमें समर्थ होते हैं। ये दोनों आपसमें परस्परकी रक्षा करते हुए महत् प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, परन्तु यदि किसी प्रकारसे उनकी वह प्राचीन सन्धि भङ्ग होवे, तो दोनोंही नष्ट होते हैं। जैसे अगाध जलमें विपद्ग्रस्त नौका किसी प्रकार भी किनारे नहीं लग सकती, वैसे ही वह भी किसी विषयके पारदर्शी नहीं होसकते; वर्णविचार लोप होता और सब प्रजाका नाश होता है। ब्रह्मरूपी वृक्ष यथा उचित रीतिसे रक्षित होने पर सुख और सुवर्णमय फलको वर्षा करता है; परन्तु उसकी रक्षा न करनेसे दुःख और नरकरूपी फल उत्पन्न होता है। जब ब्रह्मचारी लोग डाकुओंसे निवारित होकर निज अधीत शाखा परित्याग करते और ब्राह्मण लोग अपने पाठनीय वेदका आसरा त्याग करते हैं, उस समय इन्द्र अल्प जलकी वर्षा करते और वहांपर सदा अनेक भांतिके उत्पात उपस्थित होते हैं। जब कोई पापी पुरुष स्त्री अथवा ब्राह्मणहत्या करके भी सभाके बीच प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, और राजाके निकट भी भयभीत नहीं होता, तब वैसे पुरुषसे राजाको महत् भय उपस्थित होता है। हे ऐल! जब पापी लोग पाप कर्म्मसे कालके उत्पत्तिकी वृद्धि करते रहते हैं, तब राजा अत्यन्त ही रुद्र और हिंसक होकर साधु और दुष्ट सबको ही विनष्ट किया करता है।

ऐल बोले, हे कश्यप! जीव लोग जो जीवोंके जरियेसे ही मारे जाते हैं, वह रुद्र कैसा है और किस प्रकार उत्पन्न होता है तथा राजा ही किस कारण रुद्ररूप हुआ करता है, आप यह

सब विस्तार पूर्व्वक मेरे निकट वर्णन करिये ?—कश्यप बोले, जैसे आकाशमें उठे हुये उत्पात के विषयमें वायु ही आकाश देवताका इधर उधर सञ्चालित करता है, उससे ही बिजली, वज्र और अशनि आदि सब उत्पात उत्पन्न हुआ करते हैं; वैसे ही मनुष्यके हृदयमें स्थित आत्मा ही काम क्रोध आदि रूपसे प्रगट होके अपने वा दूसरेके शरीरको नष्ट किया करता है।

ऐल बोले, वायुके सङ्ग इस रुद्ररूपी आत्मा को उपमा नहीं होसकती, क्योंकि वायु बाहरी सब पदार्थोंको वेष्टन करता है, बादल जलकी वर्षा करते हैं; इससे उसके सङ्ग भी तुलना नहीं हो सकती, और जब मनुष्योंके बीच कितनोंका सदा काम क्रोधके वशमें होके मरते और मोहित होते देखा जाता है, तब ईश्वररूपसे भी उपमा नहीं हो सकता।

कश्यप बोले, जैसे अग्नि एक गृहमें प्रज्वलित होके समस्त ग्राम वा चौतरोंको भस्म कर देती है, वैसे ही रुद्रदेव भी सबको मोहित करते हैं; इससे सब कोई पुण्य पाप जनक शङ्कर कार्य्यमें प्रवृत्त हुआ करते हैं।

ऐल बोले, जब पापियोंके विशेष रूपसे पाप कर्म्म करने पर भी दण्डनीति पुण्य पापरूप दोनों भांतिके कर्म्म करनेवालोंके ऊपर प्रयोग हुआ करती है, तब क्यों मनुष्य सत्कर्मोंका अनुष्ठान करेंगे और असत् कर्म्म न करेंगे।

कश्यप बोले, पापाचारियोंके सङ्ग किसी प्रकारका सम्बन्ध न रहनेसे मनुष्य पापरहित होता है, इससे उसे दण्डनीतिके अधीन नहीं होना पड़ता; परन्तु जैसे सूखे काठके साथ गीला काठ भी भस्म होजाता है, वैसे ही पापाचारियोंके साथ निवासके कारण मिश्रितभाव होनेसे पापियोंकी भांति दण्डनीय होना पड़ता है; इससे पापियोंके सङ्ग सब भांतिसे संसर्ग त्यागना उचित है।

ऐल बोले, किस कारण पृथ्वी साधु और दुष्ट दोनों भांतिके लोगोंको धारण किया करती है? सूर्य्य क्यों दोनोंको उत्ताप प्रदान करता है? वायु किस कारणसे दोनोंके समीप समान रूपसे बहता है और किस कारण जल साधु और दुष्ट दोनोंको पवित्र करता है?

कश्यप बोले, हे राजपुत्र! इस संसारमें ही ऐसा हुआ करता है। परन्तु परलोकमें ऐसा नहीं होता; मनुष्य जो कुछ पुण्य सञ्चय वा पापाचरण करते हैं, परलोकमें गमन करके उसका इतर-विशेष देखते हैं। जो लोग संसारमें सदा पुण्य कर्म्म करते हैं, वे ब्रह्मचारी पुरुष परलोकमें मधुमान् घृतार्चि, सुवर्णकी भांति ज्योतिसे युक्त और अमृत की नाभि स्वरूप परम रमणीय स्थानमें निवास करते हुए दुःख और जरा मरण-रहित होकर अनेक सुख प्राप्त करते हैं। परन्तु वहां पर पापियोंके वास्ते जो स्थान निर्दिष्ट है, वह नरक और सदा दुखसे पूर्ण शोकपूरित तथा प्रकाश रहित है; निन्दनीय पापी लोग वहां पर जाके बहुत समय पर्य्यन्त सन्तापित होकर अपने किये हुए कर्मोंके निमित्त शोक प्रकाश किया करते हैं। इसी भांति ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें भेद उपस्थित होने पर प्रजाको असह्य दुःख प्राप्त होता है, इससे राजा को यह सब जानके अनेक भांतिकी विद्या जाननेवाले ब्राह्मणको पुरोहितके कार्य्य पर नियुक्त करना उचित है। राजा पहिले पुरोहितको अभिषिक्त करे, ऐसा होनेसे ही उसका धर्म्म भली भांति रक्षित होगा; क्योंकि ब्रह्मवित् पुरुष कहा करते हैं, कि ब्राह्मण लोग पहिले उत्पन्न हुए हैं और वे लोग ही सब वस्तुओंके अग्रभुक् कहके माने जाते हैं। प्रथम उत्पन्न हुए ब्राह्मण लोग जो जेठल और आभिजात्यके कारण क्षत्रियोंके मान्य और पूज्य हैं, उस विषयमें मैंने पहिले ही तुम्हें उत्तर दिया है। बलवान् राजाको उचित है, कि ब्राह्मणको सर्व्व